प्रेमचंद

मानसरोवर

भाग 2

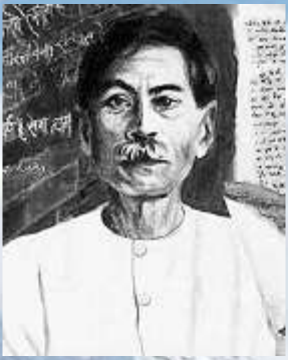

हिंदीकोश

www.hindikosh.in

Manasarovar – Part 2

By Premchand

यह पुस्तक प्रकाशनाधिकार मुक्त है क्योंकि इसकी प्रकाशनाधिकार अवधि समाप्त हो चुकी हैं।

This work is in the public domain in India because its term of copyright has expired.

यूनीकोड संस्करण: संजय खत्री. 2012

Unicode Edition: Sanjay Khatri, 2012

आवरण चित्र: विकिपीडिया (प्रेमचंद, मानसरोवर झील)

Cover image: Wikipedia.org (Premchand, Manasarovar Lake).

हिंदीकोश

Hindikosh.in

http://www.hindikosh.in

विषयसूची

कुसुम 4
खुदाई फौजदार 26
वेश्या 40
चमत्कार 66
मोटर के छींटे...85
कैदी..90
मिस पद्मा..104
विद्रोही 113
उन्माद..129
न्याय..154
कुत्सा 167
दो बैलों की कथा 172
रियासत का दीवान 189
मुफ्त का यश..212
बासी भात में खुदा का साझा..221
दूध का दाम..232
बालक...245
जीवन का शाप..256
डामुल का कैदी..273
नेउर 303
गृह-नीति..315
कानूनी कुमार..332
लॉटरी 345
जादू..365
नया विवाह 371
शूद्रा...391

कुसुम

साल-भर की बात है, एक दिन शाम को हवा खाने जा रहा था कि महाशय नवीन से मुलाकात हो गई। मेरे पुराने दोस्त है, बड़े बेतकल्लुफ़ और मनचले। आगरे में मकान है, अच्छे कवि है। उनके कवि-समाज में कई बार शरीक हो चुका हूँ। ऐसा कविता का उपासक मैंने नहीं देखा। पेशा तो वकालत; पर डूबे रहते है काव्य-चितंन में। आदमी ज़हीन है, मुक़दमा सामने आया और उसकी तह तक पहुँच गए; इसलिए कभी-कभी मुक़दमे मिल जाते हैं, लेकिन कचहरी के बाहर अदालत या मुकदमें की चर्चा उनके लिए निषिद्ध है। अदालत की चारदीवारी के अंदर चार-पाँच घंटे वह वकील होते है। चारदीवारी के बाहर निकलते ही कवि है - सिर से पाँव तक। जब देखिए, कवि-मंडल जमा है, कवि-चर्चा हो रही है, रचनाएँ सुन रहे है। मस्त हो-होकर झूम रहे है, और अपनी रचना सुनाते समय तो उन पर एक तल्लीनता-सी छा जाती है। कंठ स्वर भी इतना मधुर है कि उनके पद बाण की तरह सीधे कलेजे में उतर जाते हैं। अध्यात्म में माधुर्य की सृष्टि करना, निर्गुण में सगुण की बहार दिखाना उनकी रचनाओं की विशेषता है। वह जब लखनऊ आते है, मुझे पहले सूचना दे दिया करते है। आज उन्हें अनायास लखनऊ में देखकर मुझे आश्चर्य हुआ - आप यहाँ कैसे? कुशल तो है? मुझे आने की सूचना तक न दी।

बोले - भाईजान, एक जंजाल में फँस गया हूँ। आपको सूचित करने का समय न था। फिर आपके घर को मैं अपना घर समझता हूँ। इस तकल्लुफ़ की क्या जरूरत है कि आप मेरे कोई विशेष प्रबंध करें। मैं एक जरूरी मुआमले में आपको कष्ट देने आया हूँ। इस वक़्त की सैर को स्थगित कीजिए और चलकर मेरी विपत्ति-कथा सुनिए।

मैंने घबराकर कहा - आपने तो मुझे चिंता में डाल दिया। आप और विपत्ति-कथा! मेरे तो प्राण सूखे जाते है।

'घर चलिए, चित्त शांत हो तो सुनाऊँ!'

'बाल-बच्चे तो अच्छी तरह हैं?'

'हाँ, सब अच्छी तरह हैं। वैसी बात नहीं है!'

'तो चलिए, रेस्ट्रॉं में कुछ जलपाल तो कर लीजिए।'

'नहीं भाई, इस वक़्त मुझे जलपान नहीं सूझता।'

हम दोनों घर की ओर चले।

घर पहुँचकर उनका हाथ-मुँह धुलाया, शरबत पिलाया। इलायची-पान खाकर उन्होंने अपनी विपत्ति-कथा सुनानी शुरू की -

'कुसुम के विवाह में आप गए ही थे। उसके पहले भी आपने उसे देखा था। मेरा विचार है कि किसी सरल प्रकृति के युवक को आकर्षित करने के लिए जिन गुणों की जरूरत है, वह सब उसमें मौजूद हैं। आपका क्या ख़्याल है?'

मैंने तत्परता से कहा - मैं आपसे कहीं ज्यादा कुसुम का प्रशंसक हूँ। ऐसी लज्जाशील, सुघड़, सलीकेदार और विनोदिनी बालिका मैंने दूसरी नहीं देखी।

महाशय नवीन ने करुण स्वर में कहा - वही कुसुम आज अपने पति के निर्दय व्यवहार के कारण रो-रोकर प्राण दे रही है। उसका गौना हुए एक साल हो रहा है। इस बीच में वह तीन बार ससुराल गई, पर उसका पति उससे बोलता ही नहीं। उसकी सूरत से बेज़ार है। मैंने बहुत चाहा कि उसे बुलाकर दोनों में सफ़ाई करा दूँ, मगर न आता है, न मेरे पत्रों का उत्तर देता है। न जाने क्या गाँठ पड़ गई है कि उसने इस बेदर्दी से आँखें फेर लीं। अब सुनता हूँ, उसका दूसरा विवाह होने वाला है। कुसुम का बुरा हाल हो रहा है। आप शायद उसे देखकर पहचान

भी न सकें। रात-दिन रोने के सिवा दूसरा काम नहीं है। इससे आप हमारी परेशानी का अनुमान कर सकते हैं। जिंदगी की सारी अभिलाषाएँ मिटी जाती हैं। हमें ईश्वर ने पुत्र न दिया; पर हम अपनी कुसुम को पाकर संतुष्ट थे और अपने भाग्य को धन्य मानते थे। उसे कितने लाड़-प्यार से पाला, कभी उसे फूल की छड़ी से भी न छुआ। उसकी शिक्षा-दीक्षा में कोई बात उठा न रखी। उसने बी.ए. नहीं पास किया, लेकिन विचारों की प्रौढ़चता और ज्ञान-विस्तार में किसी ऊँचे दर्जे की शिक्षित महिला से कम नहीं। आपने उसके लेख देखे हैं। मेरा ख़्याल है, बहुत कम देवियाँ वैसे लेख लिख सकती हैं! समाज, धर्म, नीति सभी विषयों में उसके विचार बड़े परिष्कृत हैं। बहस करने में तो वह अपनी पटु है कि मुझे आश्चर्य होता है। गृह-प्रबंध में इतनी कुशल कि मेरे घर का प्रायः सारा प्रबंध उसी के हाथ में था; किंतु पति की दृष्टि में वह पाँव की धूल के बराबर भी नहीं। बार-बार पूछता हूँ, तूने उसे कुछ कह दिया है, या क्या बात है? आखिर, वह क्यों तुझसे इतना उदासीन है? इसके जवाब में रोकर यही कहती है - 'मुझसे तो उन्होंने कभी कोई बातचीत ही नहीं की।' मेरा विचार है कि पहले ही दिन दोनों में कुछ मनमुटाव हो गया। वह कुसुम के पास आया होगा और उससे कुछ पूछा होगा। उसने मारे शर्म के जवाब न दिया होगा। संभव है, उससे दो-चार बातें और भी की हो। कुसुम ने सिर न उठाया होगा। आप जानते ही हैं, कि कितनी शर्मीली है। बस, पतिदेव रूठ गए होंगे। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि कुसुम-जैसी बालिका से कोई पुरुष उदासीन रह सकता है, लेकिन दुर्भाग्य को कोई क्या करे? दुखिया ने पति के नाम कई पत्र लिखे, पर उस निर्दयी ने एक का भी जवाब न दिया! सारी चिट्ठियाँ लौटा दीं। मेरी समझ में नहीं आता कि उस पाषाण-हृदय को कैसे पिघलाऊँ। मैं अब खुद तो उसे कुछ लिख नहीं सकता। आप ही कुसुम की प्राण रक्षा करें, नहीं तो शीघ्र ही उसके जीवन का अंत हो जाएगा और उसके साथ हम दोनों प्राणी भी सिधार जाएँगे। उसकी व्यथा अब नहीं देखी जाती।

नवीनजी की आँखें सजल हो गईं। मुझे भी अत्यंत क्षोभ हुआ। उन्हें तसल्ली देता हुआ बोला - आप इतने दिनों इस चिंता में पड़े रहे, मुझसे पहले ही क्यों न कहा? मैं आज ही मुरादाबाद जाऊँगा और और लौंडे की इस बुरी तरह खबर लूँगा

कि वह भी याद करेगा। बचा को ज़बरदस्ती घसीट कर लाऊँगा और कुसुम के पैरों पर गिरा दूँगा।

नवीनजी में आत्मविश्वास पर मुसकराकर बोले - आप उससे क्या कहेंगे?

'यह न पूछिए! वशीकरण के जितने मंत्र है, उन सभी की परीक्षा करूँगा।'

'तो आप कदापि सफल न होंगे। वह इतना शीलवान, इतना विनम्र, इतना प्रसन्नचित्त है, इतना मधुर-भाषी कि आप वहाँ से उसके भक्त होकर लौटेंगे! वह नित्य आपके सामने हाथ बाँधे खड़ा रहेगा। आपकी सारी कठोरता शांत हो जाएगी। आपके लिए तो एक ही साधन है। आपके कलम में जादू है! आपने कितने ही युवकों को सन्मार्ग पर लगाया है। हृदय में सोई हुई मानवता को जगाना आपका कर्तव्य है। मैं चाहता हूँ, आप कुसुम की ओर ओर से ऐसा करुणाजनक, ऐसा दिल हिला देनेवाला पत्र लिखें कि वह लज्जित हो जाए और उसकी प्रेम-भावना सचेत हो उठे। मैं जीवन-पर्यन्त आपका आभारी रहूँगा।'

नवीनजी कवि ही तो ठहरे। इस तजबीज में वास्तविकता की अपेक्षा कवित्व ही की प्रधानता थी। आप मेरे कई गल्पों को पढ़कर रो पड़े है, इससे आपको विश्वास हो गया है कि मैं चतुर सँपेरे की भाँति जिस दिल को चाहूँ नचा सकता हूँ। आपको यह मालूम नहीं कि सभी मनुष्य कवि नहीं होते, और न एक-से भावुक। जिन गल्पों को पढ़कर आप रोये है, उन्हीं गल्पों को पढ़कर कितने ही सज्जनों ने विरक्त होकर पुस्तक फेंक दी हैं। पर इन बातों का वह अवसर न था। वह समझते कि मैं अपना गला छुड़ाना चाहता हूँ, इसलिए मैंने सहृदयता से कहा - आपको बहुत दूर की सूझी। और मैं इस प्रस्ताव से सहमत हूँ और यद्यपि आपने मेरी करुणोत्पादक शक्ति का अनुमान करने में अत्युक्ति से काम लिया है; लेकिन मैं आपको निराश न करूँगा। मैं पत्र लिखूँगा और यथाशक्ति उस युवक की न्याय-बुद्धि को जगाने की चेष्टा भी करूँगा, लेकिन आप अनुचित न समझें तो पहले मुझे वह पत्र दिखा दें, जो कुसुम ने अपने पति के नाम लिखे थे, उसने पत्र तो लौटा ही दिए हैं और यदि कुसुम ने उन्हें फाड़ नहीं डाला है,

तो उसके पास होंगे। उन पत्रों को देखने से मुझे ज्ञात हो जाएगा कि किन पहलुओं पर लिखने की गुंजाइश बाकी है।

नवीनजी ने जेब से पत्रों का एक पुलिंदा निकालकर मेरे सामने रख दिखा और बोले - मैं जानता था आप इन पत्रों को देखना चाहेंगे, इसलिए इन्हें साथ लेता आया। आप इन्हें शौक से पढ़ें। कुसुम जैसी मेरी लड़की है, वैसी ही आपकी भी लड़की है। आपसे क्या परदा!

सुगंधित, गुलाबी, चिकने कागज़ पर बहुत-ही सुंदर अक्षरों में लिखे उन पत्रों को मैंने पढ़ना शुरू किया -

मेरे स्वामी, मुझे यहाँ आये एक सप्ताह हो गया; लेकिन आँखे पल-भर के लिए भी नहीं झपकीं। सारी रात करवटें बदलते बीत जाती है। बार-बार सोचती हूँ, मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ कि उसकी आप मुझे यह सजा दे रहे है। आप मुझे झिड़कें, घुड़कें, कोसें; इच्छा हो तो मेरे कान भी पकड़े। मैं इन सभी सजाओं को सहर्ष सह लूँगी; लेकिन यह निष्ठुरता नहीं सही जाती। मैं आपके घर एक सप्ताह रही। परमात्मा जानता है कि मेरे दिल में क्या-क्या अरमान थे। मैंने कितनी बार चाहा कि आपसे कुछ पूछूँ; आपसे अपने अपराधों को क्षमा कराऊँ; लेकिन आप मेरी परछाई से भी दूर भागते थे। मुझे कोई अवसर न मिला। आपको याद होगा कि जब दोपहर को सारा घर सो जाता था; तो मैं आपके कमरे में जाती थी और घंटों सिर झुकाए खड़ी रहती थी; पर आपने कभी आँख उठाकर न देखा। उस वक्त मेरे मन की क्या दशा होती थी, इसका कदाचित् आप अनुमान न कर सकेंगे। मेरी जैसी अभागिनी स्त्रियाँ इसका कुछ अंदाज कर सकती हैं। मैंने अपनी सहेलियों से उनकी सोहागरात की कथाएँ सुन-सुनकर अपनी कल्पना में सुखों का जो स्वर्ग बनाया था उसे आपने कितनी निर्दयता से नष्ट कर दिया!

मैं आपसे पूछती हूँ, क्या आपके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है? अदालत भी किसी अपराधी को दंड देती है, तो उस पर कोई-न-कोई अभियोग लगाती है,

गवाहियाँ लेती है, उनका बयान सुनती है। आपने तो कुछ पूछा ही नहीं। मुझे अपनी खता मालूम हो जाती, तो आगे के लिए सचेत हो जाती। आपके चरणों पर गिरकर कहती, मुझे क्षमा-दान दो। मैं शपथपूर्वक कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम, आप क्यों रुष्ट हो गए। संभव है, आपने अपनी पत्नी में जिन गुणों को देखने की कामना की हो, वे मुझमें न हों। बेशक मैं अँगरेजी नहीं पढ़ी, अँगरेजी-समाज की रीति-नीति से परिचित नहीं, न अँगरेजी खेल खेलना जानती हूँ। और भी कितनी ही त्रुटियाँ मुझमें होगी। मैं जानती हूँ कि मैं आपके योग्य न थी। आपको मुझसे कहीं अधिक रूपवती, गुणवती, बुद्धिमती स्त्री मिलनी चाहिए थी; लेकिन मेरे देवता, दंड अपराधों का मिलना चाहिए, त्रुटियों का नहीं। फिर मैं तो आपके इशारे पर चलने को तैयार हूँ। आप मेरी दिलजोई करें, फिर देखिए, मैं अपनी त्रुटियों को कितनी जल्द पूरा कर लेती हूँ। आपका प्रेम-कटाक्ष मेरे रूप को प्रदीप्त, मेरी बुद्धि को तीव्र और मेरे भाग्य को बलवान कर देगा। वह विभूति पाकर मेरा कायाकल्प हो जाएगी।

स्वामी! क्या आपने सोचा है? आप यह क्रोध किस पर कर रहे है? वह अबला जो आपके चरणों पर पड़ी हुई आपसे क्षमा-दान माँग रही है, जो जन्म-जन्मांतर के लिए आपकी चेरी है, क्या इस क्रोध को सहन कर सकती है? मेरा दिल बहुत कमजोर है। मुझे रुलाकर आपको पश्चाताप के सिवा और क्या हाथ आएगा। इस क्रोधाग्नि की एक चिनगारी मुझे भस्म कर देने के लिए काफी है, अगर आपकी यह इच्छा है कि मैं मर जाऊँ, तो मैं मरने के लिए तैयार हूँ; केवल आपका इशारा चाहती हूँ। अगर मरने से आपका चित्त प्रसन्न हो, तो मैं बड़े हर्ष से अपने को आपके चरणों पर समर्पित कर दूँगी; मगर इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि मुझमें सौ ऐब हो, पर एक गुण भी है - मुझे दावा है कि आपकी जितनी सेवा मैं कर सकती हूँ, उतनी कोई दूसरी स्त्री नहीं कर सकती। आप विद्वान है, उदार है, मनोविज्ञान के पंडित है, आपकी लौंडी आपके सामने खड़ी दया की भीख माँग रही है। क्या उसे द्वार से ठुकरा दीजिएगा?

आपकी अपराधिनी,

- कुसुम

यह पत्र पढ़कर मुझे रोमांच हो आया। यह बात मेरे लिए असह्य थी कि कोई स्त्री अपने पति की इतनी खुशामद करने पर मजबूर हो जाए। पुरुष अगर स्त्री से उदासीन रह सकता है, तो स्त्री उसे क्यों नहीं ठुकरा सकती? वह दुष्ट समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को उसका गुलाम बना दिया। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता, कोई चूँ भी नहीं कर सकता। पुरुष अपनी दूसरी, तीसरी, चौथी शादी कर सकता है, स्त्री से कोई संबंध न रखकर भी उस पर उसी कठोरता से शासन कर सकता है। वह जानता है कि स्त्री कुल-मर्यादा के बंधनों में जकड़ी हुई है, उसे रो-रोकर मर जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। अगर उसे भय होता कि औरत भी उसकी ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, ईंट से भी नहीं; केवल थप्पड़ से दे सकती है, तो उसे कभी इस बदमिज़ाजी का साहस न होता। बेचारी स्त्री कितनी विवश है। शायद मैं कुसुम की जगह होता, तो इस निष्ठुरता का जवाब इसकी दसगुनी कठोरता से देता। उसकी छाती पर मूँग दलता? संसार के हँसने की ज़रा भी चिंता न करता। समाज अबलाओं पर इतना जुल्म देख सकता है और चूँ तक नहीं करता, उसके रोने या हँसने की मुझे जरा भी परवाह न होती। अरे अभागे युवक! तुझे खबर नहीं, तू अपने भविष्य की गर्दन पर कितनी बेदर्दी से छुरी फेर रहा है? यह वह समय है, जब पुरुष को अपने प्रणय-भंडार से स्त्री के माता-पिता, भाई-बहन, सखियाँ-सहेलियाँ, सभी के प्रेम की पूर्ति करनी पड़ती है। अगर पुरुष में यह सामर्थ्य नहीं है तो स्त्री की क्षुधित आत्मा को कैसे संतुष्ट रख सकेगा। परिणाम वही होगा, जो बहुधा होता है। अबला कुढ़-कुढ़कर मर जाती है। यही वह समय है, जिसकी स्मृति जीवन में सदैव के लिए मिठास पैदा कर देती है। स्त्री की प्रेमसुधा इतनी तीव्र होती है कि वह पति का स्नेह पाकर अपना जीवन सफल समझती है और इस प्रेम के आधार पर जीवन के सारे कष्टों को हँस-हँसकर सह लेती है। यही वह समय है, जब हृदय में प्रेम का बसंत आता है और उसमें नई-नई आशा-कोंपलें निकलने लगती हैं। ऐसा कौन निर्दयी है, जो इस ऋतु में उस वृक्ष पर कुल्हाड़ी चलाएगा। यही वह समय है, जब शिकारी किसी पक्षी को उसके

बसेरे से लाकर पिंजरे में बंद कर देता है। क्या वह उसकी गर्दन पर छुरी चलाकर उसका मधुर गान सुनने का आशा रखता है?

मैंने दूसरा पत्र पढ़ना शुरू किया -

मेरे जीवन-धन! दो सप्ताह जवाब की प्रतीक्षा करने के बाद आज फिर यही उलाहना देने बैठी हूँ। जब मैंने वह पत्र लिखा था, तो मेरा मन गवाही दे रहा था कि उसका उत्तर जरूर आएगा। आशा के विरुद्ध आशा लगाए हुए थी। मेरा मन अब भी इसे स्वीकार नहीं करता कि जान-बूझकर उसका उत्तर नहीं दिया। कदाचित् आपको अवकाश नहीं मिला, या ईश्वर न करें, कहीं आप अस्वस्थ तो नहीं हो गए? किससे पूछूँ? इस विचार से ही मेरा हृदय काँप रहा है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आप प्रसन्न और स्वस्थ हों। पत्र मुझे न लिखें, न सही, रोकर चुप ही तो हो जाऊँगी। आपको ईश्वर का वास्ता है; अगर आपको किसी प्रकार का कष्ट हो, तो तुरंत पत्र लिखिए, मैं किसी को साथ लेकर आ जाऊँगी। मर्यादा और परिपाटी के बंधनों से मेरा जी घबराता है, ऐसी दशा में भी यदि आप मुझे अपनी सेवा से वंचित रखते हैं, तो आप मुझसे मेरा वह अधिकार छीन रहे है, जो मेरे जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु है। मैं आपसे और कुछ नहीं माँगती, आप मुझे मोटे-से-मोटा खिलाइए, मोटे-से-मोटा पहनाइए, मुझे जरा भी शिकायत न होगी। मैं आपके साथ घोर-से-घोर विपत्ति में भी प्रसन्न रहूँगी। मुझे आभूषणों की लालसा नहीं, महल में रहने की लालसा नहीं, सैर-तमाशे की लालसा नहीं, धन बटोरने की लालसा नहीं। मेरे जीवन का उद्देश्य केवल आपकी सेवा करना है। यही उसका ध्येय है। मेरे लिए दुनिया में कोई देवता नहीं, कोई गुरु नहीं, कोई हकीम नहीं। मेरे देवता आप है, मेरे राजा आप है, मुझे अपने चरणों से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नहीं। मैं सेवा और प्रेम के फूल लिये, कर्तव्य और व्रत की भेंट अंचल में सजाए आपकी सेवा में आई हूँ। मुझे इस भेंट को, इन फूलों को अपने चरणों में रखने दीजिए। उपासक का काम तो पूजा करना है। देवता उसकी पूजा स्वीकार करता है या नहीं, यह सोचना उसका धर्म नहीं।

मेरे सिरताज! शायद आपको पता नहीं, आजकल मेरी क्या दशा है। यदि मालूम होता, तो आप इस निष्ठुरता का व्यवहार न करते। आप पुरुष है, आपके हृदय में दया है, सहानुभूति है, उदारता है, मैं विश्वास नहीं कर सकती कि आप मुझ जैसी नाचीज़ पर क्रोध कर सकते है। मैं आपकी दया के योग्य हूँ - कितनी दुर्बल, कितनी अपंग, कितनी बेज़बान! आप सूर्य है, मैं अणु हूँ; आप अग्नि है, मैं तृण हूँ; आप राजा है, मैं भिखारिन हूँ। क्रोध, तो बराबरवालों पर करना चाहिए, मैं भला आपके क्रोध का आघात कैसे सह सकती हूँ? अगर आप समझते है कि मैं आपकी सेवा के योग्य नहीं हूँ, तो मुझे अपने हाथों से विष का प्याला दे दीजिए। मैं उसे सुधा समझकर सिर और आँखों से लगाऊँगी और आँखें बंद करके पी जाऊँगी। जब जीवन आपकी भेंट हो गया, तो आप मारें या जिलाएँ, यह आपकी इच्छा है। मुझे यही संतोष काफी है कि मेरी मृत्यु से आप निश्चिंत हो गए। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि मैं आपकी हूँ और सदैव आपकी रहूँगी; इस जीवन में ही नहीं, बल्कि अनंत तक।

अभागिनी,
कुसुम

यह पत्र पढ़कर मुझे कुसुम पर भी झुँझलाहट आने लगी और उस लौंडे से तो घृणा हो गई। माना, तुम स्त्री हो, आजकल के प्रथानुसार पुरुष को तुम्हारे ऊपर हर तरह का अधिकार है, लेकिन नम्रता की भी तो कोई सीमा होती है? तो उसे भी चाहिए कि उसकी बात न पूछे। स्त्रियों को धर्म और त्याग का पाठ पढ़ा-पढ़ाकर हमने उनके आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास दोनों का ही अंत कर दिया। अगर पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं, तो स्त्री भी पुरुष की मुहताज क्यों है? ईश्वर ने पुरुष को हाथ दिये है, तो क्या स्त्री को उससे वंचित रखा है? पुरुष के पास बुद्धि है, तो क्या स्त्री अबोध है? इसी नम्रता ने तो मरदों का मिजाज आसमान पर पहुँचा दिया। पुरुष रूठ गया, तो स्त्री के लिए मानो प्रलय आ गया। मैं तो समझता हूँ, कुसुम नहीं, उसका अभागा पति ही दया के योग्य है, जो कुसुम-जैसी स्त्री की कद्र नहीं कर सकता। मुझे ऐसा संदेह होने लगा कि इस

लौंडे ने कोई दूसरा रोग पाल रखा है। किसी शिकारी के रंगीन जाल में फँसा हुआ है।

खैर, मैंने तीसरा पत्र खोला -

प्रियतम! अब मुझे मालूम हो गया कि मेरी जिंदगी निरुद्देश्य है। जिस फूल को देखनेवाला, चुननेवाला कोई नहीं. वह खिलें तो क्यों? क्या इसीलिए कि मुरझाकर जमीन पर गिर पड़े और पैरों से कुचल दिया जाए? मैं आपके घर में एक महीना रहकर दोबारा आई हूँ। ससुरजी ही ने मुझे बुलाया, ससुरजी ही ने मुझे बिदा कर दिया। इतने दिनों में आपने एक बार भी मुझे दर्शन न दिये। आप दिन में बीसों ही बार घर में आते थे, अपने भाई-बहनों से हँसते-बोलते थे, या मित्रों के साथ सैर-तमाशे देखते थे; लेकिन मेरे पास आने की आपने कसम खा ली थी। मैंने कितनी बार आपके पास संदेश भेजे, कितना अनुनय-विनय किया, कितनी बार बेशर्मी करके आपके कमरे में गई; लेकिन आपने कभी मुझे आँख उठाकर भी न देखा। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि कोई प्राणी इतना हृदयहीन हो सकता है। प्रेम के योग्य नहीं, विश्वास के योग्य नहीं, सेवार करने के भी योग्य नहीं, तो क्या दया के भी योग्य नहीं?

मैंने उस दिन कितनी मेहनत और प्रेम से आपके लिए रसगुल्ले बनाए थे। आपने उन्हें हाथ से छुआ भी नहीं। जब आप मुझसे इतने विरक्त हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि जीकर क्या करूँ? न-जाने यह कौन-सी आशा है, जो मुझे जीवित रखे हुए है। क्या अंधेर है कि आप सजा तो देते है; पर अपराध नहीं बतलाते। यह कौन-सी नीति है? आपको ज्ञात है, इस एक मास में मैंने मुश्किल से दस दिन आपके घर में भोजन किया होगा। मैं इतनी कमजोर हो गई हूँ कि चलती हूँ तो आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। आँखों में जैसे ज्योति ही नहीं रही! हृदय में मानो रक्त का संचालन ही नहीं रहा। खैर, सता लीजिए, जितना जी चाहे। इस अनीति का अंत भी एक दिन हो ही जाएगा। अब तो मृत्यु ही पर सारी आशाएँ टिकी हुई हैं। अब मुझे प्रतीत हो रहा है कि मेरे मरने की खबर

पाकर आप उछलेंगे और हल्की साँस लेंगे, आपकी आँखों से आँसू की एक बूँद भी न गिरेगी; पर यह आपका दोष नहीं, मेरा दुर्भाग्य है। उस जन्म में मैंने कोई बहुत बड़ा पाप किया था। मैं चाहती हूँ मैं भी आपकी परवाह न करूँ, आप ही की भाँति आपसे आखें फेर लूँ, मुँह फेर लूँ, दिल फेर लूँ; लेकिन न-जाने क्यों मुझमें वह शक्ति नहीं है। क्या लता वृक्ष की भाँति खड़ी रह सकती है? वृक्ष के लिए किसी सहारे की जरूरत नहीं। लता वह शक्ति कहाँ से लाए? वह तो वृक्ष से लिपटने के लिए पैदा की गई है। उसे वृक्ष से अलग कर दो और वह सूख जाएगी। मैं आपसे पृथक् अपने अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकती। मेरे जीवन की हर एक गति, प्रत्येक विचार, प्रत्येक कामना में आप मौजूद होते हैं। मेरा जीवन वह वृत्त है, जिसके केंद्र आप है। मैं वह हार हूँ, जिसके प्रत्येक फूल में आप धागे की भाँति घुसे हैं। उस घागे के बगैर हार के फूल बिखर जाएँगे और धूल में मिल जाएँगे।

मेरी एक सहेली है, शन्नो। उसका इस साल पाणिग्रहण हो गया है। उसका पति जब ससुराल आता है, शन्नो के पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। दिन-भर में न जाने कितने रूप बदलती है। मुख-कमल खिल जाता है। उल्लास सँभाले नहीं सँभलता। उसे बिखेरती, लुटाती चलती है - हम जैसे अभागों के लिए। जब आकर मेरे गले से लिपट जाती है, तो हर्ष और उन्माद की वर्षा से जैसे मैं लथपथ हो जाती हूँ। दोनों अनुराग से मतवाले हो रहे हैं। उनके पास धन नहीं है, जायदाद नहीं है। मगर अपनी द्ररिद्रता में ही मगन हैं। इस अखंड प्रेम का एक क्षण! उसकी तुलना में संसार की कौन-सी वस्तु रखी जा सकती है? मैं जानती हूँ, यह रँगरेलियाँ और बेफिक्रियाँ बहुत दिन न रहेंगी। जीवन की चिंताएँ और दुराशाएँ उन्हें भी परास्त कर देंगी, लेकिन ये मधुर स्मृतियाँ संचित धन की भाँति अंत तक उन्हें सहारा देती रहेंगी। प्रेम में भीगी हुई सूखी रोटियाँ, प्रेम में रँगे हुए मोटे कपड़े और प्रेम के प्रकाश से आलोकित छोटी-सी कोठरी, अपनी इस विपन्नता में भी वह स्वाद, वह शोभा और विश्राम रखती है, जो शायद देवताओं को स्वर्ग में भी नसीब नहीं। जब शन्नों का पति अपने घर चला जाता है, तो वह दुखिया किस तरह फूट-फूटकर रोती है कि मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। उसके पत्र आ

जाते हैं, तो मानो उसे कोई विभूति मिल जाती है। उसके रोने में भी, उसकी विफलताओं में भी, उसके उपालम्भों में भी एक स्वाद है, एक रस है। उसके आँसू व्यग्रता और विह्वलता के हैं, मेरे आँसू निराशा और दुःख के। उसकी व्याकुलता में प्रतीक्षा और उल्लास है, मेरी व्याकुलता में दैन्य और परवशता। उसके उपालम्भ में अधिकार और ममता है, मेरे उपालम्भ में भग्नता और रुदन!

पत्र लंबा हुआ जाता है और दिल का बोझ हलका नहीं होता। भयंकर गरमी पड़ रही है। दादा मुझे मसूरी ले जाने का विचार कर रहे है। मेरी दुर्बलता से उन्हें 'टी.बी.' का संदेह हो रहा है। वह नहीं जानते कि मेरे लिए मसूरी नहीं, स्वर्ग भी काल-कोठरी है।

अभागिन,
-कुसुम

मेरे पत्थर के देवता! कल मसूरी से लौट आई। लोग कहते है, बड़ा स्वास्थ्यवर्द्धक और रमणीक स्थान है, होगा। मैं तो एक दिन भी कमरे से नहीं निकली। भग्न-हृदयों के लिए संसार सूना है।

मैंने रात एक बड़े मजे का सपना देखा। बतलाऊँ; पर क्या फायदा? न जाने क्यों मैं अब भी मौत से डरती हूँ। आशा का कच्चा धागा मुझे अब भी जीवन से बाँधे हुए है। जीवन-उद्यान के द्वार पर जाकर बिना सैर किए लौट आना कितना हसरतनाक है। अंदर क्या सुषमा है, क्या आनंद है। मेरे लिए वह द्वार ही बंद है। कितनी अभिलाषाओं से विहार का आनंद उठाने चली थी - कितनी तैयारियों से - पर मेरे पहुँचते ही द्वार बंद हो गया है।

अच्छा बतलाओ, मैं मर जाऊँगी तो मेरी लाश पर आँसू की दो बूंदें गिराओगे? जिसकी जिंदगी-भर की जिम्मेदारी ली थी, जिसकी सदैव के लिए बाँह पकड़ी थी, क्या उसके साथ इतनी भी उदारता नह करोगे? मरनेवालों के अपराध सभी क्षमा

कर दिया करते हैं। तुम भी क्षमा कर देना। आकर मेरे शव को अपने हाथों से नहलाना, अपने हाथों से सोहाग के सिंदूर लगाना, अपने हाथ से सोहाग की चूड़ियाँ पहनाना, अपने हाथ से मेरे मुँह में गंगाजल डालना, दो-चार पग कंधा दे देना, बस, मेरी आत्मा संतुष्ट हो जाएगी और तुम्हें आशीर्वाद देगी। मैं वचन देती हूँ कि मालिक के दरबार में तुम्हारा यश गाऊँगी। क्या यह भी महँगा सौदा है? इतने-से शिष्टाचार से तुम अपनी सारी जिम्मेदारियों से मुक्त हुए जाते हो। आह! मुझे विश्वास होता कि तुम इतना शिष्टाचार करोगे, तो मैं कितनी खुशी से मौत का स्वागत करती। लेकिन मैं तुम्हारे साथ अन्याय न करूँगी। तुम कितने ही निष्ठुर हो, इतने निर्दयी नहीं हो सकते। मैं जानती हूँ; तुम यह समाचार पाते ही आओगे और शायद एक क्षण के लिए मेरी शोक-मृत्यु पर तुम्हारी आँखें रो पड़े। कहीं मैं अपने जीवन में वह शुभ अवसर देख सकती!

अच्छा, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकती हूँ? नाराज न होना। क्या मेरी जगह किसी और सौभाग्यवती ने ले ली है? अगर ऐसा है, तो बधाई! जरा उसका चित्र मेरे पास भेज देना। मैं उसकी पूजा करूँगी, उसके चरणों पर शीश नवाऊँगी। मैं जिस देवता को प्रसन्न न कर सकी, उसी देवता से उसने वरदान प्राप्त कर लिया। ऐसी सौभागिनी के तो चरण धो-धो पीना चाहिए। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम उसके साथ सुखी रहो। यदि मैं उस देवी की कुछ सेवा कर सकती, अपरोक्ष न सही, परोक्ष रूप से ही तुम्हारे कुछ काम आ सकती। अब मुझे केवल उसका शुभ नाम और स्थान बता दो, मैं सिर के बल दौड़ी हुई उसके पास जाऊँगी और कहूँगी - देवी, तुम्हारी लौंडी हूँ, इसलिए कि तुम मेरे स्वामी की प्रेमिका हो। मुझे अपने चरणों में शरण दो। मैं तुम्हारे लिए फूलों की सेज बिछाऊँगी, तुम्हारी माँग मोतियों से भरूँगी, तुम्हारी एड़ियों में महावर रचाऊँगी - यह मेरी जीवन की साधना होगी! यह न समझना कि मैं जलूँगी या कुढ़ूँगी। जलन तब होती है, जब कोई मुझे मेरी वस्तु छीन रहा हो। जिस वस्तु को अपना समझने का मुझे कभी सौभाग्य न हुआ, उसके लिए मुझे जलन क्यों हो।

अभी बहुत कुछ लिखना था; लेकिन डाक्टर साहब आ गए है। बेचारा हृदयदाह को टी.बी. समझ रहा हैं।

दुःख की सताई हुई,
कुसुम

इन दोनों पत्रों ने धैर्य का प्याला भर दिया! मैं बहुत ही आवेशहीन आदमी हूँ। भावुकता मुझे छू भी नहीं गई। अधिकांश कलाविदों की भाँति मैं भी शब्दों से आंदोलित नहीं होता। क्या वस्तु दिल से निकलती है, क्या वस्तु मर्म को स्पर्श करने के लिए लिखी गई है, यह भेद बहुधा मेरे साहित्यिक आनंद में बाधक हो जाता है, लेकिन इन पत्रों ने मुझे आपे से बाहर कर दिया। एक स्थान पर तो सचमुच मेरी आँखें भर आईं। यह भावना कितनी वेदनापूर्ण थी कि वही बालिका, जिस पर माता-पिता प्राण छिड़कते रहते थे, विवाह होते ही इतनी विपदग्रस्त हो जाए! विवाह क्या हुआ, मानो उसकी चिता बनी, या उसकी मौत का परवाना लिखा गया। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी वैवाहिक दुर्घटनाएँ कम होती हैं; लेकिन समाज की वर्तमान दशा में उनकी संभावना बनी रहती है। जब तक स्त्री-पुरुष के अधिकार समान न होंगे, ऐसे आघात नित्य होते रहेंगे। दुर्बल को सताना कदाचित् प्राणियों का स्वभाव है। काटनेवाले कुत्तों से लोग दूर भागते है, सीधे कुत्ते पर बालवृंद विनोद के लिए पत्थर फेंकते हैं। तुम्हारे दो नौकर एक ही श्रेणी के हों, उनमें कभी झगड़ा न होगा; लेकिन आज उनमें से एक अफसर और दूसरे को उसका मातहत बना दो, फिर देखो, अफसर साहब अपने मातहत पर कितना रोब जमाते हैं। सुखमय दाम्पत्य की नींव अधिकार-साम्य पर ही रखी जा सकती है। इस वैषम्य में प्रेम का निवास हो सकता है, मुझे तो इसमें संदेह है। हम आज जिसे स्त्री-पुरुषों में प्रेम कहते है, वह वही प्रेम है, जो स्वामी को अपने पशु से होता है। पशु सिर झुकाए काम किए चला जाए, स्वामी उसे भूसा और खली भी देखा, उसकी देह भी सहलाएगा, उसे आभूषण भी पहनाएगा; लेकिन

जानवर ने जरा चाल धीमी की, जरा गर्दन टेढ़ी की कि मालिक का चाबुक पीठ पर पड़ा। इसे प्रेम नहीं कहते।

खैर, मैंने पाँचवाँ पत्र खोला -

जैसा मुझे विश्वास था, आपने मेरे पिछले पत्र का भी उत्तर न दिया। इसका खुला हुआ अर्थ यह है कि आपने मुझे परित्याग करने का संकल्प कर लिया है। जैसी आपकी इच्छा! पुरुष के लिए स्त्री पाँव की जूती है, स्त्री के लिए तो पुरुष देव तुल्य है, बल्कि देवता से भी बढ़कर। विवेक का उदय होते ही वह पति की कल्पना करने लगती है। मैंने भी वही किया। जिस समय मैं गुड़िया खेलती थी, उसी समय आपने गुड्डे के रूप में मेरे मनोदेश में प्रवेश किया। मैंने आपके चरणों को पखारा, माला-फूल और नैवेद्य से आपका सत्कार किया। कुछ दिनों के बाद कहानियाँ सुनने और पढ़ने की चाट पड़ी, तब आप कथाओं के नायक के रूप में मेरे घर आए। मैंने आपको हृदय में स्थान दिया। बाल्यकाल ही से आप किसी-न-किसी रूप में मेरे जीवन में घुसे हुए थे। वे भावनाएँ मेरे अंतरस्तल की गहराइयों तक पहुँच गई है। मेरे अस्तित्व का एक-एक अणु उन भावनाओं से गुँथा हुआ है। उन्हें दिल से निकाल डालना सहज नहीं है। उसके साथ मेरे जीवन के परमाणु भी बिखर जाएँगे, लेकिन आपकी यही इच्छा है तो यही सही। मैं आपकी सेवा में सब कुछ करने को तैयार थी। अभाव और विपन्नता का तो कहना ही क्या मैं तो अपने को मिटा देने को भी राजी थी। आपकी सेवा में मिट जाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य था। मैंने लज्जा और संकोच का परित्याग किया, आत्म-सम्मान को पैरों से कुचला, लेकिन आप मुझे स्वीकार नहीं करना चाहते। मजबूर हूँ। आपका कोई दोष नहीं। अवश्य मुझसे कोई ऐसी बात हो गई है, जिसने आपको इतना कठोर बना दिया है। आप उसे जबान पर लाना भी उचित नहीं समझते। मैं इस निष्ठुरता के सिवा और हर एक सजा झेलने को तैयार थी। आपके हाथ से जहर का प्याला लेकर पी जाने में मुझे विलंब न होता, किंतु विधि की गति निराली है! मुझे पहले इस सत्य के स्वीकार करने में बाधा थी कि स्त्री पुरुष की दासी है। मैं उसे पुरुष की सहचरी, अर्द्धांगिनी समझती थी, पर

अब मेरी आँखें खुल गई। मैंने कई दिन हुए एक पुस्तक में पढ़ा था कि आदिकाल में स्त्री पुरुष की उसी तरह संपत्ति थी, जैसा गाय-बैल या खेतबारी। पुरुष को अधिकार था स्त्री को बेचे, गिरो रखे या मार डाले। विवाह की प्रथा उस समय केवल यह थी कि वर-पक्ष अपने सूर सामंतों को लेकर सशस्त्र आता था कन्या को उड़ा ले जाता था। कन्या के साथ कन्या के घर में रुपया-पैसा, अनाज या पशु जो कुछ उसके हाथ लग जाता था, उसे भी उठा ले जाता था। वह स्त्री को अपने घर ले जाकर, उसके पैरों में बेड़ियाँ डालकर घर के अंदर बंद कर देता था। उसके आत्म-सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है, सोहाग स्त्री की सबसे बड़ी विभूति है। आज कई हजार वर्षों के बीतने पर पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पुरानी सभी प्रथाएँ कुछ विकृत या संस्कृत रूप में मौजूद है। आज मुझे मालूम हुआ कि उस लेखक ने स्त्री-समाज की दशा का कितना सुंदर निरूपण किया था।

अब आपसे मेरा सविनय अनुरोध है और यही अंतिम अनुरोध है कि आप मेरे पत्रों को लौटा दें। आपके दिए हुए गहने और कपड़े अब मेरे किसी काम के नहीं। इन्हें अपने पास रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। आप जिस समय चाहें, वापस मँगवा लें। मैंने उन्हें एक पिटारी में बंद करके अलग रख दिया है। उसकी सूची भी वहीं रखी हुई है, मिला लीजिएगा। आज से आप मेरी जबान या कलम से कोई शिकायत न सुनेंगे। इस भ्रम को भूलकर भी दिल में स्थान न दीजिएगा कि मैं आपसे बेवफाई या विश्वासघात करूँगी। मैं इसी घर में कुढ़-कुढ़कर मर जाऊँगी, पर आपकी ओर से मेरा मन कभी मैला न होगा। मैं जिस जलवायु में पली हूँ, उसका मूल तत्त्व है पति में श्रद्धा। ईर्ष्या या जलन भी उस भावना को मेरे दिल से नहीं निकाल सकती। मैं आपकी कुल-मर्यादा की रक्षिका हूँ। उस अमानत में जीते-जी खनायत न करूँगी। अगर मेरे बस में होता, तो मैं उसे भी वापस कर देती, लेकिन यहाँ मैं भी मजबूर हूँ और आप भी मजबूर है। मेरी ईश्वर से यही विनती है कि आप जहाँ रहें, कुशल से रहें। जीवन में मुझे सबसे कटु अनुभव जो हुआ, वह यही है कि नारी-जीवन अधम है - अपने लिए, अपने माता-पिता के लिए, अपने पति के लिए। उसकी कदर न माता के घर में है, न

पति के घर में। मेरा घर शोकागार बना हुआ है। अम्माँ रो रही है, दादा रो रहे है। कुटुंब के लोग रो रहे है, एक मेरी जात से लोगों को कितनी मानसिक वेदना हो रही है, कदाचित् वे सोचते होंगे, यह कन्या कुल में न आती तो कितनी अच्छा होता। मगर सारी दुनिया एक तरफ हो जाए, आपके ऊपर विजय नहीं पा सकती। आप मेरे प्रभु है। आपका फैसला अटल है। उसकी कहीं अपील नहीं, कही फरियाद नहीं। खैर, आज से यह कांड समाप्त हुआ। अब मैं हूँ और मेरा दलित, भग्न हृदय। हसरत यही है कि आपकी कुछ सेवा न कर सकी!

अभागिनी,
कुसुम

2

मालूम नहीं, मैं कितनी देर तक मूक वेदना की दशा में बैठा रहा कि महाशय नवीन बोले- आपने इस पत्रों को पढ़कर क्या निश्चय किया?

मैने रोते हुए हुदय से कहा- अगर इन पत्रों ने उस नर-पिशाच के दिल पर कोई असर न किया, तो मेरा पत्र भला क्या असर करेगा। इससे अधिक करुणा और वेदना मेरी शक्ति के बाहर हैं। ऐसा कौन-सा मार्मिक भाव हैं, जिसे इन पत्रों में स्पर्श न किया गया हो। दया, लज्जा, तिरस्कार, न्याय, मेरे विचार में तो कुसुम ने कोई पहलू नहीं छोड़ा। मेरे लिए अब यही अन्तिम उपाय हैं कि उस शैतान के सिर पर सवार हो जाऊँ और उससे मुँह-दर-मुँह बातें करके इस समस्या की तह तक पहुँचने की चेष्टा करूँ। अगर उससे मुझे कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दिया, तो मैं उसका और अपना खून एक कर दूँगा। या तो मुझे फाँसी होगी, या वही कालेपानी जायगा। कुसुम ने जिस धैर्य और साहस से काम लिया हैं, वह सराहनीय हैं। आप उसे सान्त्वना दीजिएगा। मैं आज रात की गाड़ी से मुरादाबाद

जाऊँगा और परसों तक जैसी कुछ परिस्थिति होगी; उसकी आपको सूचना दूँगा! मुझे तो यह कोई चरित्रहीन और बुद्धिहीन युवक मालूम होता हैं।

मैं उस बहक में जाने क्या-क्या बकता रहा। इसके बाद हम दोनों भोजन करके स्टेशन चले। वह आगरे गये, मैंने मुरादाबाद का रास्ता लिया। उनके प्राण अब भी सूखे जाते थे कि क्रोध के आवेश में कोई पागलपन न कर बैठूँ। मेरे बहुत समझाने पर उनका चित्त शान्त हुआ।

मैं प्रातःकाल मुरादाबाद पहुँचा और जाँच शुरू कर दी। इस युवक के चरित्र के विषय में मुझे जो सन्देग था, वह गलत निकला। मुहल्ले में, कालेज में ; उसके इष्ट-मित्रों में, सभी उसके प्रशंसक थे। अँधेरा और गहरा होता हुआ जान पड़ा। सन्ध्या-समय में उसके घर जा पहुँचा। जिस निष्कपट भाव से वह दौड़कर मेरे पैरों पर झुका हैं, वह मैं नहीं भूल सकता। ऐसा वाकचतुर, ऐसा सुशील और विनीत युवक मैने नहीं देखा। बाहर और भीतर में इतना आकाश-पाताल का अन्तर मैने कभी न देखा था। मैंने कुशल-क्षेम और शिष्टाचार के दो-चार वाक्यों के बाद पूछा- तुमसे मिलकर चित्त शान्त प्रसन्न हुआ; लेकिन आखिर कुसुम ने क्या अपराध किया हैं, जिसका तुम उसके इतना कठोर दंड दे रहे हो? उसने तुम्हारे पास कई पत्र लिखे, तुमने एक का भी उत्तर न दिया। वह दो-तीन बार यहाँ भी आयी, पर तुम उससे बोले तक नहीं। क्या उस निर्दोष बालिका के साथ तुम्हारा यह अन्याय नहीं हैं।

युवक ने लज्जित भाव से कहा- बहुत अच्छा होता कि आपने इस प्रश्न को न उठाया होता। उसका जवाब देना मेरे लिए बहुत मुश्किल हैं। मैंने तो इसे आप लोगों के अनुमान पर छोड़ दिया था; लेकिन इस गलतफहमी को दूर करने के लिए मुझे विवश होकर कहना पड़ेगा।

यह कहते-कहते वह चुप हो गया। बिजली की बत्ती पर भाँति-भाँति के कीट-पंतगे जमा हो गये। कई झींगुर उछल-उछलकर मुँह पर आ जाते थे; और जैसे मनुष्य पर अपनी विजय का परिचय देकर उड़ जाते थे। एक बड़ा-सा अँखफोड़

भी मेज पर बैठा था और शायद जस्त मारने के लिए अपनी देह तौल रहा था। युवक ने एक पंखा ला कर मेज पर रख दिया, जिसने विजयी कीट-पंतगों को दिखा दिया कि मनुष्य इतना निर्बल नहीं हैं, जितना वे समझ रहे थे। एक क्षण में मैदान साफ हो गया और हमारी बातों में दखल देने वाला कोई न रहा।

युवक ने सकुचाते हुए कहा- सम्भव हैं, आप मुझे अत्यन्त लोभी , कमीना और स्वार्थी समझे; लेकिन यथार्थ यह है कि इस विवाह से मेरी अभिलाषा न पूरी हुई, जो मुझे प्राणों से भी प्रिय थी। मैं विवाह पर रजामन्द न था, अपने पैरों पर बेड़ियाँ न डालना चाहता था; किन्तु जब महाशय नवीन बहुत पीछे पड़ गये और उनकी बातों से मुझे यह आशा हुई कि वह सब प्रकार से मेरी सहायता करने को तैयार हैं, तब मैं राजी हो गया; पर विवाह होने के बाद उन्होंने मेरी बात भी न पूछी। मुझे एक पत्र भी न लिखा कि कब तक वह मुझे विलायत भेजने का प्रबन्ध कर सकेंगे। हालांकि मैंने अपनी इच्छा उन पर पहले ही प्रकट कर दी थी; पर उन्होंने मुझे निराश करना ही उचित समझा। उनकी इस अकृपा ने मेरे सारे मनसूबे धूल में मिला दिये। मेरे लिए अब इसके सिवा और क्या रह गया हैं कि एल.एल.बी. पास कर लूँ और कचहरी में जूती फटफटाता फिरूँ।

मैने शिकायत की- तो आखिर तुम नवीनजी से क्या चाहते हो? लेन-देन में तो उन्होंने शिकायत का कोई अवसर नहीं दिया। तुम्हें विलायत भेजने का खर्च तो शायद उनके काबू से बाहर हो।

युवक ने सिर झुकाकर कहा- तो यह उन्हें पहले ही मुझसे कह देना चाहिए था। फिर मैं विवाह ही क्यो करता? उन्होंने चाहे कितना ही खर्च कर डाला हो; पर इससे मेरा क्या उपकार हुआ? दोनों तरफ से दस-बारह हजार रुपये खाक में मिल गये और उनके साथ मेरी अभिलाषाएँ खाक में मिल गयी। पिताजी पर तो कई हजार का ऋण हो गया हैं। वह अब मुझे इंगलैंड नहीं भेज सकते। क्या पूज्य नवीनजी चाहते तो मुझे इंगलैंड नहीं भेज देते? उनके लिए दस-पाँच हजार की कोई हकीकत नहीं।

मैं सन्नाटे मे आ गया। मेरे मुँह से अनायास निकल गया- छिः! वाह री दुनिया! और वाह रे हिन्दू-समाज! तेरे यहाँ ऐसे-ऐसे स्वार्थ के दास पड़े हुए हैं, जो एक अबला का जीवन संकट में डालकर उसके पिता पर ऐसे अत्याचार पूर्ण दबाव डालकर ऊँचा पद प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यार्जन के लिए विदेश जाना बुरा नहीं। ईश्वर सामर्थ्य दे तो शौक से जाओ; किन्तु पत्नी का परित्याग करके ससुर पर इसका भार रखना निर्लज्जता की पराकाष्ठा हैं। तारीफ की बात तो तब थी कि तुम अपने पुरुषार्थ से जाते। इस तरह किसी की गर्दन पर सवार होकर, अपना आत्म-सम्मान बेचकर गये तो क्या गये। इस पामर का दृष्टि में कुसुम का कोई मूल्य ही नहीं। वह केवल उसकी स्वार्थ-सिद्धि का साधनमात्र हैं। ऐसे नीच प्रकृति के आदमी से कुछ तर्क करना व्यर्थ था। परिस्थिति ने हमारी चुटिया उसके हाथ में रखी थी और हमें उसके चरणों पर सिर झुकाने के सिवाय और कोई उपाय न था।

दूसरी गाड़ी से मैं आगरे जा पहुँचा और नवीनजी से यह वृत्तांत कहा। उन बेचारे को क्या मालूम था कि यहाँ सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल दी गयी है। यद्यपि इस मन्दी ने उनकी वकालत ठंड़ी कर रखी है और वह दस-पाँच हजार का खर्च सुगमता से नहीं उठा सकते लेकिन इस युवक ने उनसे इसका संकेत भी किया होता, तो वह अवश्य कोई-न-कोई उपाय करते। कुसुम के सिवा दूसरा उनका कौन बैठा हुआ है? उन बेचारे को तो इस बात का ज्ञान ही न था। अतएव मैंने उनसे यह समाचार कहा, तो वह बोल उठे- छिः! इस जरा-सी बात के लिए इस भले आदमी ने इतना तूल दे दिया। आप आज ही उसे लिख दें कि वह जिस वक़्त जहाँ पढ़ने के लिए जाना चाहे, शौक से जा सकता हैं। मैं उसका सारा भार स्वीकार करता हूँ। साल-भर तक निर्दयी ने कुसुम को रुला-रुलाकर मार डाला।

घर में इसकी चर्चा हुई। कुसुम ने भी माँ से सुना। मालूम हुआ, एक हजार का चेक उसके पति के नाम भेजा जा रहा हैं; पर इस तरह, जैसे किसी संकट का मोचन करने के लिए अनुष्ठान किया जा रहा हो।

कुसुम ने भृकुटी सिकोड़कर कहा- अम्माँ, दादा से कह दो, कहीं रुपयें भेजने की जरूरत नहीं।

माता ने विस्मित होकर बालिका की ओर देखा- कैसे रुपये? अच्छा! वह! क्यों इसमें क्या हर्ज हैं? लड़के का मन है, तो विलायत जाकर पढ़े। हम क्यों रोकने लगे? यों भी उसी का हैं, वो भी उसी का नाम हैं। हमें कौन छाती पर लादकर ले जाना हैं?

'नहीं, आप दादा से कह दीजिए, एक पाई न भेजें।'

'आखिर इसमें क्या बुराई हैं?'

'इसीलिए कि यह उसी तरह की डाकाजनी हैं, जैसा बदमाश लोग किया करते हैं। अच्छे आदमी को पकड़कर ले गये और उसके घरवालों से उसके मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।'

माता ने तिरस्कार की आँखों से देखा।

'कैसी बातें करती हो बेटी? इतने दिनों के बाद को जाके देवता सीधे हुए हैं और तुम उन्हें फिर चिढ़ाये देती हो।'

कुसुम ने झल्लाकर कहा- ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा। जो आदमी इतनी स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूँ, वहाँ रुपये गये; तो मैं जहर खा लूँगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे आदमी का मुँह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और तुम्हें डर लगता हो तो मैं खुद कह दूँ! मैंने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया हैं।

माँ ने देखा, लड़की का मुखमंडल आरक्त हो उठा हैं। मानो इस प्रश्न पर वह न कुछ कहना चाहती हैं, न सुनना।

दूसरे दिन नवीनजी ने यह हाल मुझसे कहा, तो मैं एक आत्म-विस्मृत की दशा में दौड़ा हुआ गया और कुसुस को गले लगा लिया। मैं नारियों में ऐसा ही आत्माभिमान देखना चाहता हूँ। कुसुम ने वह कर दिखाया, जो मेरे मन में था और जिसे प्रकट करने का साहस मुझमें न था।

साल-भर हो गया है, कुसुम ने पति के पास एक पत्र भी नहीं लिखा और न उसका जिक्र ही करती है। नवीनजी ने कई बार जमाई को मना लाने की इच्छा प्रकट की; पर कुसुम उसका नाम भी नहीं सुनना चाहती । उसमें स्वावलम्बन की ऐसी दृढता आ गयी हैं कि आश्चर्य होता है। उसके मुख पर निराशा और वेदना के पीलेपन और तेज हीनता की जगह स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की लाली और तेजस्विता भासित हो गयी है।

***

खुदाई फौजदार

सेठ नानकचन्द को आज फिर वही लिफाफा मिला और वही लिखावट सामने आयी तो उसका चेहरा पीला पड़ गया। लिफाफा खोलते हुए हाथ और हृदय काँपने लगे। खत में क्यों हैं, यह उसे खूब मालूम था। इसी तरह के दो खत पहले पा चुके हैं। इस तीसरे खत में भी वहीं धमकियाँ हैं, इसमें उन्हें सन्देह न था। पत्र हाथ में लिए हुए आकाश की ओर ताकने लगे। वह दिल के मजबूत आदमी थे, धमकियों से डरना उन्होंने न सीखा था, मुर्दो से भी अपनी रकम वसूल कर लेते थे। दया या उपकार जैसी मानवीय दुर्बलताएँ उन्हें छू भी न गयी थी, नहीं तो महाजन कैसे बनते! उस पर धर्मनिष्ठ भी थे। हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनते थे। हर मंगल को महाबीर जी को लड्डू चढ़ाते थे, नित्य-प्रति जमुना में स्नान करते थे और हर एकादशी को व्रत रखते और ब्राह्मणों को भोजन कराते थे और इधर जबसे घी में करारा नफा होने लगा था, एक धर्मशाला बनवाने की फिक्र में थे। जमीन ठीक कर ली थी। उनके असामियों में सैकड़ो ही थवई और बेलदार थे, जो केवल सूद में ही काम को तैयार थे। इन्तजार यही था कि कोई ईंट और चूने वाला फँस जाय और दस-बीस हजार का दस्तावेज लिखा ले, तो सूद में ईंट और चूना भी मिल जाय। इस धर्मनिष्ठा ने उनकी आत्मा को और भी शक्ति प्रदान कर दी थी। देवताओं के आशीर्वाद औऱ प्रताप से उन्हें कभी किसी सौदे मे घाटा नहीं हुआ और भीषण परिस्थितियों में भी वह स्थिरचित्त रहने के आदी थे; किन्तु जबसे यह धमकियों से भरे पत्र मिलने लगे थे, उन्हें बरबस तरह-तरह की शंकाएँ व्यथित करने लगी थी। कहीं सचमुच डाकूओं ने छापा मारा, तो कौन उनकी सहायता करेगा? दैवी बाधाओं मे तो देवताओं की सहायता पर वह तकिया कर सकते थे, पर सिर पर लटकती हुई इस तलवार के सामने वह श्रद्धा कुछ काम न देती थी। रात को उनके द्वार पर केवल एक चौकीदार रहता था। अगर दस-बीस हथियारबन्द आदमी आ जायँ तो वह अकेला क्या कर सकता हैं? शायद उनकी आहट पाते ही भाग खड़ा हो। पड़ोसियों में ऐसा कोई नजर न आता था, जो इस संकट में काम आवे। यद्यपि सभी उसके असामी थे या रह चुके थे। लेकिन यह एहसान-

फरामोशों का सम्प्रदाय हैं, जिस पतल में खाता हैं, उसी में छेद करता हैं; जिसके द्वार पर अवसर पड़ने पर माक रगडता हैं, उसी का दुश्मन हो जाता हैं। इनसे कोई आशा नहीं। हाँ, किवाड़े सुढ़ृढ हैं; उन्हें तोड़ना आसान नही हैं, फिर अन्दर का दरवाजा भी तो हैं। सौ आदमी लग जायँ तो हिलाये न हिले। और किसी ओर से हमले का खटका नही । इतनी ऊँची सपाट दीवार पर कोई क्या खा के चढेगा? फिर उसके पास राइफलें भी तो हैं। एक राइफल से वह दर्जनों आदमियों को भूनकर रख देंगे। मगर इतने प्रतिबन्धो के होते हुए भी उनके मन में एक हूक-सी समायी रहती थी। कौन जाने चौकीदार भी उन्हीं में मिल गया हो, खिदमतगार भी आस्तीन के साँप हो गये हो! इसलिए वह अब बहुधा अन्दर ही रहते थे। और जब तक मिलने वालों का पता-ठिकाना न पूछ ले, उनसे मिलते न थे। फिर भी दो-चार घंटे तो चौपाल में बैठने ही पड़ते थे; नहीं तो सारा कारोबार मिट्टी में मिल जाता! जितनी देर बाहर रहते, उनके प्राण जैसे सूली पर टँगे रहते थे। उधर उनके मिजाज में बड़ी तब्दीली हो गयी थी। इतने विनम्र और मिष्टभाषी वह कभी न थे। गालियाँ तो क्या, किसी से तू-तकार भी न करते। सूद की दर भी कुछ घटा दी थी; लेकिन फिर भी चित्त को शान्ति न मिलती थी। आखिर कई मिनट तक दिल को मजबूत करने के बाद उन्होंने पत्र खोला, और जैसे गोली लग गयी। सिर में चक्कर आ गया और सारी चीजें नाचती हुई मालूम हुई। साँस फूलने लगी, आँखें फैल गयी। लिखा था, तुमने हमारे दोनों पत्रों पर कुछ भी ध्यान न दिया। शायद तुम समझते होगे कि पुलिस तुम्हारी रक्षा करेंगी; लेकिन यह तुम्हारा भ्रम हैं। पुलिस उस वक़्त आयेंगी, जब हम अपना काम करके सौ कोस निकल गये होंगे। तुम्हारी अक्ल पर पत्थर पड़ गया हैं। इसमें हमारा कोई दोष नहीं हैं। हम तुमसे सिर्फ 25 हजार रुपये माँगते हैं। इतने रुपयें दे देना तुम्हारे लिये कुछ मुश्किल नहीं। हमें पता हैं कि तुम्हारे पास एक लाख मोहरें रखी हुई हैं; लेकिन विनाशकाले विपरीत बुद्धि; अब हम तुम्हें और ज्यादा न समझायेंगे। तुमको समझाने की चेष्टा करना ही व्यर्थ हैं; अब हम तुम्हें ज्यादा न समझायेंगे। आज शाम तक अगर रुपये न आ गये, तो रात को तुम्हारे ऊपर धावा होगा। अपनी हिफाजत के लिए जिसे बुलाना चाहो, बुला लो, जितने आदमी और हथियार जमा करना चाहो, जमा कर लो। हम ललकार कर

आयेंगे और दिनदहाड़े आयेंगे। हम चोर नहीं हैं, हम वीर हैं और हमारा विश्वास बाहुबल में हैं। हम जानते हैं कि लक्ष्मी उसी के गले में जयमाल डालती हैं, जो धनुष तोड़ सकता हैं, मछली को वेध सकता हैं। यदि...

सेठजी ने तुरन्त बही-खाते बन्द कर दिये और रोकड़ सँभालकर तिजोरी में रख दिया और सामने का द्वार बन्द करके मरे हुए से केसर के पास आकर बोले- आज फिर वहीं खत आया, केसर! आज ही आ रहे हैं।

केसर दोहरे बदन की स्त्री थी, यौवन बीत जाने पर भी युवती, शौक-सिंगार में लिप्त रहने वाली, उस फलहीन वृक्ष की तरह, जो पतझड़ में भी हरी-हरी पत्तियों से लदा रहता हैं। सन्तान की विफल कामना में जीवन का बड़ा भाग बिता चुकने के बाद, अब उसे संचित माया को भोगने की धुन सवार रहती थी। मालूम नही, कब आँखें बन्द हो जायँ, फिर यह थाती किसके हाथ लगेगी, कौन जाने? इसलिए उसे सबसे अधिक भय बीमारी का था, जिसे वह मौत का पैगाम समझती थी और नित्य ही कोई-न-कोई दवा खाती रहती थी। काया के इस वस्त्र को उस समय तक उतारना न चाहती थी, जब तक उसमें एक तार भी बाकी रहें। बाल-बच्चे होते तो वह मृत्यु का स्वागत करती, लेकिन अब तो उसके जीवन ही के साथ अन्त था, फिर क्यों न वह अधिक-से-अधिक समय तक जिये। हाँ, वह जीवन निरानन्द अवश्य था, उस मधुर ग्रास की भाँति, जिसे हम इसलिए खा जाते हैं कि रखे-रखे सड़ जायगा।

उसने घबराकर कहा- मैं तुमसे कब से कह रहीं हूँ कि दो-चार महीनों के लिए यहाँ से कहीं भाग चलो, लेकिन तुम सुनते ही नहीं। आखिर क्या करने पर तुले हुए हो?

सेठजी सशंक तो थे और यह स्वाभाविक थी- ऐसी दशा में कौन शान्त रह सकता था - लेकिन वह कायर नही थे। उन्हें अब भी विश्वास था कि अगर कोई संकट आ पड़े, तो वह पीछे कदम न हटायेंगे। जो कुछ कमजोरी आ गयी थी, वह संकट को सिर पर देखकर भाग गयी थी। हिरन भी तो भागने की राह न पाकर

शिकारी पर चोट कर बैठता हूँ। कभी-कभी नहीं, अक्सर संकट पड़ने पर ही आदमी के जौहर खुलते हैं। इतनी देर में सेठजी ने एक तरह से भावी विपत्ति का सामना करने का पक्का इरादा कर लिया था। डर क्यों, जो कुछ होना हैं, वह होकर रहेगा। अपनी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य हैं, मरना-जीना विधि के हाथ में हैं। सेठानीजी को दिलासा देते हुए बोले- तुम नाहक इतना डरती हो केसर, आखिर वे सब भी तो आदमी हैं, अपनी जान का मोह नहीं उन्हें भी हैं, नहीं तो यह कुकर्म ही क्यों करते? मैं खिड़की की आड़ से दस-बीस आदमियों को गिरा सकता हूँ। पुलिस को इत्तला देने भी जा रहा हूँ। पुलिस का कर्त्तव्य हैं कि हमारी रक्षा करे। हम दस हजार सालाना टैक्स देते हैं, किसलिए? मैं अभी दरोगा जी के पास जाता हूँ। जब सरकार हमसे टैक्स लेती हैं, तो हमारी मदद करना उसका धर्म हो जाता हैं।

राजनीति का यह तत्व उसकी समझ में नहीं आया। वह तो किसी तरह उस भय से मुक्त होना चाहती थी, जो उसके दिल में साँप की भाँति बैठा फुफकार रहा था। पुलिस का उसे जो अनुभव था, उससे चित्त को सन्तोष न होता था। बोली- पुलिसवालों को बहुत देख चुकी । वारदात के समय तो उनकी सूरत नही दिखाई देती। जब वारदात हो चुकती हैं, तब अलबत्ता शान के साथ आकर रोब जमाने लगते हैं।

'पुलिस तो सरकार का राज चला रही हैं। तुम क्या जानो?'

'मैं तो कहती हूँ, यों अगर कल वारदात होने वाली होगी, तो पुलिस को खबर देने से आज ही हो जायेगी। लूट के माल में इनका भी साझा होता हैं।'

'जानता हूँ देख चुका हूँ और रोज देखता हूँ; लेकिन मैं तो सरकार को दस हजार का सालाना टैक्स देता हूँ। पुलिसवालों का भी आदर-सत्कार भी करता रहता हूँ। अभी जाड़ों में सुपरिंटेंडेंट साहब आये थे, तो मैं पूरी रसद पहुँचायी थी। एक पूरा कनस्तर घी और एक शक्कर की पूरी बोरी भेज दी थी। यह सब खिलाना-पिलाना किस दिन काम आयेगा। हाँ, आदमी को सोलहों आने दूसरों के भरोसे न

बैठना चाहिए; इसलिए मैने सोचा हैं, तुम्हें भी बन्दूक चलाना सिखा हूँ? हम दोनो बन्दूकें छोड़ना शुरू करेंगे, तो डाकूओं की क्या मजाल हैं कि अन्दर कदम रख सकें?'

प्रस्ताव हास्यजनक था। केसर ने मुस्कराकर कहा- हाँ और क्या, अब आज मैं बन्दूक चलाना सीखूँगी। तुमको जब देखों, हँसी सूझती हैं।

'इसमें हँसी की क्या बात हैं? आजकल तो औरतों की फौजें बन रही हैं। सिपाहियों की तरह औरतें भी कवायद करती हैं, बन्दूक चलाती हैं, मैदानों में खेलती हैं। औरतों के घर में बैठने का जमाना अब नहीं हैं।'

'विलायत की औरतें बन्दूक चलाती होगी, यहाँ की औरतें क्या चलायेंगी। हाँ, हाथ भर की जबान चाहे चला ले।'

'यहाँ की औरतों ने बहादुरी के जो-जो काम किये हैं, उनसे इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। आज दुनिया उन वृतान्तों को पढ़कर चकित हो जाती हैं।'

'पुराने जमाने की बातें छोड़ो। तब औरतें बहादुर रही होगी। आज कौन बहादुरी कर रहीं हैं?'

'वाह! अभी हजारों औरतें घर-बार छोड़कर हँसते-हँसते जेल चली गयी। यह बहादुरी नहीं थीं? अभी पंजाब में हरनाद कुँवर ने अकेले चार सशक्त डाकूओं को गिरफ्तार किया और लाट साहब तक ने उसकी प्रशंसा की।'

'क्या जाने वे कैसी औरते हैं। मैं तो डाकूओं को देखते ही चक्कर खाकर गिर पड़ूँगी।'

उसी वक़्त नौकर ने आकर कहा- सरकार, थाने से चार कानिस्टिबिल आये हैं। आपको बुला रहे हैं।

सेठजी ने प्रसन्न होकर कहा- 'थानेदार भी हैं?'

'नहीं सरकार, अकेले कानिस्टिबिल हैं।'

'थानेदार क्यों नहीं आया?' - यह कहते हुए सेठजी ने पान खाया औऱ बाहर निकले।

2

सेठजी को देखते ही चारों कानिस्टिबिल ने झुककर सलाम किया, बिल्कुल अंगरेजी कायदे से, मानो अपने किसी अफसर को सैल्यूट कर रहे हो। सेठजी ने उन्हें बेचो पर बैठाया और बोले- दरोगाजी का मिजाज तो अच्छा हैं? मैं तो उनके पास आनेवाला था।

चारों में जो सबसे प्रौढ़ था, जिसकी आस्तीन पर कई बिल्ले लगे हुए थे, बोला- आप क्यों तकलीफ करते हैं, वह तो खुद ही आ रहे थे; पर एक बड़ी जरूरी तहकीकात आ गयी, इससे रुक गये। कल आपसे मिलेंगे। जबसे यहाँ डाकूओं की खबरें आयी हैं, बेचारे बहुत घबरायें हुए हैं। आपकी तरफ हमेशा उनका ध्यान रहता हैं। कई बार कह चुके हैं कि मुझे सबसे ज्यादा फिकर सेठजी की हैं। गुमनाम खत तो आपके पास भी आये होगे?

सेठजी ने लापरवाही दिखाकर कहा- अजी, ऐसी चिट्ठियाँ आती ही रहती हैं, इनकी कौन परवाह करता हैं। मेरे पास तो तीन खत आ चुके हैं, मैने किसी से जिक्र भी नहीं किया।

कानिस्टिबिल हँसा- दरोगाजी को खबर मिली थी।

'सच!'

'हाँ, साहब? रत्ती-रत्ती खबर मिलती रहती हैं। यहाँ तक मालूम हुआ कि कल आपके मकान पर उनका धावा होनेवाला हैं। जभी तो आज दरोगाजी ने मुझे आपकी खिदमत में भेजा।'

'मगर वहाँ कैसे खबर पहुँची? मैंने तो किसी से कहा ही नहीं।'

कानिस्टिबिल ने रहस्यमय भाव से कहा- हुजूर, यह न पूछे। इलाके के सबसे बड़े सेठ के पास ऐसे खत आयें और पुलिस को खबर न हो! भला, कोई बात हैं। ऊपर से बराबर ताकीद आती रहती हैं कि सेठजी को शिकायत का कोई मौका न दिया जाय। सुपरिंटेंडेंट साहब की खास ताकीद हैं आपके लिए। और हुजूर, सरकार भी तो आप ही के बूते पर चलती हैं। सेठ-साहुकारों के जान-माल की हिफाजत न करें, तो रहें कहाँ? हमारे होते मजाल हैं कि कोई आपकी तरफ तिरछी आँखों से देख सके; मगर कम्बख्त डाकू इतने दिलेर और तादाद में इतने ज्यादा हैं कि थाने के बाहर उनसे मुकाबला करना मुश्किल हैं। दरोगाजी गारद माँगने की बात सोच रहे थे; मगर ये हत्यारे कहीं एक जगह तो रहते नहीं, आज यहाँ हैं, तो कल यहाँ से दो सौ कोस पर। गारद मँगाकर ही क्या किया जाय? इलाके की रिआया की तो हमें कुछ ज्यादा फिक्र नहीं, हुजूर मालिक हैं, आपसे क्या छिपाये, किसके पास रखा हैं इतना माल-असबाब! और अगर किसी के पास दो-चार सौ की पूँजी निकल ही आयी तो उसके लिए पुलिस डाकूओं के पीछे अपनी जान हथेली पर लिये न फिरेगी। उन्हें क्या, वह तो छूटते ही गोली चलाते हैं और अक्सर छिप कर। हमारे लिए तो हजार बन्दिशें हैं। कोई बात बिगड़ जाए तो उलटे अपनी ही जान आफत में फँस जाय। हमें तो ऐसे रास्ते पर चलना हैं कि साँप मरे और लाठी न टूटे, इसलिए दरोगाजी ने आपसे यह अर्ज किया हैं कि आपके पास जोखिम की जो चीजें हो, उन्हें लाकर सरकारी खजाने में जमा कर दीजिये। जब यह हंगामा ठंड़ा हो जाय तो मँगवा लीजिएगा। इससे आपको भी बेफ्रिकी हो जाएगी और हम भी जिम्मेदारी से बच जायँगे। नहीं खुदा न करे, कोई वारदात हो जाय, तो हुजूर को तो जो नुकसान हो वह तो हो ही हमारे ऊपर भी जवाबदेही आ जाय। और यह जालिम सिर्फ माल-असबाब लेकर ही तो जान नहीं छोड़ते-

खून करते हैं, घर में आग लगा देते हैं, यहाँ तक कि औरतों की बेइज्जती भी करते हैं। हुजूर तो जानते हैं, होता है वही जो तकदीर में लिखा हैं। आप इकबालवाले आदमी हैं, डाकू आपका कुछ नही बिगाड़ सकते। सारा कस्बा आपके लिए जान देने को तैयार हैं। आपका पूजा-पाठ धर्म-कर्म खुदा खुद देख रहा हैं। यह उसकी बरकत हैं कि आप मिट्टी भी छू ले, तो सोना हो जाय; लेकिन आदमी भरसक अपनी हिफाजत करता हैं। हुजूर के पास मोटर हैं ही, जो कुछ रखना हो, उस पर रख दीजिए। हम चार आदमी आपके साथ हैं, कोई खटका नहीं। वहाँ एक मिनट में आपको फुरसत हो जायगी। पता चला हैं कि इस गोल में बीस जवान हैं। दो तो बैरागी बने हुए हैं, दो पंजाबियों के भेस में धुस्से और अलवान बेचते फिरते हैं। इन दोनों के साथ दो बहँगीवाले भी हैं। दो आदमी बलूचियों के भेस में छूरियाँ और ताले बेचते हैं। कहाँ तक गिनाऊँ, हुजूर! हमारे थाने में तो हर एक का हुलिया रखा हुआ हैं।

खतरे में आदमी का दिल कमजोर हो जाता हैं और वह ऐसी बातों पर विश्वास कर लेता हैं, जिन पर शायद होश-हवास में न करता। जब किसी दवा से रोगी को लाभ नहीं होता, तो हम दुआ, तावीज, ओझों और सयानों की शरण लेते हैं और वहाँ तो सन्देह का कोई कारण ही न था। सम्भव हैं, दरोगाजी का कुछ स्वार्थ हो, मगर सेठजी इसके लिए तैयार थे। अगर दो-चार सौ बल खाने पड़े, तो कोई बड़ी बात नहीं। ऐसे अवसर तो जीवन में आते ही रहते हैं और इस परिस्थिति में इससे अच्छा दूसरा क्या इन्तजाम हो सकता था; बल्कि इसे तो ईश्वरीय प्रेरणा समझना चाहिए। माना, उनके पास दो-दो बन्दूकें हैं, कुछ लोग मदद करने के लिए निकल ही आयेंगे, लेकिन हैं जान जोखिम। उन्होंने निश्चय किया, दरोगाजी की इस कृपा से लाभ उठाना चाहिए। इन्हीं आदमियों के कुछ दे-दिलाकर सारी चीजें निकलवा लेंगे। दूसरो का क्या भरोसा? कहीं कोई चीज़ उड़ा दे तो बस?

उन्होंने इस भाव से कहा, मानो दरोगाजी ने उसपर कोई विशेष कृपा नही की हैं; वह तो उनका कर्त्तव्य ही था- मैने यहाँ ऐसा प्रबन्ध किया था कि यहाँ वह सब

आते तो उनके दाँत खट्टे कर दिये जाते। सारा कस्बा मदद के लिए तैयार था। सभी से तो अपना मित्र-भाव हैं, लेकिन दरोगाजी की तजबीज मुझे पसन्द हैं। इसमें वह भी अपनी जिम्मेदारी से बरी हो जाते हैं और मेरे सिर से भी फिक्र का बोझ उतर जाता हैं, लेकिन भीतर से चीजें निकाल-निकालकर लाना मेरे बूते की बात नहीं। आप लोगों की दुआ से नौकर-चाकरों की कमी नहीं हैं, मगर किसकी नीयत कैसी हैं, कौन जान सकता हैं? आप लोग कुछ मदद करें तो काम आसान हो जाय।

हेड कानिस्टिबिल ने बड़ी खुशी से यह सेवा स्वीकार कर ली और बोला- हम सब हुजूर के ताबेदार हैं, इसमें मदद की कौन-सी बात हैं? तलब सरकार से पाते हैं, यह ठीक हैं; मगर देनेवाले तो आप ही हैं। आप केवल सामान हमें दिखाये जायँ, हम बात-की-बात में सारी चीजें निकाल लायेंगे। हुजूर की खिदमत करेंगे तो कुछ इनाम-इकराम मिलेगा ही। तनख्वाह में गुजर नहीं होती सेठजी, आप लोगों की रहम की निगाह न हो, तो एक दिन भी निर्बाह न हो। बाल-बच्चे भूखों मर जायँ। पन्द्रह-बीस रुपये में क्या होता हैं हुजूर, इतना तो हमारे लिए ही पूरा नही पड़ता।

सेठजी ने अन्दर जाकर केसर से यह समाचार कहा तो उसे जैसे आँखें मिल गयीं। बोली- भगवान् ने सहायता की, नहीं मेरे प्राण संकट में पड़े हुए थे। सेठजी ने सर्वज्ञता के भाव से फरमाया- इसी को कहते हैं सरकार का इंतजाम। इसी मूस्तैदी के बल पर सरकार का राज थमा हुआ हैं। कैसी सुव्यवस्था हैं कि जरा-सी कोई बात हो, वहाँ तक खबर पहुँच जाती हैं और तुरन्त उसके रोकथाम का हुक्म हो जाता हैं। और यहाँ ऐसे बुद्ध हैं कि स्वराज्य-स्वराज्य चिल्ला रहे हैं। इनके हाथ में अख्तियार आ जाए तो दिन-दोपहर लूट मच जाय, कोई किसी की न सुने। ऊपर से ताकीद आयी हैं। हाकिमों का आदर-सत्कार कभी निष्फल नहीं जाता। मैं तो सोचता हूँ, कोई बहुमूल्य वस्तु घर में न छोड़ूँ। साले आये तो अपना-सा मुँह लेकर रह जायँ.

केसर ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा- कुंजी उनके सामने फैंक देना कि जो चीज चाहो निकाल ले जाओ।

'साले झेंप जायेंगे।'

'मुँह में कालिख लग जाएगी।'

'धमंड तो देखो कि तिथि तक बता दी। यह नहीं समझे कि अंग्रेजी सरकार का राज हैं। तुम डाल-डाल चलो, हम पात-पात चलते हैं।'

'समझे होंगे कि धमकी में आ जायेंगे।'

तीनों कांस्टेबिलों ने आकर सन्दूकचे और सेफ निकालने शुरू किये। एक बाहर सामान को मोटर पर लाद रहा था और हरेक चीज को नोटबुक पर टाँकता जाता था। आभूषण, मुहरें, नोट, रुपये, कीमती कपड़े, साडियाँ; लहँगे, शाल-दुशाले, सब कार में रख दिये। मामूली बरतन, लोहे-लकड़ी के सामान, फर्श आदि के सिवा घर में और कुछ न बचा। और डाकूओं के लिए ये चीज कौड़ी की भी नहीं। केसर का सिंगारदान खुद सेठजी लाये और हेड के हाथ में देकर बोले- इसे बड़ी हिफाजत से रखना, भाई।

हेड ने सिंगारदान लेकर कहा- मेरे लिए एक-एक तिनका इतना ही कीमती हैं।

सेठजी के मन में सन्देह उठा। पूछा- खजाने कीं कुंजी तो मेरे ही पास रहेगी?

'और क्या, यह तो मैं पहले ही अर्ज कर चुका; मगर यह सवाल आपके दिल से क्यों पैदा हुआ?'

'योंही, पूछा था' - सेठजी लज्जित हो गये।

'नहीं, अगर आपके दिल में कुछ शुबहा हो, तो हम लोग यहाँ भी आपकी खिदमत के लिए हाजिर हैं। हाँ, हम जिम्मेदार न होंगे।'

'अजी, नहीं हेड साहब, मैने योंही पूछ लिया था। यह फिहरिस्त तो मुझे दे दोगे न?'

'फिहरिस्त आपको थाने में दारोगाजी के दस्तखत से मिलेगी। इसका क्या एतबार?'

कार पर सारा सामान रख दिया गया। कस्बे के सैकड़ो आदमी तमाशा देख रहे थे। कार बड़ी थी, पर ठसाठस भरी हुई थी। बड़ी मुश्किल से सेठजी के लिए जगह निकली। चारों कांस्टेबिल आगे की सीट पर सिमटकर बैठे।

कार चली। केसर द्वार पर इस तरह खड़ी थी, मानो उसकी बेटी बिदा हो रही हो। बेटी ससुराल जी रही हैं, जहाँ वह मालकिन बनेगी; लेकिन उसका घर सूना किये जा रही हो।

3

थाना यहाँ से पाँच मील पर था। कस्बे से बाहर निकलते ही पहाड़ो का पथरीला सन्नाटा था, जिसके दामन में हरा-भरा मैदान था और इसी मैदान के बीच में लाल मोरम की सड़के चक्कर खाती हुई लाल साँप-जैसी निकल गयी थी।

हेड ने सेठ से पूछा- यह कहाँ तक सही हैं सेठजी, कि आज से पचीस साल पहले आपके बाप केवल लोटा-डोर लेकर यहाँ खाली हाथ आये थे?

सेठजी ने गर्व करते हुए कहा- 'बिल्कुल सही हैं। मेरे पास कुल तीन रुपये थे। उसी से आटे-दाल की दूकान खोली थी। तकदीर का खेल हैं, भगवान् की दवा

चाहिए, आदमी के बनते-बिगड़ते देर नही लगती। लेकिन मैने कभी पैसे को दाँतों से नहीं पकड़ा। यथाशक्ति धर्म का पालन करता गया। धन की शोभा धर्म ही से हैं, नहीं तो धन से कोई फायदा नही।'

'आप बिल्कुल ठीक कहते हैं सेठजी। आपकी मूरत बनाकर पूजना चाहिए। तीन रुपये से लाख कमा लेना मामूली काम नहीं हैं!'

'आधी रात तक सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती, खाँ साहब!'

'जंजाल तो हैं ही, मगर भगवान् की ऐसी माया हैं कि आदमी सब कुछ समझकर भी इसमें फँस जाता हैं और सारी उम्र फँसा रहता हैं। मौत आ जाती हैं, तभी छुट्टी मिलती हैं बस, यही अभिलाषा हैं कि कुछ यादगार छोड़ जाऊँ।'

'आपके कोई औलाद हुई ही नहीं?'

'भाग्य में न थी खाँ साहब, और क्या कहूँ! जिनके घर में भूनी भाँग नहीं हैं, उनके यहाँ घास-फूस की तरह बच्चे-ही-बच्चे देख लो, जिन्हें भगवान् ने खाने को दिया हैं, वे सन्तान का मुँह देखने को तरसते हैं।'

'आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, सेठजी! जिन्दगी का मजा सन्तान से हैं। जिसके आगे अन्धेरा हैं, उसके लिए धन-दौलत किस काम का?'

'ईश्वर की यही इच्छा हैं तो आदमी क्या करे। मेरा बस चलता, तो मायाजाल से निकल भागता खाँ साहब, एक क्षण-भर यहाँ न रहता, कहीं तीर्थस्थान में बैठकर भगवान् का भजन करता। मगर क्या करूँ? मायाजाल तोड़े नहीं टूटता।'

'एक बार दिल मजबूत करके तोड़ क्यों नहीं देते? सब उठाकर गरीबो को बाँट दीजिए। साधु-सन्तों को नही, न मोट ब्राह्मणों को बल्कि उनको, जिनके लिए यह जिन्दगी बोझ हो रही हैं, जिसकी यही आरजू हैं कि मौत आकर उनकी विपत्ति का अन्त कर दे।'

'इस मायाजाल को तोड़ना आदमी का काम नहीं हैं खाँ साहब! भगवान् की इच्छा होती हैं, तभी मन में वैराग्य आता हैं।'

'आज भगवान् ने आपके ऊपर दया की हैं। हम इस मायाजाल को मकड़ी के जाले की तरह तोड़कर आपको आजाद करने के लिए भेजे गये हैं। भगवान् आपकी भक्ति से प्रसन्न हो गये हैं और आपको इस बन्धन में नही रखना चाहते, जीवन-मुक्त कर देना चाहते हैं।'

'ऐसी भगवान् की दया हो जाती, तो क्या पूछना खाँ साहब!'

'भगवान् की ऐसी ही दया है सेठजी, विश्वास मानिए। हमे इसीलिए उन्होंने मृत्युलोक में तैनात किया हैं। हम कितने मायाजाल के कैदियों की बेड़ियाँ काट चुके हैं। आज आपकी बारी हैं।'

सेठजी की नाडियों में जैसे रक्त का प्रवाह बन्द हो गया। सहमी हुई आँखों से सिपाहियों को देखा। फिर बोले - आप बड़े हँसोड़ हो, खाँ साहब?

'हमारे जीवन का सिद्धान्त हैं कि किसी को कष्ट मत दो; लेकिन ये रुपये वाले कुछ ऐसी औंधी खोंपड़ी के लोग हैं जो उनका उद्धार करने आता हैं, उसी के दुश्मन हो जाते हैं। हम आपकी बेड़ियाँ काटने काटने आये हैं; लेकिन अगर आपसे कहें कि यह सब जमा-जथा और लता-पता छोड़कर घर की राह लीजिए, तो आप चीखना-चिल्लाना शुरू कर देंगे। हम लोग वही खुदाई फौजदार हैं, जिनके इत्तलाई खत आपके पास पहुँच चुके हैं।'

सेठजी मानो आकाश से पाताल में गिर पड़े। सारी ज्ञानेन्द्रियों ने जवाब दे दिया और इसी मूर्च्छा की दशा में वह मोटरकार से नीचे ढकेल दिये गये और गाड़ी चल पड़ी।

सेठजी की चेष्टा जाग पड़ी। बदहवास गाड़ी के पीछे दौड़े- हुज़ूर, सरकार, तबाह हो जायँगे, दया कीजिए, घर में एक कौड़ी भी नहीं हैं...

हेड साहब ने खिड़की से बाहर हाथ निकला और तीन रुपये जमीन पर फेंक दिये। मोटर की चाल तेज हो गयी।

सेठजी सिर पकड़कर बैठ गये और विक्षिप्त नेत्रों से मोटरकार को देखा, जैसे कोई शव स्वर्गारोही प्राण को देखे। उनके जीवन का स्वप्न उड़ा चला जा रहा था।

***

वेश्या

छः महीने बाद कलकत्ते से घर पर आने पर दयाकृष्ण ने पहला काम जो किया, वह अपने प्रिय मित्र सिंगारसिंह से मातमपुरसी करने जाना था। सिंगार के पिता का आज से तीन महीने हुए देहान्त हो गया था। दयाकृष्ण बहुत व्यस्त रहने के कारण उस समय न आ सका था। मातमपुरसी की रस्म पत्र लिखकर अदा कर दी थी; लेकिन ऐसा एक दिन भी नहीं बींता कि सिंगार की याद उसे न आयी हो। अभी वह दो-चार महीने और कलकत्ते रहना चाहता था; क्योंकि जो कारोबार जारी किया था, उसे संगठित रूप में लाने के लिए उसका वहाँ रहना जरूरी था और उसकी गैरहाजरी से भी हानि की शंका थी। किन्तु जब सिंगार की स्त्री लीला का परवाना आ पहुँचा तो वह अपने को न रोक सका। लीला ने साफ-साफ तो कुछ न लिखा था, केवल उसे तुरन्त बुलाया था; लेकिन दयाकृष्ण को पत्र के शब्दों से कुछ ऐसा अनुमान हुआ कि वहाँ की परिस्थिति चिन्ताजनक हैं और इस अवसर पर उसका पहुँचना जरूरी हैं; सिंगार सम्पन्न बाप का बेटा था, बड़ा ही अल्हड़, बड़ा ही जिद्दी, बड़ी ही आरामपसन्द। ढ़ढता या लगन उसे छू भी नहीं गयी थी। उसकी माँ उसके बचपन में मर चुकी थी और बाप ने उसके पालने में नियंत्रण की अपेक्षा स्नेह से काम लिया था। और कभी दुनिया की हवा नहीं लगने दी। उद्योग भी कोई वस्तु हैं, यह वह न जानता था। उसके महज इशारे पर हर चीज सामने आ जाती थी। वह जवान बालक था, जिसमें न अपने विचार थे न सिद्धान्त। कोई भी आदमी उसे बड़ी आसानी से अपने कपट-बाणों का निशाना बना सकता था। मुख्तारों और मुनीमों के दाँव-पेंज समझना उसके लिए लोहे के चने चबाना था। उसे किसी ऐसे समझदार और हितैषी मित्र की जरूरत थी, जो स्वार्थियों के हथकड़ों से उसकी रक्षा करता रहे। दयकृष्ण पर इस घर के बड़े-बड़े एहसान थे। उस दोस्ती का हक अदा करने के लिए उसका आना आवश्यक था।

मुँह-हाथ धोकर सिंगारसिंह के घर पर ही भोजन का इरादा करके दयाकृष्ण उससे मिलने चला। नौ बजे गये, हवा और धूप की गर्मी आने लगी थी।

सिंगारसिंह उसकी खबर पाते ही बाहर निकल आया। दयाकृष्ण उसे देखकर चौंक पड़ा। लम्बे-लम्बे केशों की जगह उसके सिर पर घुघराले बाल थे (वह सिक्ख था), आड़ी माँग निकली हुई। आँखों में आँसु न थे, न शोक का कोई चिह्न, चेहरा कुछ जर्द अवश्य था पर उस पर विलासिता की मुसकराहट थी। वह एक महीन रेशमी कमीज और मखमली जूते पहनें हुए था; मानो किसी महफिल से उठ कर आ रहा हो। संवेदना के शब्द दयाकृष्ण के ओठों पर आकर निराश लौट गये। वहाँ बधाई के शब्द ज्यादा अनुकूल प्रतीत हो रहे थे।

सिंगारसिंह लपककर उसके गले लिपट गया और बोला- तुम खूब आये यार, इधर तुम्हारी बहुत याद आ रही थी; मगर पहले यह बतला दो, वहाँ का कारोबार बन्द करके आये या नहीं? अगर वह झंझट छोड़ आये हो, तो पहले उसे तिलांजलि दे आओ। अब आप यहाँ से जाने न पायेंगे। मैने तो भाई, अपना कैड़ा बदल दिया। बताओ, कब तक तपस्या करता। अब तो आये-दिन जलसे होते हैं। मैने सोचा- यार दुनिया में आये, तो कुछ दिन सैर-सपाटे का आनन्द भी उठा लो। नहीं तो एक दिन यों ही हाथ मलते चले जायँगे। कुछ भी साथ न जायगा।

दयाकृष्ण विस्मय में उसके मुँह की ओर ताकते लगा। यह वहीं सिंगार है या कोई और। बाप के मरते ही इतनी तबदीली।

दोनों मित्र कमरे में गये औऱ सोफे पर बैठे। सरदार साहब के सामने इस कमरे में फर्श और मसनद थी, आलमारी थी। अब दर्जनों गद्देदार सोफे और कुर्सियाँ है, कालीन हैं का फर्श हैं, शामी परदे हैं, बड़े-बड़े आइने हैं। सरदार साहब को संचय की धुन थी, सिंगार को उड़ाने की धुन हैं।

सिंगार ने एक सिगार जलाकर कहा- तेरी बहुत याद आती थी यार, तेरी जान का कसम।

दयाकृष्ण ने शिकवा किया- क्यो झूठ बोलते हो भाई, महीनों गुजर जाते थे, एक खत लिखने की तो आपको फुर्सत न मिलती थी, मेरी याद आती थी।

सिंगार ने अल्हड़ बस, इसी बात पर मेरी सेहत का एक जाम पीयो। अरे यार, इस जिन्दगी में और क्या रखा हैं? हँसी-खेल में जो वक़्त कट जाय, उसे गनीमत समझो। मैंने तो यह तपस्या त्याग दी। अब तो आये दिन जलसे होते हैं, कभी दोस्तों की दावत है, कभी दरिया की सैर, कभी गाना-बजाना, कभी शराब के दौर। मैने कहा- लाओ कुछ दिन वह बहार भी देख लूँ। हसरत क्यों दिल में रह जाय। आदमी संसार में कुछ भोगने के लिए आता हैं, यही जिन्दगी के मजे हैं। जिसने ये मजे नही चक्खे, उसकी जीना वृथा हैं। बस, दोस्तों की मजलिस हो, बगल में माशूक हो और हाथ में प्याला हो, इसके सिवा मुझे और कुछ न चाहिए।

उसने आलमारी खोलकर एक बोतल निकाली और दो गिलासों में शराब ढालकर बोला- यह मेरी सेहत का जाम हैं। इन्कार न करना। मैं तुम्हारी सेहत का जाम पीता हूँ।

दयाकृष्ण को कभी शराब पीने का अवसर न मिला था। वह इतना धर्मात्मा तो न था कि शराब पीना पाप समझता, हाँ, उसे दुर्व्यसन समझता था। गन्ध ही से उसकी जी मालिश करने लगा। उसे भय हुआ कि वह शराब की घूँट चाहे मुँह में ले ले, उसे कंठ के नीचे नही उतार सकता। उसने प्याले को शिष्टाचार के तौर पर हाथ पर ले लिया, फिर उसे ज्यों-का-त्यों मेंज पर रखकर बोला- तुम जानते हो, मैने कभी नहीं पी। इस समय मुझे क्षमा करो। दस-पाँच दिन में यह फन भी सीख जाऊँगा, मगर यह तो बताओ, अपना कारोबार भी कुछ देखते हो, या इसी में पड़े रहते हो।

सिंगार ने अरुचि से मुँह बनाकर कहा- ओह, क्या जिक्र तुमने छेड़ दिया, यार? कारोबार के पीछे इस छोटी-सी जिन्दगी को तबाह नहीं कर सकता। न कोई साथ लाया हैं, न साथ ले जायगा। पापा ने मर-मरकर धन संचय किया। क्या हाथ लगा? पचास तक पहुँचते-पहुँचते चल बसे। उनकी आत्मा अब भी संसार के सुखों

के लिए तरस रही होगी। धन छोड़कर मरने से फाकेमस्त रहना कहीं अच्छा हैं। धन की चिन्ता तो नहीं सताती, पर यह हाय-हाय तो नहीं होती कि मेरे बाद क्या होगा। तुमने गिलास मेज पर रख दिया। जरा पीओ, आँखें खुल जायँगी, दिल हरा हो जायगा। और लोग सोडा और बरफ मिलाते हैं, मैं तो खालिस पीता हूँ। इच्छा हो, तो तुम्हारे लिए बरफ मँगाऊ?

दयाकृष्ण ने फिर क्षमा माँगी; मगर सिंगार गिलास-पर-गिलास पीता गया। उसकी आँखें लाल-लाल निकल आयीं, ऊल-जलूल बकने लगा, खूब डींगे मारी, फिर बेसुरे राग में एक बाजारू गीत गाने लगा। अन्त में उसी कुर्सी पर पड़ा-पड़ा बेसुध हो गया।

2

सहसा पीछे का परदा हटा और लीला ने उसे इशारे से बुलाया। दयाकृष्ण की धमनियों में शतगुण वेग से रक्त दौड़ने लगा। उसकी संकोचमय, भीरू प्रकृति भीतर से जितनी रूपासक्त थी, बार से उतनी ही विरक्त। सुंदरियों के सम्मुख आकर वह स्वयं अवाक् हो जाता था, उसके कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ जाती थी और आँखें झुक जाती थी, लेकिन मन उनके चरणों पर लोटकर अपने-आपको समर्पित कर देने के लिए विकल हो जाता था। मित्रगण उसे बूढ़ा बाबा कहा करते थे। स्त्रियाँ उसे अरसिक समझकर उससे उदासीन रहती थी। किसी युवती के साथ लंका तक रेल में एकान्त-यात्रा करके भी वह उससे एक शब्द भी बोलने का साहस न करता। हाँ, युवती स्वयं उसे छेडती, तो वह अपने प्राण तक उसकी भेंट कर देता। उसके मन इस संकोचमय, अवरूद्ध जीवन में लीला ही एक युवती थी, जिसने उसके मन को समझा था और उससे सवाक सहृदयता का व्यवहार किया था। तभी से दयाकृष्ण मन से उसका उपासक हो गया था। उसके अनुभवशून्य हृदय में लीला नारी-जाति का सबसे सुन्दर आर्दश थी। उसकी प्यासी आत्मा को शर्बत या लेमनेड की उतनी इच्छा न थी, जिनता ठंडे, मीठे पानी की। लीला में रूप हैं, लावंय हैं, सुकुमारता हैं, इन बातों की ओर उसका

ध्यान न था। उससे ज्यादा रूपवती, लावंयमयी और सुकुमार युवतियाँ उसने पार्कों में देखी थी। लीला में सहृदयता हैं, विचार हैं, दया हैं, इन्हीं तत्वों की ओर उसका आकर्षण था। उसकी रसिकता में आत्म-समर्पण के सिवा और कोई भाव न था। लीला के किसी आदेश का पालन करना उसकी सबसे बड़ी कामना थी, उसकी आत्मा की तृप्ति के लिए इतना काफी था। उसने काँपते हाथों से परदा उठाया और अन्दर जाकर खड़ा हो गया और विस्मय भरी आँखों से उसे देखने लगा। उसने लीला को यहाँ न देखा होता, तो पहचान भी न सकता। वह रूप, यौवन और विकास की देवी इस तरह मुरझा गयी थी, जैसे किसी ने उसके प्राणों को चूमकर निकाल लिया हो। करुण-स्वर में बोला- यह तुम्हारा क्या हाल हैं, लीला? बीमार हो क्या? मुझे सूचना तक न दी।

लीला मुसकराकर बोली- तुमसे मतलब? मैं बीमार हूँ या अच्छी हूँ, तुम्हारी बला से! तुम तो अपने सैर-सपाटे करते रहे। छः महीने के बाद जब आपको याद आयी हैं, तो पूछते हो बीमार हो? मैं उस रोग से ग्रस्त हूँ, जो प्राण लेकर ही छोड़ता हैं। तुमने इन महाशय की हालत देखी? उनका यह रंग देखकर मेरे दिल पर क्या गुजरती हैं, यह क्या मैं अपने मुँह से कहूँ तभी समझोगे? मैं अब इस घर में जबरदस्ती पड़ी हूँ और बेहयाई से जीती हूँ। किसी को मेरी चाह या चिन्ता नही हैं। पापा क्या मरे, मेरा सोहाग ही उठ गया। कुछ समझाती हूँ, तो बेवकूफ बनायी जाती हूँ। रात-रात भर न जाने कहाँ गायब रहते हैं। जब देखो, नशे में मस्त, हफ्तों घर में नहीं आते कि दो बातें कर लूँ; अगर इनके यही ढंग रहे, तो साल-दो-साल में रोटियों के मुहताज हो जायेंगे।

दया ने पूछा- यह लत इन्हें कैसे पड़ गयी? ये बातें तो इनमें न थी।

लीला ने व्यथित स्वर में कहा- रुपये की बलिहारी है और क्या! इसीलिए तो बूढ़े मर-मरके कमाते हैं और मरने के बाद लड़को के लिए छोड़ जाते हैं। अपने मन में समझते होंगे, हम लड़को के लिए बैठने का ठिकाना किये जाते हैं। मैं कहती हूँ, तुम उनके सर्वनाश का सामान किये जाते हो, उनके लिए जहर बोये जाते हो।

पापा ने लाखों रुपये की सम्पत्ति न छोड़ी होती, तो आज यह महाशय किसी काम मे लगे होते, कुछ तो घर की चिन्ता होती, कुछ जिम्मेदारी होती; नहीं तो बैंक से रुपयें निकाले और उड़ाये । अगर मुझे विश्वास होता कि सम्पत्ति समाप्त करके यह सीधे मार्ग पर आ जायँगे, तो मुझे जरा भी दुःख न होता; पर मुझे तो यह भय है कि ऐसे लोग फिर किसी काम के नहीं रहते। या तो जेलखाने में मरते हैं या अनाथालय में। आपकी एक वेश्या से आशनाई हैं। माधुरी नाम हैं और वह इन्हें उल्टे छूरे से मूँड़ रही हैं, जैसा उसका धर्म हैं। आपको यह खब्त हो गया कि वह मुझ पर जान देती हैं। उससे विवाह का प्रस्ताव किया जा चुका हैं। मालूम नहीं, उसने क्या जवाब दिया। कई बार जी में आया कि जब किसी से कोई नाता ही नहीं हैं तो अपने घर चली जाऊँ; लेकिन डरती हूँ कि तब तो यह और भी स्वतंत्र हो जायँगे। मुझे किसी पर विश्वास हैं, तो वह तुम हो। इसीलिए तुम्हे बुलाया था कि शायद तुम्हारे समझाने-बुझाने का कुछ असर हो। अगर तुम भी असफल हुए, तो मैं एक क्षण यहाँ न रहूँगी। भोजन तैयार हैं, चलो खा लो।

दयाकृष्ण ने सिंगारसिंह की ओर संकेत करके कहा- और यह?

'यह तो अब कहीं दो-तीन बजे चेतेंगे।'

'बुरा न मानेंगे।'

'मैं अब इन बातों की परवाह नहीं करती। मैंने तो निश्चय कर लिया हैं कि अगर मुझे कभी आँखें दिखायी, तो मैं इन्हें मजा चखा दूँगी। मेरे पिताजी फौज में सूबेदार मेजर हैं। मेरी देह में उनका रक्त हैं।'

लीला की मुद्रा उत्तेजित हो गयी। विद्रोह की वह आग, जो महीनों से पड़ी सुलग रही था, प्रचंड हो उठी।

उसने उसी लहजे में कहा- मेरी इस घर में इतनी साँसत हुई हैं, इतना अपमान हुआ हैं और हो रहा हैं कि मैं उसका किसी तरह भी प्रतिकार करके आत्मग्लानि का अनुभव न करूँगी। मैने पापा से अपना हाल छिपा रखा हैं। आज लिख दूँ, तो इनकी सारी मशीखत उतर जाय। नारी होने का दंड भोग रही हूँ लेकिन नारी के धैर्य की भी सीमा हैं।

दयाकृष्ण उस सुकुमारी का वह तमतमाया हुआ चेहरा, वे जलती हुई आँखे, वह काँपते हुए होंठ देखकर काँप उठा। उसकी दशा उस आदमी की सी हो गयी जो किसी को दर्द से तड़पते देखकर वैद्य को बुलाने दौड़े। आर्द्र कंठ से बोला- इस समय मुझे क्षमा करो लीला, फिर कभी तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार करूँगा। तुम्हें अपनी ओर से इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे अपना सेवक समझती रहना। मुझे न मालूम था कि तुम्हें इतना कष्ट हैं, नहीं तो शायद अब तक मैंने कुछ युक्ति सोची होती। मेरा यह शरीर तुम्हारे किसी काम आये; इससे बढ़कर सौभाग्य की बात मेरे लिए और क्या होगी!

दयाकृष्ण यहाँ से चला, तो उसके मन में इतना उल्लास भरा हुआ था, मानो विमान में बैठा हुआ स्वर्ग की ओर जा रहा हैं। आज उसे जीवन में एक ऐसा लक्ष्य मिल गया था, जिसके लिये वह जी भी सकता हैं और मर भी सकता हैं। वह एक महिला का विश्वासपात्र हो गया था। इस रत्न को वह अपने हाथ से कभी न जाने देगा, चाहे उसकी जान ही क्यों न चली जाय।

3

एक महीना गुजर गया। दयाकृष्ण सिंगारसिंह के घर नहीं आया। न सिंगारसिंह ने उसकी परवाह की। इस एक ही मुलाकात में उसने समझ लिया था कि दया इस नये रंग में आनेवाला आदमी नहीं हैं। ऐसे सात्विक जनों के लिए उसके यहाँ

स्थान न था। वहाँ तो रंगीले, रसिया, अध्याय और बिगड़े-दिलों ही की चाह थी। हाँ, लीला को हमेशा उसकी याद आती रहती थी।

मगर दयाकृष्ण के स्वभाव में अब वह संयम नहीं हैं। विलासिता का जादू उस पर भी चलता हुआ मालूम होता हैं। माधुरी के घर उसका आना-जाना शुरू हो गया हैं। वह सिंगारसिंह का मित्र नहीं रहा। प्रतिद्वन्द्वी हो गया हैं। दोनों एख ही प्रतिमा के उपासक हैं; मगर उनकी उपासना में अन्तर हैं। सिंगार की दृष्टि मे माधुरी केवल विलास की एक वस्तु हैं, केवल विनोद का एक यन्त्र । दयाकृष्ण विनय मूर्ति हैं जो माधुरी की सेवा में ही प्रसन्न हैं। सिंगार माधुरी के हास-विलास को अपना जर खरीद हक समझता हैं, दयाकृष्ण इसी में सन्तुष्ट हैं कि माधुरी उसकी सेवाओं को स्वीकार करती हैं। माधुरी की ओर से जरा भी अरुचि देखकर वह उसी तरह बिगड़ जायगा जैसे अपनी प्यारी घोड़ी की मुँहजोरी पर। दयाकृष्ण अपने को उसकी कृपा दृष्टि के योग्य ही नही समझता। सिंगार जो कुछ माधुरी को देता हैं, गर्व भरे आत्म-प्रदर्शन के साथ; मानो उस पर कोई अहसान कर रहा हो। दयाकृष्ण के पास देने को हैं ही क्या; पर वह जो कुछ भेंट करता, वह ऐसी श्रद्धा से मानो देवता को फूल चढाता हो। सिंगार का आसक्त मन माधुरी को अपने पिंजरे में बन्द रखना चाहता हैं, जिसमें उस पर किसी की निगाह न पड़े। दयाकृष्ण निर्लिप्त भाव से उसकी स्वच्छंद क्रीड़ा का आनन्द उठाता हैं। माधुरी को अब तक जितने आदमियों से साबिका पड़ा था, वे सब सिंगारसिंह की भाँति कामुकी, ईर्ष्यालु, दम्भी और कोमल भावों से शून्य थे, रूप को भोगने की वस्तु समझने वाले। दयाकृष्ण उन सबों से अलग था - सहृदय, भद्र और सेवाशील, मानो उस पर अपनी आत्मा को समर्पण कर देना चाहता हो। माधुरी को अब अपने जीवन में कोई ऐसा पदार्थ मिल गया हैं, जिसे वह बड़ी एहतियात से सँभालकर रखना चाहती हो। जड़ाऊ गहने अब उसकी आँखों में उतने मूल्यवान नहीं रहें, जितनी यह फकीर की दी हुई तावीज। जड़ाऊ गहने तो हमेशा मिलेंगे, यह तावीज खो गयी, तो फिर शायद ही कभी हाथ आये। जड़ाऊ गहने केवल उसकी विलास की प्रकृति को उत्तेजित करते हैं। पर इस तावीज में कोई दैवी शक्ति हैं, जो न जाने कैसे उसमें सदनुराग और परिष्कार-भावना को

जगाती हैं। दयाकृष्ण कभी प्रेम-प्रदर्शन नहीं करता, अपनी विरह-व्यथा के राग नहीं अलापता पर माधुरी को उस पर पूरा विश्वास हैं। सिंगारसिंह के प्रलाप में उसे बनावट और दिखावे का आभास होता हैं। वह चाहती हैं, यह जल्द यहाँ से टले; लेकिन दयाकृष्ण के संयत भाषण से उसे गहराई और गाम्भीर्य और गुरुत्व का आभास होता हैं। औरों की वह प्रेमिका हैं; लेकिन दयाकृष्ण की आशिक, जिसके कदमों की आहट पाकर उसके अन्दर एक तूफान उठने लगता हैं। उसके जीवन में यह नयी अनुभूति हैं। अब तक वह दूसरों के भोग की वस्तु थी, अब कम-से-कम एक प्राणी की दृष्टि में वह आदर और प्रेम की वस्तु हैं।

सिंगारसिंह को जब से दयाकृष्ण के इस प्रेमाभिनय की सूचना मिली हैं, वह उसके खून का प्यासा हो गया। ईर्ष्याग्नि में फुँका जा रहा हैं। उसने दयाकृष्ण के पीछे कई शोहदे लगा रखे हैं कि वे उसे जहाँ पाये, उसका काम तमाम कर दें। वह खुद पिस्तौल लिये उसकी टोह में रहता हैं। दयाकृष्ण इस खतरे को समझता हैं, जानता हैं; अपने नियत समय पर माधुरी के पास बिना नागा आ जाता हैं। मालूम होता हैं, उसे अपनी जान का कुछ भी मोह नहीं हैं। शोहदे उसे देखकर क्यों कतरा जाते हैं, मौका पाकर भी क्यों उसपर वार नहीं करते, इसका रहस्य वह नहीं समझता।

एक दिन माधुरी ने उससे कहा- कृष्णजी, तुम यहाँ न आया करो। तुम्हें तो पता नहीं हैं, पर यहाँ तुम्हारे बीसों दुश्मन हैं। मैं डरती हूँ कि किसी दिन कोई बात न हो जाय।

शिशिर की तुषार-मंडित सन्ध्या थी। माधुरी एक काशमीरी शाल ओढे अँगीठी के सामने बैठी हुई थी। कमरे में बिजली का रजत प्रकाश फैला हुआ था। दयाकृष्ण ने देखा, माधुरी की आँखे सजल हो गई हैं और वह मुँह फेर कर उन्हें दयाकृष्ण से छिपाने की चेष्टा कर रही हैं। प्रदर्शन और सुखभोग करनेवाली रमणी क्यों इतना संकोच कर रही हैं, यह उसका अनाड़ी मन न समझ सका। हाँ, माधुरी के गोरे, प्रसन्न, संकोच-हीन मुख पर लज्जा-मिश्रित मधुरिमा की ऐसी छटा उसने

कभी न देखी थी। आज उसने उस मुख पर कुल-वधु की भीरु आकांक्षा और दृढ वात्सल्य देखा और उसके अभिनय में सत्य का उदय हो गया।

उसने स्थिर भाव से जवाब दिया- मैं तो किसी की बुराई नहीं कहता, मुझसे किसी को क्यो बैर होने लगा। मैं यहाँ किसी का बाधक नहीं, किसी का विरोधी नहीं। दाता के द्वार पर सभी भिक्षुक जाते हैं। अपना-अपना भाग्य हैं, किसी को एक चुटकी मिलती हैं, किसी को पूरा थाल। कोई क्यो किसी से जले? अगर किसी पर तुम्हारी विशेष कृपा हैं, तो मैं उसे भाग्यशाली समझकर उसका आदर करूँगा। जलूँ क्यों?

माधुरी ने स्नेह-कातर स्वर में कहा- जी नहीं, आप कल से न आया कीजिए।

दयाकृष्ण मुसकराकर बोला- तुम मुझे यहाँ आने से नहीं रोक सकती। भिक्षुक को तुम दुत्कार सकती हो, द्वार पर आने से नहीं रोक सकती।

माधुरी स्नेह की आँखों से उसे देखने लगी, फिर बोली- क्या सभी आदमी तुम्हीं जैसे निष्कपट हैं?

'तो फिर मैं क्या करूँ?'

'यहाँ न आया करो।'

'यह मेरे बस की बात नहीं।'

माधुरी एक क्षण तक विचार करके बोली- एक बात कहूँ, मानोगे? चलो, हम-तुम किसी दूसरे नगर की राह ले।

'केवल इसीलिए कि कुछ लोग मुझसे खार खाते हैं?

'खार नहीं खाते, तुम्हारी जान के ग्राहक हैं।'

दयाकृष्ण उसी अविचलित भाव से बोला- जिस दिन प्रेम का यह पुरस्कार मिलेगा, वह मेरे जीवन का नया दिन होगा, माधुरी! इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती हैं? तब मैं तुमसे पृथक न रहकर तुम्हारे मन में, तुम्हारी स्मृति में रहूँगा।

माधुरी ने कोमल हाथ से उसके गाल पर थपकी दी। उसकी आँखें भर आयी थीं। इन शब्दों में प्यार भरा हुआ था, वह जैसे पिचकारी की धार की तरह उसके हृदय में समा गया। ऐसी विकल वेदना! ऐसा नशा! इसे वह क्या कहे?

उसने करूण स्वर में कहा- ऐसी बातें न किया कृष्ण, नहीं तो मैं सच कहती हूँ, एक दिन जहर खाकर तुम्हारे चरणों पर सो जाऊँगी। तुम्हारे इन शब्दों में न जाने क्या जादू था कि मैं जैसे फुँक उठी। अब आप खुदा के लिए यहाँ न आया कीजिए, नहीं तो देख लेना, मैं एक दिन प्राण दे दूँगी। तुम क्या जानो, हत्यारा सिंगार किस बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ा हैं। मैं उसके शोहदों की खुशामद करते-करते हार गयी। कितना कहती हूँ दयाकृष्ण से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, उसके सामने तुम्हारी निन्दा करती हूँ, कितना कोसती हूँ, लेकिन उस निर्दयी को मुझ पर विश्वास नहीं आता। तुम्हारे लिए मैने इन गुंड़ो की कितनी मिन्नतें की हैं, उनके हाथ कितना अपमान सहा हैं, वह तुमसे न कहना ही अच्छा हैं। जिनका मुँह देखना भी मैं अपनी शान के खिलाफ समझती हूँ, उनके पैरो पड़ी हूँ; लेकिन ये कुत्ते हड्डियों के टुकड़े पाकर और शेर हो जाते हैं। मैं अब उनसे तंग आ गयी हूँ और तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि यहाँ से किसी ऐसी जगह चले चलो, यहाँ हमें कोई न जानता हो। वहाँ शान्ति के साथ पड़े रहेंगे। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। आज इसका निश्चय कराये बिना मैं तुम्हें न जाने दूँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझ पर अब भी विश्वास नहीं हैं। तुम्हें सन्देह हैं कि तुम्हारे साथ कपट करूँगी।

दयाकृष्ण ने टोंका- नहीं माधुरी, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। मेरे मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं आया। पहले ही दिन मुझे न जाने क्यों ऐसा प्रतीत हुआ

कि तुम अपनी और बहनों से पृथक हो। मैने तुम में वह शील और संकोच देखा, जो मैंने कुलवधुओं में देखा हैं। माधुरी ने उसकी आँखों में आँखे गड़ाकर कहा- तुम झूठ बोलने की कला में इतने निपुण नहीं हो कृष्ण, कि वेश्या को भुलावा दे सको! मैं न शीलवती हूँ, न संकोचवती हूँ और न अपनी दूसरी बहनों से भिन्न हूँ, मैं वेश्या हूँ; उतनी ही कलुषित, उतनी ही विलासांध, उतनी ही मायाविनी, जितनी मेरी दूसरी बहनें; बल्कि उनसे कुछ ज्यादा। न तुम अन्य पुरुषों की तरह मेरे पास विनोद और वासना-तृप्ति के लिए आये थे। नहीं, महीनों आते रहने पर भी तुम यो अलिप्त न रहते। तुमने कभी डींग नही मारी, मुझे धन का प्रलोभन नहीं दिया। मैने भी कभी तुमसे धन की आशा नहीं की। तुमने अपनी वास्तविक स्थिति मुझसे कह दी। फिर भी मैंने तुम्हें एक नहीं, अनेक ऐसे अवसर दिये कि कोई दूसरा आदमी उन्हें न छोड़ता, लेकिन तुम्हें मैं अपने पंजे में न ला सकी। तुम चाहे और जिस इरादे से आये हो, भोग की इच्छा से नही आये। अगर मैं तुम्हें इतना नीच, इतना हृदयहीन, इतना विलासांध समझती, तो इस तरह तुम्हारे नाज न उठाती। फिर मैं भी तुम्हारे साथ मित्र-भाव रखने लगी। समझ लिया, मेरी परीक्षा हो रही हैं। जब तक इस परीक्षा में सफल न हो जाऊँ, तुम्हें नही पा सकती। तुम जितने सज्जन हो, उतने ही कठोर हो।

यह कहते हुए माधुरी ने दयाकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और अनुराग समर्पण-भरी चितवनों से उसे देखकर बोली- सच बताओ कृष्ण, तुम मुझमें क्या देखकर आकर्षित हुए थे? देखो, बहानेबाजी न करना। तुम रूप पर मुग्ध होने वाले आदमी नहीं हो, मैं कसम खा सकती हूँ।

दयाकृष्ण ने संकट में पड़ कर कहा- रूप इतनी तुच्छ वस्तु नहीं हैं, माधुरी! वह मन का आइना हैं।

'यहाँ मुझसे रूपवान स्त्रियों की कमी नहीं हैं।'

'यह तो अपनी-अपनी निगाह हैं। मेरे पूर्व संस्कार रहे होंगे।'

माधुरी ने भँवे सिकोड़कर कहा- तुम फिर झूठ बोल रहे हो, चेहरा कहे देता हैं।

दयाकृष्ण ने परास्त होकर पूछा- पूछ कर क्या करोगी, माधुरी? मैं डरता हूँ; कहीं तुम मुझसे घृणा न करने लगो। सम्भव हैं, तुम मेरा जो रूप देख रही हो, वह मेरा असली रूप न हो?

माधुरी का मुँह लटक गया। विरक्त-सी होकर बोली- इसका खुले शब्दों में यह अर्थ हैं कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं। ठीक हैं, वेश्याओं पर विश्वास करना भी नहीं चाहिए; विद्वानों और महात्माओं का उपदेश कैसे न मानोगे?

नारी-हृदय इस समस्या पर विजय पाने के लिए अपने अस्त्रों के काम लेने लगा।

दयाकृष्ण पहले ही हमले में हिम्मत छोड़ बैठा। बोला- तुम तो नाराज हुई जाती हो, माधुरी! मैने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम मुझे धोखेबाज समझने लगोगी। तुम्हें शायद मालूम नहीं हैं, सिंगारसिंह ने मुझ पर कितने एहसान किये हैं। मै उन्हीं के टुकटों पर पला हूँ। इसमें रत्ती भर भी मुबालगा नहीं हैं। वहाँ जाकर जब मैंने उनके रंग-ढंग देखे और उनकी साध्वी स्त्री लीला को बहुत दुखी पाया, तो सोचते-सोचते मुझे यही उपाय सूझा कि किसी तरह सिंगारसिंह को तुम्हारे पंजे से छुड़ाऊँ। मेरे इस अभिमान यहीं रहस्य हैं, लेकिन उन्हें छुड़ा तो न सका, खुद फँस गया। मेरे इस फरेब की जो सजा चाहो दो, सिर झुकाये हुए हूँ।

माधुरी का अभिमान टूट गया। जल कर बोली- तो यह कहिये कि आप लीला देवी के आशिक हैं। मुझे पहले मालूम होता, तो तुम्हें इस घर में घुसने न देती। तुम तो छिपे रुस्तम निकले।

वह तोते के पिंजरे के पास जाकर उसे पुचकारने का बहाना करने लगी। मन में जो दाह उठ रही थी, उसे कैसे शान्त करें?

दयाकृष्ण ने तिरस्कार भरे स्वर में कहा- मैं लीला का आशिक नहीं हूँ, माधुरी। उस देवी को कलंकित न करो। मैं आज तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ, कि मैंने कभी उसे इस निगाह से नहीं देखा। उसके प्रति मेरा वही भाव था, जो अपने किसी आत्मीय को दुःख में देखकर हर एक मनुष्य के मन में आता हैं।

'किसी से प्रेम करना तो पाप नहीं हैं, तुम व्यर्थ में अपनी और लीला की सफाई दे रहे हो।'

'मैं नहीं चाहता कि लीला पर किसी तरह को आक्षेप किया जाय।'

'अच्छा साहब, लीजिए; लीला का नाम न लूँगी। मैने मान लिया , वह सती हैं, साध्वी हैं और केवल उसकी आज्ञा से...'

दयाकृष्ण ने बात काटी - उनकी कोई आज्ञा नहीं थीं।

'ओ हो, तुम तो जबान पकड़ते हो, कृष्ण! क्षमा करो, उनकी आज्ञा से नहीं तुम अपनी इच्छा से आये। अब तो राजी हुए। अब यह बताओ, आगे तुम्हारे क्या इरादे हैं? मैं वचन तो दे दूँगी; मगर अपने संस्कारों को नहीं बदल सकती। मेरा मन दुर्बल हैं। मेरा सतीत्व कब का नष्ट हो चुका हैं। अन्य मूल्यवान पदार्थो की तरह रूप और यौवन की रक्षा भी बलवान हाथों से हो सकती हैं। मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने को तैयार हो? तुम्हारा आश्रय पाकर तुम्हारे प्रेम की शक्ति से, मुझे विश्वास हैं, मैं जीवन के सारे प्रलोभनों का सामना कर सकती हूँ। मैं इस सोने के महल को ठुकरा दूँगी; लेकिन बदले मुझे किसी हरे वृक्ष का छाँह तो मिलनी चाहिए। वह छाँह तुम मुझे दोगे? अगर नहीं दे सकते, तो मुझे छोड़ दो। मैं अपने हाल में मगन हूँ। मैं वादा करती हूँ, सिंगारसिंह से मैं कोई सम्बन्ध म रखूँगी। वह मुझे घेरेगा, रोयेगा! सम्भव हैं, गुंडो से मेरा अपमान कराये, आतंक दिखाये। लेकिन मैं सब कुछ झेल लूँगी, तुम्हारी खातिर से...'

आगे और कुछ न कहकर वह तृष्णा-भरी लेकिन उसके साथ ही निरपेक्ष नेत्रों से दयाकृष्ण की ओर देखने लगी, जैसे दुकानदार गाहक को बुलाता तो हैं पर साथ ही यह भी दिखाना चाहता हैं कि उसे उसकी परवाह नहीं हैं। दयाकृष्णा क्या जवाब दें? संघर्षमय संसार में वह अभी केवल एक कदम टिका पाया हैं। इधर वह अंगुल-भर जगह भी उससे छिन गयी हैं। शायद जोर मारकर वह फिर वह स्थान पा जाय; लेकिन वहाँ बैठने की जगह नहीं। और एक दूसरे प्राणी को लेकर तो वह खड़ा भी नहीं रह सकता। अगर मान लिया जाय कि अदम्य-उद्योग से दोनों के लिए स्थान निकाल लेगा, तो आत्म-सम्मान को कहाँ ले जाय ? संसार क्या कहेगा? लीला क्या फिर उसका मुँह देखना चाहेगी? सिंगार से वह फिर आँखें मिला सकेगी? यह भी छोडो। लीला अगर उसे पति समझती हैं, समझे। सिंगार अगर उससे जलता हैं तो जले, उसे इसकी परवाह नहीं। लेकिन अपने मन को क्या करें? विश्वास उसके अन्दर आकर जाल नें फँसे पक्षी की भाँति फड़फड़ा कर निकल भागता हैं। कुलीना अपने साथ विश्वास का वरदान लिये आती हैं। उसके साहचर्य में हमें कभी सन्देह नहीं होता। वहाँ सन्देह के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। कुत्सिता सन्देह का संस्कार लिये आती हैं। वहाँ विश्वास के लिए प्रत्यक्ष- अत्यन्त प्रत्यक्ष- प्रमाण की जरूरत हैं। उसने नम्रता से कहा- तुम जानती हो, मेरी क्या हालत हैं?

'हाँ खूब जानती हूँ।'

'और उस हालत में तुम प्रसन्न रह सकोगी?'

'तुम ऐसा प्रश्न क्यों करते हो, कृष्ण? मुझे दुःख होता हैं। तुम्हारे मन में जो सन्देह हैं, वह मैं जानती हूँ, समझती हूँ। मुझे भ्रम हुआ था कि तुमने भी मुझे जान लिया हैं, समझ लिया हैं। अब मालूम हुआ, मैं धोखे मे थी!'

वह उठकर वहाँ से जाने लगी। दयाकृष्ण ने उसका हाथ पकड़ लिया और प्रार्थी-भाव से बोला- तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, माधुरी! मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी बात नहीं हैं...

माधुरी ने खड़े-खड़े विरक्त मन से कहा- तुम झूठ बोल रहे हो, बिल्कुल झूठ। तुम अब भी मन से यह स्वीकार नहीं कर रहे हो कि कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती। पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना, तुम्हारी समझ में कुछ ऐसे आनन्द की बात हैं, जिसे वेश्या शौक से करती हैं। तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से बहुत दूर समझते हो। तुम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नही होती। तुम नहीं जानते, कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती हैं, तो किस तरह प्राणों की भाँति उसे संचित रखती हैं। खारे पानी के समुद्र में मीठे पानी का छोटा-सा पात्र कितना प्रिय होता हैं इसे वह क्या जाने, जो मीठे पानी के मटके उँडेलता रहता हो।

दयाकृष्ण कुछ ऐसे असमंजस में पड़ा हुआ था कि उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसके मन में शंका चिनगारी की भाँति छिपी हुई हैं, वह बाहर निकल कर कितनी भयंकर ज्वाला उत्पन्न कर देगी। उसने कपट का जो अभिनय किया था प्रेम का जो स्वाँग रचा था, उसकी ग्लानि उसे और भी व्यथित कर रही थी।

सहसा माधुरी ने निष्ठुरता से पूछा- तुम यहाँ क्यों बैठे हो?

दयाकृष्ण ने अपमान को पीकर कहा- मुझे सोचने के लिए कुछ समय दो, माधुरी!

'क्या सोचने के लिए?'

'अपना कर्त्तव्य क्या हैं?'

'मैंने अपना कर्त्तव्य सोचने के लिए तो तुमसे समय नहीं माँगा। तुम अगर मेरे उद्धार की सोच रहे हो, तो उसे दिल से निकाल डालो। मैं भ्रष्टा हूँ और तुम साधुता के पुतले हो - जब तक यह भाव तुम्हारे अन्दर रहेगा, मैं तुमसे उसी

तरह व्यवहार करूँगी जैसे औरों के साथ करती हूँ। अगर मैं भ्रष्ट हूँ, तो जो लोग यहाँ अपना मुँह काला करने आते हैं, वे कुछ कम भ्रष्ट नहीं हैं। तुम जो एक मित्र की स्त्री पर दाँत लगाये हुए हो, तुम तो एक सरला अबला के साथ झूठे प्रेम का स्वाँग करते हो, तुम्हारे हाथों अगर मुझे स्वर्ग भी मिलता हो, तो उसे ठुकरा दूँ।'

दयाकृष्ण ने लाल आँखें करके कहा- तुमने फिर वही आक्षेप किया?

माधुरी तिलमिला उठी। उसकी रही-सही मृदुता भी ईर्ष्या के उमड़ते हुए प्रवाह में समा गयी। लीला पर आक्षेप भी असह्य है, इसलिए कि वह कुलवधू हैं। मैं वेश्या हूँ, इसलिए मेरे प्रेम का उपकार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उसने अविचलित भाव से कहा- आक्षेप नहीं कर रहीं हुँ, सच्ची बात कह रही हूँ। तुम्हारे डर से बिल खोदने जा रही हूँ। तुम स्वीकार करो या न करो, तुम लीला पर मरते हो। तुम्हारी लीला तुम्हें मुबारक रहे। मैं अपने सिंगारसिंह ही में प्रसन्न हूँ, उद्धार की लालसा अब नहीं रही। पहले जाकर अपना उद्धार करो। अब से खबरदार कभी भूलकर भी यहाँ न आना, नहीं तो पछताओगे। तुम जैसे रंगे हुए पतितों का उद्धार नहीं करते। उद्धार वही कर सकते हैं, जो उद्धार के अभिमान को हृदय में आने ही नहीं देते। जहाँ प्रेम हैं, वहाँ किसी तरह का भेद नही रह सकता।

यह कहने के साथ ही वह उठकर बराबर वाले दूसरे कमरे में चली गयी और अन्दर से द्बार बन्द कर लिया। दयाकृष्ण कुछ देर वहाँ मर्माहत-सा रहा, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया, मानो देह में प्राण न हो।

दो दिन दयाकृष्ण घर से न निकला। माधुरी ने उसके साथ जो व्यवहार किया, उसकी उसे आशा न थी। माधुरी को उससे प्रेम था, इसका उसे विश्वास था, लेकिन जो प्रेम इतना असहिष्णु हो, जो दूसरे के मनोभावों का जरा भी विचार न करे, जो मिथ्या कलंक आरोपण करने से भी संकोच न करे, वह उन्माद हो सकता हैं, प्रेम नहीं। उसने बहुत अच्छा किया कि माधुरी के कपट-जाल में न फँसा, नहीं तो उसकी न जाने क्या दुर्गति होती।

पर दूसरे क्षण उसके भाव बदल जाते और माधुरी के प्रति उसका मन कोमलता से भर जाता। अब वह अपनी अनुदारता पर, अपनी संकीर्णता पर पछताता! उसे माधुरी पर सन्देह करने का कोई कारण न था। ऐसी दशा से ईर्ष्या स्वाभाविक है और वह ईर्ष्या ही क्या, जिसके डंक न हो, विष न हो। माना, समाज उसकी निन्दा करता। यह भी मान लिया कि माधुरी सती भार्या न होती। कम-से-कम सिंगारसिंह तो उसके पंजे से निकल जाता। दयाकृष्ण के सिर से ऋण का भार तो कुछ हल्का हो जाता, लीला का जीवन तो सुखी हो जाता।

सहसा किसी ने द्वार खटखटाया। उसने द्वार खोला, तो सिंगार सामने खड़ा था। बाल बिखरे हुए, कुछ अस्त-व्यस्त।

दयाकृष्ण ने हाथ मिलाते हुए पूछा- क्या पाँव-पाँव ही आ रहे हो, मुझे क्यों न बुला लिया?

सिंगार ने उसे चुभती हूई आँखों से देखकर कहा- मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि माधुरी कहाँ हैं? अवश्य तुम्हारे घर में होगी।

'क्यों अपने घर पर होगी, मुझे क्या खबर? मेरे घर क्यो आने लगी?'

'इन बहानों से काम न चलेगा, समझ गये? मैं कहता हूँ, मैं तुम्हारे खून पी जाऊँगा वरना ठीक-ठीक बता दो, वह कहाँ गयी?'

'मैं बिल्कुल कुछ नहीं जानता, तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ। मैं तो दो दिन से घर से निकला ही नहीं।'

'रात को मै उसके पास था। सबेरे मुझे उसका यह पत्र मिला। मैं उसी वक़्त दौड़ा हुआ उसके घर गया। वहाँ उसका पता न था। नौकरों से इतना मालूम हुआ, ताँगे पर बैठकर कहीं गयी हैं। कहाँ गयी हैं, यह कोई न बता सका। मुझे शक हुआ, यहाँ आयी होगी। जब तक तुम्हारे घर की तलाशी न ले लूँगा, मुझे चैन न आयेगा।'

उसने मकान का एक-एक कोना देखा, तख्त के नीचे, अलमारी के पीछे। तब निराश होकर बोला- बड़ी बेवफा और मक्कार औरत हैं। जरा इस खत को पढ़ो।

दोनों फर्श पर बैठ गये। दयाकृष्ण ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया-

'सरदार साहब! मैं आज कुछ दिनों के लिए यहाँ से जा रही हूँ, कब लौटूँगी, कुछ नहीं जानती। कहाँ जा रही हूँ, यह भी नहीं जानती। जा इसलिए रही हूँ कि इस बेशर्मी और बेहयाई की जिन्दगी से मुझे घृणा हो रही हैं और घृणा हो रही हैं उन लम्पटों से, जिनके कुत्सित विलास का मै खिलौना थी और जिसमें तुम मुख्य हो। तुम महीनों से मुझ पर सोने और रेशम की वर्षा कर रहे हो; मगर मैं तुमसे पूछती हूँ, उससे लाख गुने सोने और दस गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहन या स्त्री को इस रूप के बाजार में बैठने दोगे? कभी नहीं। उन देवियों में कोई ऐसी वस्तु है, जिसे तुम संसार भर की दौलत से भी मूल्यवान समझते हो। लेकिन जब तुम शराब के नशे मे चूर, अपने एक एक अंग में काम का उन्माद भरे आते थे, तो तुम्हें कभी ध्यान आया था कि तुम अपनी अमूल्य वस्तु को किस निर्दयता के साथ पैरो से कुचल रहे हो? कभी ध्यान आता था कि अपनी कुल-देवियों को इस अवस्था में देखकर तुम्हें कितना दुःख होता? कभी नहीं। यह उन गीदड़ो और गिद्धों की मनोवृत्ति हैं, जो किसी लाश को देखकर चारों ओर से जमा हो जाते हैं, और उसे नोच-नोचकर खाते हैं। यह समझ रक्खो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसो के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा

कर रही हैं, तो समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय और कोई आधार नहीं हैं और पुरुष इतना निर्लज्ज हैं कि उसकी दुरावस्था से अपनी वासना तृप्त करता हैं और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगा कर उसे उसी दुरावस्था में मरते देखना चाहता हैं! क्या वह नारी हैं? क्या नारीतिव के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं हैं। लेकिन तुम उसे उस मन्दिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जायगी। खैर, पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे, कर ले। हम असहाय हैं, आत्माभिमान को भूल बैठी हैं लेकिन...

सहसा सिंगारसिंह ने उसके हाथ से वह पत्र छिन लिया औऱ जेब में रखता हुआ बोला- क्या गौर से पढ़ रहे हो, कोई नयी बात नहीं। सब कुछ वहीं हैं, जो तुमने सिखाया हैं। यहीं करने तो तुम उसके यहाँ जाते थे। मैं कहता हूँ तुम्हें मुझसे इतनी जलन क्यों हो गयी? मैने तुम्हारे साथ कोई बुराई न की थी। इस साल-भर में मैने माधुरी पर दस हजार से कम न फूँके होगे। घर में जो कुछ मूल्यवान था, वह मैने उसके चरणों पर चढ़ा दिया और आज उसे साहस हो रहा हैं कि वह हमारी कुल-देवियों की बराबरी करे। यह सब तुम्हारा प्रसाद हैं। सत्तर चूहे खा के बिल्ली हज को चली! किनती बेवफा जात हैं। ऐसों को तो गोली मार दे। जिस पर सारा घर लुटा दिया, जिसके पीछे सारे शहर में बदनाम हुआ, यह आज मुझे उपदेश देने चली ! जरूर कोई रहस्य हैं। कोई नया शिकार फँसा होगा; मगर मुझसे भाग कर जायगी कहाँ, ढूढ न निकालूँ तो नाम नहीं। कम्बख्त कैसी प्रेमभरी बाते करती थी कि मुझपर घड़ो नसा चढ़ जाता था। बस कोई नया शिकार फँस गया। यह बात न हो, मूँछ मुड़ा लूँ।

दयाकृष्ण उसके सफाचट चेहरे की ओर देखकर मुसकराया- तुम्हारी मूँछे तो पहले ही मुड़ चुकी हैं।

इस हलके-से विनोद ने जैसे सिंगारसिंह के घाव पर मरहम रख दिया। वह बे-सरो-सामान घर, वह फटा फर्श, वे टूटी-फूटी चीजें देखकर उसे दयाकृष्ण पर दया

आ गयी। चोट की तिलमिलाहट में वह जवाब देने के लिए ईट पत्थर ढूँढ़ रहा था; पर अब चोट ठंडी पड़ गयी थी और दर्द घनीभूत हो रहा था। दर्द के साथ-साथ सौहार्द्र भी जाग रहा था। जब आग ठंडी हो गयी तो धुँआ कहाँ से आता?

उसने पूछा- सच कहना, तुमने भी कभी प्रेम की बाते करती थी?

दयाकृष्ण ने मुसकराते हुए कहा- मुझसे? मैं तो खाली उसकी सूरत देखने जाता था।

'सूरत देखकर दिल पर काबू तो नहीं रहता।'

'यह तो अपनी-अपनी रुचि हैं।'

'हैं मोहनी, देखते ही कलेजे पर छुरी चल जाती हैं।'

'मेरे कलेजे पर तो कभी छुरी नहीं चली। यही इच्छा होती थी कि इसके पैरों पर गिर पड़ूँ।'

'इसी शायरी ने तो यह अनर्थ किया। तुम-जैसे बुद्धओं को किसी देहातिन से शादी करके रहना चाहिए। चले थे वेश्या से प्रेम करने।'

एक क्षण के बाद उसने फिर कहा- मगर हैं बेवफा, मक्कार!

'तुमने उससे वफा की आशा की, मुझे तो यही अफसोस हैं।'

'तुमने वह दिल ही नहीं पाया, तुमसे क्या कहूँ।'

एक मिनट के बाद उसने सहृदय-भाव से कहा- अपने पत्र में उसने बाते तो सच्ची लिखी हैं, चाहे कोई माने या न माने? सौन्दर्य को बाजारू चीज समझना कुछ अच्छी बात तो नहीं हैं।

दयाकृष्ण ने पुचारा दिया- जब स्त्री अपनी रूप बेचती हैं, तो उसके खरीदार भी निकल आते हैं। फिर यहाँ तो कितनी ही जातियाँ हैं, जिनका यही पेशा हैं।

'यह पेशा चला कैसे?'

'स्त्रियों की दुर्बलता से।'

'नहीं, मैं समझता हूँ, बिस्मिल्लाह पुरुषों ने की होगी।'

इसके बाद एकाएक जेब से घड़ी निकालकर देखता हुआ बोला- ओहो! दो बज गये और अभी मैं यहीं बैठा हूँ। आज शाम को मेरे यहाँ खाना खाना। जरा इस विषय पर बातें होंगी। अभी तो उसे ढूँढ निकालना हैं। वह हैं कहीं इसी शहर में। घरवालों से भी कुछ नहीं कहा। बुढ़िया नायका सिर पीट रही था। उस्तादजी अपनी तकदीर को रो रहे थे। न-जाने कहाँ जाकर छिप रही।

उसने उठकर दयाकृष्ण से हाथ मिलाया और चला।

दयाकृष्ण ने पूछा- मेरी तरफ से तो तुम्हारा दिल साफ हो गया?

सिंगारसिंह ने पीछे फिरकर कहा- हुआ भी और नही भी हुआ। और बाहर निकल गया।

5

सात-आठ दिन तक सिंगारसिंह ने सारा शहर छाना, पुलिस में रिपोर्ट की, समाचार-पत्रों में नोटिस छपायी, अपने आदमी दौड़ाये; लेकिन माधुरी का कुछ भी सुराग न मिला कि फिर महफिल गर्म होती। मित्रवन्द सुबह-शाम हाजिरी देने आते और अपना-सा मुँह लेकर लौट जाते। सिंगार के पास उनके साथ गप-शप करने का समय न था।

गरमी के दिन, सजा हुआ कमरा भट्टी बना हुआ था। खस की टट्टियाँ भी थी, पंखा भी; लेकिन गरमी जैसे किसी के समझाने-बुझाने की परवाह नहीं करना चाहती, अपने दिल का बुखार निकालकर ही रहेगी।

सिंगारसिंह अपने भीतर वाले कमरे में बैठा हुआ पेग-पर-पेग चढ़ा रहा था; पर अन्दर की आग न शान्त होती थी। इस आग ने ऊपर की घास-फूस को जलाकर भस्म कर दिया था और अब अन्तस्तल की जड़ विरक्ति और अचल विचार को द्रवित करके वेग से ऊपर फेंक रही थी। माधुरी की बेवफाई ने उसके आमोदी हृदय को इतना आहत कर दिया था कि अब वह अपना जीवन ही बेकार-सा मालूम होता था। माधुरी उसके जीवन में सबसे सत्य वस्तु थी, सत्य भी और सुन्दर भी। उसके जीवन की सारी रेखाएँ इसी बिन्दु पर आकर जमा हो जाती थी। वह बिन्दु एकाएक पानी के बुलबुले की भाँति मिट गया और अब वे सारी रेखाएँ, वे सारी भावनाएँ, वे सारी मृदु स्मृतियाँ उन झल्लायी हुई मधु-मक्खियों की तरह भनभनाती फिरती थी, जिनका छता जला दिया गया हो। जब माधुरी ने कपट व्यवहार किया तो और किससे कोई आशा की जाय? इस जीवन ही में क्या हैं? आम में रस ही न रहा, तो गुठली किस काम की?

लीला कई दिनों से महफिल में सन्नाटा देखकर चकित हो रही थी। उसने कई महीनों से घर के किसी विषय में बोलना छोड़ दिया था। बाहर से जो आदेश मिलता था, उसे बिना कुछ कहे-सुने पूरा करना ही उसके जीवन का क्रम था। वीतराग-सी हो गयी थी। न किसी शौक से वास्ता था, न सिंगार से।

मगर इस कई दिन के सन्नाटे ने उसके उदास मन को चिन्तित कर दिया। चाहती थी कि कुछ पूछे; लेकिन पूछे कैसे? मान तो टूट जाता। मान ही किस बात का? मान तब करे, जब कोई उसकी बात पूछता हो। मान-अपमान से प्रयोजन नहीं। नारी ही क्यों हुई?

उसने धीरे-धीरे कमरे का पर्दा हटाकर अन्दर झाँका। देखा, सिंगारसिंह सोफा पर चुपचाप लेटा हुआ हैं, जैसे कोई पक्षी साँझ के सन्नाटे में परों पर मुँह छिपाये बैठा हो।

समीप आकर बोली- मेरे मुँह पर ताला डाल दिया गया हैं, लेकिन क्या करूँ, बिना बोले रहा नहीं जाता। कई दिन से सरकार की महफिल सें सन्नाटा क्यों हैं? तबीयत तो अच्छी हैं।

सिंगार ने उसकी ओर आँखें उठायी। उनमें व्यथा भरी हुई थी। कहा- तुम अपने मैके क्यों नहीं जाती लीला?

'आपकी जो आज्ञा; पर यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर न था।'

'वह कोई बात नही। मैं बिल्कुल अच्छा हूँ। ऐसे बेहयाओं को मौत भी नहीं आती। अब इस जीवन से जी भर गया। कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। तुम अपने घर चली जाओ, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।'

'भला आप को मेरी इतनी चिन्ता तो हैं।'

'अपने साथ जो कुछ ले जाना चाहती हो, ले जाओ।'

'मैंने इस घर की चीजों को अपना समझना छोड़ दिया हैं।'

'मैं नाराज होकर नहीं कह रहा हूँ, लीला न-जाने कब लौटूँ, तुम यहाँ अकेले कैसे रहोगी?'

कई महीने के बाद लीला ने पति के आँखों में स्नेह की झलक देखी।

'मेरा विवाह तो इस घर की सम्पति से नहीं हुआ हैं, तुमसे हुआ हैं। जहाँ तुम रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी।'

'मेरे साथ तो अब तक तुम्हें रोना ही पड़ा।'

लीला ने देखा, सिंगार का आँखों में आँसू का एक बूँद नीले आकाश में चन्द्रमा की तरह गिरने-गिरने का हो रही थी। उसका मन भी पुलकित हो उठा। महीनों की क्षुधाग्नि में जलने के बाद अन्न का एक दाना पाकर वह उसे कैसे ठुकरा दे? पेट नहीं भरेगा, कुछ भी नहीं होगा, लेकिन उस दाने को ठुकराना क्या उसके बस की बात थी?

उसने बिल्कुल पास आकरस अपने अंचल को उसके समीप ले जाकर कहा- मैं तो तुम्हारी हो गया। हँसाओगे, हँसूँगी, रुलाओगे, रोऊँगी, रखोगे तो रहूँगी, निकालोगे तो भी रहूँगी, मेरा घर तुम हो, धर्म तुम हो, अच्छी हूँ तो तुम्हारी हूँ, बुरी हूँ तो तुम्हारी हूँ।

और दूसरे क्षण सिंगार के विशाल सीने पर उसका सिर रखा हुआ था औऱ उसके हाथ थे लीला की कमर में । दोनों के मुख पर हर्ष की लाली थी, आँखों में हर्ष के आँसू और मन में एक ऐसा तूफान, जो उन्हें न जाने कहाँ उड़ा ले जायगा।

एक क्षण के बाद सिंगार ने कहा- तुमने कुछ सुना, माधुरी भाग गयी और पगला दयाकृष्ण उसकी खोज में निकला!

लीला को विश्वास न आया- दयाकृष्ण!

'हाँ जी, जिस दिन वह भागी हैं, उसके दूसरे ही दिन वह भी चल दिया।'

'वह तो ऐसा नहीं हैं। और माधुरी क्यों भागी?'

'दोनों में प्रेम हो गया था। माधुरी उसके साथ रहना चाहती थी। वह राजी न हुआ।'

लीला ने एक लम्बी साँस ली। दयाकृष्ण के वे शब्द याद आये, जो उसने कई महीने पहले कहे थे। दयाकृष्ण की वे याचना-भरी आँखें उसके मन को मसोसने लगीं।

सहसा किसी ने बड़े जोर से द्वार खोला और धड़धड़ाता हुआ भीतर वाले कमरे के द्वार पर आ गया।

सिंगार ने चकित होकर कहा- 'अरे! तुम्हारी यह क्या हालात है, कृष्णा? किधर से आ रहे हो?'

दयाकृष्ण की आँखे लाल थी, सिर और मुँह पर गर्द जमी हुई, चेहरे पर घबराहट, जैसे कोई दीवाना हो।

उसने चिल्लाकर कहा- तुमने सुना; माधुरी इस संसार में नहीं रहीं।

और दोनों हाथों से सिर पीट-पीटकर रोने लगा, मानो हृदय और प्राणों को आँखों से बहा देगा।

***

चमत्कार

बी. ए. पास करने के बाद चन्द्रप्रकाश को एक ट्यूशन करने के सिवा और कुछ न सूझा। उसकी माता पहले ही मर चुकी थी, इसी साल पिता का भी देहान्त हो गया और प्रकाश के जीवन के जो मधुर स्वप्न देखा करता था, वे सब धूल में मिल गये। पिता ऊँचे ओहदे पर थे, उनकी कोशिश से चन्द्रप्रकाश को कोई अच्छी जगह मिलने की पूरी आशा थी; पर सब मनसूबे धरे रह गये और अब गुजर-बसर के लिए वही 30/- महीने की ट्यूशन रह गई। पिता ने कुछ सम्पत्ति भी न छोड़ी, उल्टे वधू का बोझ सिर पर लाद दिया और स्त्री भी मिली, तो पढ़ी-लिखी, शौकीन, जबान की तेज जिसे मोटा खाने और मोटा पहनने से मर जाना कबूल था। चन्द्रप्रकाश को 30/- की नौकरी करते शर्म तो आयी; लेकिन ठाकुर साहब ने रहने का स्थान देकर उसके आँसु पोंछ दिये। यह मकान ठाकुर साहब के मकान से बिल्कुल मिला हुआ था- पक्का, हवादार, साफ-सुथरा और जरूरी सामान से लैस। ऐसा मकान 20/- से कम पर न मिलता, काम केवल दो घंटे का। लड़का था तो लगभग उन्हीं की उम्र का; पर बड़ा कुन्दजहेन, कामचोर। अभी नवें दरजे में पढ़ता था। सबसे बड़ी बात यह कि ठाकुर और ठाकुराइन दोंनो प्रकाश का बहुत आदर करते थे, बल्कि उसे लड़का ही समझते थे। वह नौकर नहीं, घर का आदमी था और घर के हर एक मामले में उसकी सलाह ली जाती थी। ठाकुर साहब अंगरेजी नहीं जानते थे। उनकी समझ में अंगरेजीदां लौडा भी उनसे ज्यादा बुद्धिमान, चतुर और तजरबेकार था।

2

सन्धया का समय था। प्रकाश ने अपने शिष्य वीरेन्द्र को पढ़ा कर छड़ी उठायी, तो ठाकुराइन ने आकर कहा- अभी न जाओ बेटा, जरा मेरे साथ आओ, तुमसे

सलाह करनी हैं।

प्रकाश ने मन में सोचा- आज कैसी सलाह हैं, वीरेन्द्र के सामने क्यों नहीं कहा? उसे भीतर ले जाकर रमा देवी ने कहा- तुम्हारी क्या सलाह हैंस बीरू को ब्याह दूँ? एक बहुत अच्छे घर से सन्देशा आया हैं।

प्रकाश ने मुस्कराकर कहा- यह तो बीरू ही से पूछिए।

'नहीं, मैं तुझसे पूछती हूँ।'

प्रकाश ने असमंजस में पड़कर कहा- मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ। उनकी बीसवाँ साल तो हैं; लेकिन यह समझ लीजिए कि पढ़ना हो चुका।

'तो अभी न करूँ, यही सलाह हैं?'

'जैसा आप उचित समझे। मैने तो दोनों बातें कह दी।'

'तो कर डालूँ? मुझे डर लगता हैं कि कहीं लड़का बहक न जाय।'

'मेरे रहते इसकी तो आप चिन्ता न करें। हाँ, इच्छा हो, तो कर डालिए। कोई हरज भी नहीं हैं।'

'सब तैयारियाँ तुम्हीं को करनी पड़ेगी, यह समझ लो।'

'तो मैं इनकार कब करता हूँ।'

रोटी की खैर मनानेवाले शिक्षित युवकों में एक प्रकार की दुविधा होती हैं, जो उन्हें अप्रिय सत्य कहने से रोकती हैं। प्रकाश में भी यही कमजोरी थी।

बात पक्की हो गयी और विवाह का सामान आने लगा। ठाकुर साहब उन मनुष्यों में थे, जिन्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। उनकी निगाह में प्रकाश की

डिग्री, उनके साठ साल के अनुभव से कहीं मूल्यवान थी। विवाह का सारा आयोजन प्रकाश के हाथों में था। दस-बारह हजार रुपये खर्च करने का अधिकार कुछ कम गौरव की बात न थी। देखते-देखते एक फटेहाल युवक मैनेजर बन बैठा। कहीं कपड़ेवाला उसे सलाम करने आया हैं, कहीं मुहल्ले का बनिया घेरे हुए हैं; कहीं गैस और शामियानेवाला खुशामद कर रहा हैं। वह चाहता, तो दो-चार सौ रुपयें आसानी से बना लेता, लेकिन इतना नीच न था। फिर उसके साथ क्या दगा करता, जिसने सब कुछ उसी पर छोड़ दिया था। पर जिस दिन उसने पाँच हजार के जेवर खरीदे, उस दिन उसका मन चंचल हो उठा।

घर आकर चम्पा से बोला- हम तो यहाँ रोटियों के मुहताज पड़े हैं और दुनिया में ऐसे आदमी पड़े हुए हैं जो हजारों-लाखों रुपये के जेवर बनवा डालते हैं। ठाकुर साहब ने आज बहू के चढावे के लिए पाँच हजार के जेवर खरीदे। ऐसी-ऐसी चीजें कि देखकर आँखे ठंडी हो जायँ। सच कहता हूँ, बाज चीजों पर तो आँख नहीं ठहरती।

चम्पा ईर्ष्या-जनित विराग से बोली- ऊँह, हमें क्या करना हैं ? जिन्हें ईश्वर ने दिया हैं, वे पहनें। यहाँ तो रोकर मरने के लिए पैदा हुए हैं।

चन्द्रप्रकाश- इन्हीं लोगों की मौज हैं। न कमाना, न धमाना। बाप दादा छोड़ गये हैं, मजे से खाते और चैन करते हैं। इसी से कहता हूँ, ईश्वर बड़ा अन्यायी हैं।

चम्पा- अपना-अपना पुरुषार्थ हैं, ईश्वर का क्या दोष? तुम्हारे बाप-दादा छोड़ गये होते, तो तुम मौज करते। यहाँ तो रोटियाँ चलनी मुश्किल हैं, गहने-कपड़े को कौन रोये। और न हम जिन्दगी में कोई ऐसी आशा ही हैं। कोई गत की साड़ी भी नहीं रही कि किसी भले आदमी के घर जाऊँ, तो पहन लूँ। मैं तो इसी सोच में हूँ कि ठकुराइन के यहाँ बयाह में कैसे जाऊँगी। सोचती हूँ, बीमार पड़ जाती तो जान बचती।

यह कहते-कहते उसकी आँखे भर आयी।

प्रकाश ने तसल्ली दी- साड़ी तुम्हारे लिए लाऊँ। अब क्या इतना भी न कर सकूँगा? मुसीबत के ये दिन क्या सदा बने रहेंगे? जिन्दा रहा, तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक जेवरो से लदी रहोगी।

चम्पा मुसकराकर बोली- चलो, ऐसी मन की मिठाई मैं नहीं खाती। निबाह होता जाय, यहीं बहुत हैं। गहनों की साध नहीं हैं।

प्रकाश ने चम्पा की बातें सुनकर लज्जा और दुःख से सिर झुका लिया। चम्पा उसे इतना पुरुषार्थहीन समझती हैं।

3

रात को दोनों भोजन करके लेटे, तो प्रकाश ने फिर गहनों की बात छेड़ी। गहने उसकी आँखों में बसे हुए थे- इस शहर में ऐसे बढ़िया गहने बनते हैं, मुझे इसकी आशा न थी।

चम्पा ने कहा- कोई और बात करो। गहनों की बात सुनकर जी जलता हैं।

'वैसी चीजें तुम पहनो, तो रानी मालूम होने लगो।'

'गहनों से सुन्दरता बढ़ जाती हैं? तो ऐसी बहुत-सी औरतें देखी हैं, जो गहनें पहनकर भद्दी दीखने लगती हैं।'

'ठाकुर साहब भी मतलब के यार हैं। यह न हुआ कि कहते, इसमें कोई चीज चम्पा के लिए भी लेते जाओ।'

'तुम भी कैसी बच्चो की-सी बातें करते हो?'

'इसमें बचपन की क्या बात हैं? कोई उदार आदमी कभी इतनी कृपणता न करता।'

'मैने तो कोई ऐसा उदार आदमी नहीं देखा, जो अपनी बहू के गहने किसी गैर को दे दे।'

'मैं गैर नहीं हूँ। हम दोनों एक ही मकान में रहते हैं। मैं उनके लड़के को पढ़ाता हूँ औऱ शादी का सारा इन्तजाम कर रहा हूँ। अगर सौ-दो-सौ की कोई चीज दे देते, तो वह निष्फल ने जाती। मगर धनवालों का ह्रदय धन के भार से दबकर सिकुड़ जाता हैं। उनमें उदारता के लिए स्थान ही नहीं रहता।'

रात के बारह बज गये हैं, फिर भी प्रकाश को नींद नहीं आती। बार-बार वही चमकीलें गहने आँखों के सामने आ जाते हैं। कुछ बादल हो आये हैं और बार-बार बिजली चमक उठती हैं।

सहसा प्रकाश चारपाई से उठ खड़ा हुआ। उसे चम्पा का आभूषणहीन अंग देखकर दया आयी। यही तो खाने-पीने की उम्र है और इसी उम्र में इस बेचारी को हर एक चीज के लिए तरसना पड़ रहा हैं। वह दबे पाँव कमरे से बाहर निकलकर छत पर आया। ठाकुर साहब की छत इस छत से मिली हुई थी। बीच में एक पाँच फीट की दीवार थी। वह दीवार पर चढ़कर ठाकुर साहब की छत पर आहिस्ता से उतर गया। घर में बिल्कुल सन्नाटा था।

उसने सोचा- पहने जीने से उतर कर ठाकुर साहब के कमरे में चलूँ। अगर वह जाग गये, तो जोर से हँसूँगा और कहूँगा- कैसा चरका दिया या कह दूँगा, मेरे घर की छत से कोई आदमी इधर आता दिखायी दिया, इसलिए मैं भी उसके पीछे-पीछे आता कि देखूँ, क्या करता हैं। अगर सन्दूक क कुँजी मिल गयी तो फिर फतह हैं। किसी को मुझ पर सन्देह ही न होगा। सब लोग नौकरो पर सन्देह करेंगे- साहब! नौकरों की हरकत हैं, इन्हें छोड़कर और कौन ले जा सकता हैं? मैं बेदाग बच जाऊँगा। शादी के बाद कोई दूसरा घर लूँगा। फिर धीरे-धीरे एक-एक चीज चम्पा तो दूँगा, जिसमें उसे कोई सन्देह न हो।

फिर भी वह जीने से उतरने लगा तो उसकी छाती धड़क रही थी।

4

धूप निकल आयी थी। प्रकाश अभी सो रहा था कि चम्पा ने उसे जगा कर कहा- बड़ा गजब हो गया। रात को ठाकुर साहब के घर में चोरी हो गयी। चोर गहने की सन्दूकची उठा ले गया।

प्रकाश ने पड़े-पड़े पूछा- किसी ने पकड़ा नहीं चोर को?

'किसी को खबर भी हो। वह सन्दूकजी ले गया, जिसमें ब्याह के गहने रखे थे। न जाने कैसे कुंजी उड़ा ली और न जाने कैसे उसे मालूम हुआ कि इस सन्दूक में सन्दूकची रखी हैं।'

'नौकरो की कार्रवाई होगी। बाहरी चोर का यह काम नहीं हैं।'

'नौकर तो उसके तीनों पुराने हैं।'

'नीयत बदलते क्या देर लगती हैं। आज मौका देखा, उठा ले गये।'

'तुम जाकर जरा उन लोगों को तसल्ली तो दो। ठाकुराइन बेचारी रो रही थीं। तुम्हारा नाम ले-लेकर कहती कि बेचारा महीनों इन गहनों के लिए दौड़ा, एक-एक चीज अपने सामने जँचवायी और चोर दाढ़ीजारों ने उसकी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया।'

प्रकाश चटपट उठ बैठा और घबराता हुआ-सा जाकर ठाकुराइन से बोला- यह तो बड़ा अनर्थ हो गया माताजी, मुझसे अभी-अभी चम्पा ने कहा।

ठाकुर साहब सिर पर हाथ रखे बैठे हुए थे। बोले- कहीं सेंध नही, कोई ताला नहीं टूटा, किसी दरवाजे की चूल नही उतरी। समझ नहीं आता, चोर आया किधर से।

ठाकुराइन ने रोकर कहा- मैं तो लुट गयी भैया, ब्याह सिर पर खड़ा हैं, कैसे क्या होगा, भगवान्! तुमने दौड़-धूप की थी, तब कही जाके चीजें आयी थी। न जाने किस मनहूस सायत से लग्न आयी थी।

प्रकाश ने ठाकुर साहब के कान में कहा- मुझे तो किसी नौकर की शरारत मालूम होती हैं।

ठाकुराइन ने विरोध किया- अरे नहीं भैया. नौकरों में ऐसा कोई नही। दस-दस हजार रुपयें यों ही ऊपर रखे रहते थे, कभी एक पाई भी नही गयी।

ठाकुर साहब ने नाक सिकोड़कर कहा- तुम क्या जानो, आदमी का मन कितना जल्द बदल जाया करता हैं। जिसने अब तक चोरी नहीं की, वह कभी चोरी न करेगा, यह कोई नहीं कह सकता। मैं पुलिस में रिपोर्ट करूँगा और एक-एक नौकर की तलाशी कराऊँगा। कहीं माल उड़ा दिया होगा। जब पुलिस के जूते पड़ेंगे, तो आप ही कबूलेंगे।

प्रकाश ने पुलिस का घर में आना खतरनाक समझा। कहीं उन्हीं के घर में तलाशी ले, तो अनर्थ ही हो जाय। बोले- पुलिस में रिपोर्ट करना और तहकीकात कराना व्यर्थ हैं। पुलिस माल तो न बरामद कर सकेगी। हाँ, नौकरों को मार-पीट भले ही लेगी। कुछ नजर भी उसे चाहिये, नहीं तो कोई दूसरा स्वाँग खड़ा कर देगी। मेरी तो सलाह हैं कि एक-एक नौकर को एकान्त में बुलाकर पूछा जाय।

ठाकुर साहब ने मुँह बनाकर कहा- तुम भी क्या बच्चों की-सी बात करते हो, प्रकाश बाबू! भला, चोरी करने वाला आपने आप कबूलेगा। तुम मारपीट भी तो नहीं करते, हाँ, पुलिस में रिपोर्ट करना मुझे भी फजूल मालूम होता हैं। माल बरामद होने से रहा, उलटे महीनों की परेशानी हो जायगी।

प्रकाश- लेकिन कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा।

ठाकुर- कोई लाभ नहीं। हाँ, अगर कोई खुफिया पुलिस हो, जो चुपके-चुपके पता लगावे, तो अलबत्ता माल निकल आये; लेकिन यहाँ ऐसी पुलिस कहाँ? तकदीर ठोंक कर बैठ रहो और क्या।

प्रकाश- आप बैठ रहिए; लेकिन मैं बैठने वाला नहीं। इन्हीं नौकरों के सामने चोर का नाम निकलवाऊँगा?

ठाकुराइन- नौकरों पर मुझे पूरा विश्वास हैं। किसी का नाम निकल भी आये, तो मुझे सन्देह ही रहेगा। किसी बाहर के आदमी का काम हैं। चाहे जिधर से आया हो; पर चोर आया। बाहर से। तुम्हारे कोठे से भी तो आ सकता हैं।

ठाकुर- हाँ, जरा अपने कोठे पर देखो, शायद कुछ निशान मिले। कल दरवाजा तो खुला नहीं रह गया?

प्रकाश का दिल धड़कने लगा। बोला- मैं तो दस बजे द्वार बन्द कर लेता हूँ। हाँ, कोई पहले से मौका पाकर कोठे पर चला गया हो और वहाँ छिपा बैठा रहा हो, तो बात दूसरी हैं।

तीनों आदमी छत पर गये, तो बीच की मुँडेर पर किसी के पाँव की रगड़ के निशान दिये। जहाँ पर प्रकाश का पाँव पड़ा था, वहाँ का चूना लग जाने के कारण छत पर पाँव का निशान पड़ गया था। प्रकाश ने छत पर जाकर मुंडेर की दूसरी तरफ देखा, तो वैसे ही निशान वहाँ भी दिखाई दिये। ठाकुर साहब सिर झुकाये खड़े थे, संकोच के मारे कुछ कह न सकते थे। प्रकाश ने उनके मन का बात खोल दी- इससे तो स्पष्ट होता हैं कि चोर मेरे ही घर में से आया । अब को कोई सन्देह ही नहीं रहा।

ठाकुर साहब ने कहा- हाँ, मैं भी यही समझता हूँ; लेकिन इतना पता लग जाने से ही क्या हुआ। माल तो जाना था, सो गया। अब चलो, आराम से बैठे! आज रुपये की कोई फिक्र करनी होगी।

प्रकाश- मैं आज ही वह घर छोड़ दूँगा।

ठाकुर- क्यों, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं।

प्रकाश- आप कहें; लेकिन मै समझता हूँ मेरे सिर बड़ा भारी अपराध लग गया। मेरा दरवाजा नौ-दस बजे तक खुला रहता हैं। चोर ने रास्ता देख लिया। सम्भव हैं, दो-चार दिन में फिर आ घुसे। घर में अकेली एक औरत सारे घर की निगरानी नहीं कर सकती। इधर तो रसोई में बैठी हैं, उधर कोई आदमी चुपके से ऊपर चढ़ जाय, तो जरा भी आहट नहीं मिल सकती। मैं घूम-घामकर कभी नौ बजे आया, कभी दस बजे। और शादी के दिनों में तो देर होती ही रहेगी। उधर का रास्ता बन्द हो जाना चाहिए। मैं समझता हूँ, इस चोरी की सारी जिम्मेदारी मेरे सिर हैं।

ठाकुराइन डरीं- तुम चलें जाओगे भैया, तब तो घर और फाड़ खायगा।

प्रकाश- कुछ भी हो माताजी, मुझे बहुत जल्द घर छोड़ना ही पड़ेगा। मेरी गफलत से चोरी हुई, उसका प्रायश्चित करना ही पड़ेगा।

प्रकाश चला गया, तो ठाकुर ने स्त्री से कहा- बड़ा लायक आदमी हैं।

ठाकुराइन- क्या बात हैं। चोर उधर से आया, यही बात उसे लग गयी।

'कहीं यह चोर के पकड़ पावे, तो कच्चा खा जाय।'

'मार ही डाले।'

'देख लेना, कभी-न-कभी माल बरामद करेगा।'

'अब इस घर में कदापि न रहेगा, कितना ही समझाओ।'

'किराये के 20) और दे दूँगा।'

'हम किराया क्यों दें? वह आप घर ही छोड़ रहे हैं। हम तो कुछ कहते नहीं।'

'किराया तो देना ही पड़ेगा। ऐसे आदमी के साथ कुछ बल भी खाना पड़े, तो बुरा नहीं लगता।'

'मैं तो समझता हू, वह किराया लेंगे ही नहीं।'

'तीस रुपये में गुजर भी तो न होता होगा।'

5

प्रकाश ने उसी दिन वह घर छोड़ दिया। उस घर में रहने से जोखिम था। लेकिन जब तक शादी की धूमधाम रही, प्रायः सारे दिन यहीं रहते थे। चम्पा से कहा- एक सेठजी के यहाँ 50/- का काम मिल गया हैं; मगर वह रुपये मैं उन्हीं के पास जमा करता जाऊँगा। वह आमदनी केवल जेवरों में खर्च होगी। उसमें से एक पाई भी घर के खर्च में न आने दूँगा। चम्पा फड़क उठी। पति-प्रेम का यह परिचय पाकर उसने अपने भाग्य को सराहा, देवताओं में उसकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

अब तक प्रकाश और चम्पा के बीच में कोई परदा न था। प्रकाश के पास जो कुछ था, वह चम्पा का था। चम्पा ही के पास उसके बक्से, संदूक , आलमारी की कुंजियाँ रहती थी; मगर अब प्रकाश का एक संदूक हमेशा बन्द रहता। उसकी कुंजी कहाँ हैं, इसका चम्पा को पता नहीं। वह पूछती, इस सन्दूक में क्या हैं, तो वह कह देते हैं- कुछ नहीं, पुरानी किताबे मारी-मारी फिरती थीं, उठा के सन्दूक में बन्द कर दी हैं। चम्पा को सन्देह का कोई कारण न था।

एक दिन चम्पा पति को पान देने गयी तो देखा, वह सन्दूक को खोले हुए देख रहे है। उसे देखते ही उन्होंने सन्दूक जल्दी से बन्द कर दिया। उनका चेहरा जैसे फक हो गया। सन्देह का अंकुर जमा; मगर पानी न पाकर सूख गया। चम्पा

किसी ऐसे कारण की कल्पना ही न कर सकी, जिससे सन्देह को आश्रय मिलता।

लेकिन पाँच हजार की सम्पति को इस तरह छोड़ देना कि उसका ध्यान ही न आवे, प्रकाश के लिए असम्भव था। वह कहीं बाहर से आता तो एक बार सन्दूक अवश्य खोलता।

एक दिन पड़ोस में चोरी हो गयी। उस दिन से प्रकाश अपने कमरे ही में सोने लगा। असाढ़ के दिन थे। उमस के मारे दम घुटता था। ऊपर एक साफ-सुथरा बरामदा था, जो बरसात में सोने के लिए कहा; पर प्रकाश ने न माना। अकेला घर कैसे छोड़ दे?

चम्पा ने कहा- चोरी ऐसो के यहाँ नही होती। चोर घर में कुछ देख कर ही जान खतरे में डालता हैं। यहाँ क्या रखा हैं?

प्रकाश ने क्रुद्ध होकर कहा- कुछ नहीं हैं. बरतन-भाँड़े तो हैं ही। गरीब के लिए अपनी हाँडी ही बहुत हैं।

एक दिन चम्पा ने कमरे में झाड़ू लगायी तो, सन्दूक को खिसकाकर दूसरी तरफ रख दिया। प्रकाश ने सन्दूक का स्थान बदला हुआ पाया, तो सशंक होकर बोला- सन्दूक तुमने हटाया?

वह पूछने की कोई बात न थी। झाडू लगाते वक़्त प्रायः चीजे इधर-उधर खिसक ही जाती हैं। बोली- मैं क्यो हटाने लगी?

'फिर किसने हटाया?'

'मैं नहीं जानती।'

'घर में तुम रहती हो, जानेगा कौन?'

'अच्छा, अगर मैंने हटा दिया, तो इसमें पूछने की क्या बात हैं?'

'कुछ नहीं, यों ही पूछता था।'

मगर जब तक सन्दूक खोलकर सब चीजें न देख ले, प्रकाश को चैन कहाँ? चम्पा ज्यों ही भोजन पकाने लगी, उसने सन्दूक खोला और आभूषणों को देखने लगा। आज चम्पा ने पकौड़ियाँ बनायी थी। पकौड़ियाँ गरम-गरम ही मजा देती हैं। प्रकाश को पकौड़ियाँ पसन्द भी थी। उसने थोड़ी-सी पकौड़ियाँ एक तश्तरी में रखी और प्रकाश को देने गयी। प्रकाश ने उसको देखते ही सन्दूक धमाके से बन्द कर दिया और ताला लगाकर उसे बहलाने के इरादे से बोला- तश्तरी में क्या लायीं? अच्छा, पकौड़ियाँ हैं?

आज चम्पा को सन्देह हो गया। सन्दूक में क्या हैं, यह देखने की उत्सुकता हुई। प्रकाश उसकी कुंजी कहीं छिपाकर रखता था। चम्पा किसी तरह कुंजी उड़ा लेने की सोचने लगी। एक दिन एक बिसाती कुंजियों का गुच्छा बेचने आ निकला। चम्पा ने उस ताले की चाबी ले ली और सन्दूक खोल डाला। अरे, ये तो आभूषण हैं। उसने एक-एक आभूषण को निकाल कर देखा। ये गहने कहाँ से आये। मुझसे कभी इनकी चर्चा नहीं की। सहसा उसके मन में भाव उठा- कहीं ये ठाकुर साहब के गहने तो नहीं हैं। चीजें वहीं थी, जिनका बखान करते रहते थे। उसे अब कोई सन्देह न रहा; लेकिन इतना घोर पतन! लज्जा और खेद से उसका सिर झुक गया।

उसने तुरन्त सन्दूक बन्द कर दिया और चारपाई पर लेटकर सोचने लगी। इनकी हिम्मत पड़ी कैसे? यह दुर्भावना इनके मन में आयी ही क्यों? मैने तो कभी आभूषणों के लिये आग्रह नही किया। अगर आग्रह भी करती, तो क्या उसका आशय यह होता कि वह चोरी करके लावें? चोरी - आभूषणों के लिए! इनका मन क्यों इतना दुर्बल हो गया?

उसके जी में आया, इन गहनों को उठा ले और ठाकुराइन के चरणों पर डाल दे।

उनसे कहे- यह मत पूछिए, ये गहने मेरे पास कैसे आये। आपकी चीज आपके पास आ गयी, इसी से सन्तोष कर लीजिएय़

लेकिन परिणाम कितना भयंकर होगा!

6

उस दिन से चम्पा कुछ उदास रहने लगी। प्रकाश में उसे वह प्रेम न रहा, न वह सम्मान भाव। बात-बात पर तकरार होती। अभाव में जो परस्पर सद्-भाव था, वह गायब हो गया। तब एक दूसरे से दिल की बात कहता था, भविष्य के मनसूबे बाँधे जाते थे, आपस में सहानुभूति थी। अब दोनों ही दिलगीर रहते। कई-कई दिनों तक आपस में बात न होती।

कई महीनें गुजर गये। शहर के बैंक में असिटेंट मैनेजर की जगह खाली हूई। प्रकाश ने अर्थशास्त्र पढ़ा था; लेकिन शर्त यह थी कि नकद दस हजार की जमानत दाखिल की जाय। इतनी बड़ी रकम कहाँ से आवे। प्रकाश तड़प-तड़पकर रह जाता था।

एक दिन ठाकुर साहब से इस विषय में बात चल पड़ी।

ठाकुर साहब ने कहा- तुम क्यों नहीं दरख्वासत भेजते?

प्रकाश ने सिर झुकाकर कहा- दस हजार की नकद जमानत माँगतें हैं। मेरे पास रुपये कहाँ रखे हैं!

'अजी तुम दरख्वासत तो दो। अगर सारी बाते तय हो जायँ, तो जमानत भी दे दी जायगी। इसकी चिन्ता न करो।'

प्रकाश नें स्तम्भित होकर कहा- आप जमानत देंगे?

'हाँ-हाँ, यह कौन-सी बड़ी बात हैं।'

प्रकाश घर चला तो बहुत संजीदा था! उसको यह जगह अब अवश्य मिलेगी; लेकिन फिर भी वह प्रसन्न नहीं हैं। ठाकुर की सरलता, उनका उस पर अटल विश्वास, उसे आहत कर रहा हैं। उनकी शराफत उसके कमीनेपन को कुचल डालती हैं।

उसने घर आकर चम्पा को खुशखबरी सुनायी। चम्पा ने सुनकर मुँह फेर लिया। एक क्षण के बाद बोली- ठाकुर साहब से तुम्हें जमानत क्यों दिलवायी? प्रकाश ने चिढ़कर कहा- फिर और किससे दिलवाता?

'यही न होता कि जगह न मिलती। रोटियाँ तो मिल ही जाती। रुपये-पैसे की बात हैं। कहीं भूल-चूक हो जाय, तो तुम्हारे साथ उनके रुपये भी जायँ?'

'यह तुम समझती है कि भूल-चूक होगी? क्या मैं अनाड़ी हूँ?'

चम्पा ने विरक्त मन से कहा- आदमी की नीयत भी तो हमेशा एक-सी नहीं रहती।

प्रकाश ठसक-से रह गया। उसने चम्पा को चुभती हुई आँखों से देखा; पर चम्पा ने मुँह फेर लिया। वह उसके भावों के विषय में कुछ निश्चय न कर सका, लेकिन ऐसी खुशखबरी सुनकर भी चम्पा का उदासीन रहना उसे विकल करने लगा। उसके मन में प्रश्न उठा- इस वाक्य में कहीं आक्षेप तो नहीं छिपा हुआ हैं। चम्पा ने सन्दूक खोलकर देख तो नहीं लिया? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए इस समय वह अपनी एक आँख भी भेंट कर सकता था।

भोजन करते समय प्रकाश ने चम्पा से पूछा- तुमने क्या सोचकर कहा थी कि आदमी की नीयत तो हमेशा एक-सी नहीं रहती? जैसे यह उसके जीवन या मृत्यु का प्रश्न हो।

चम्पा ने संकट में पड़कर कहा- कुछ नहीं, मैंने दुनिया की बात कहीं था। प्रकाश

को संतोष न हुआ।

'क्या जितने आदमी बैंकों में नौकर है, उनकी नीयत बदलती रहती हैं?' वह बोला।

चम्पा ने गला छुड़ाना चाहा- तुम जबान पकड़ते हो। ठाकुर के यहाँ इस शादी ही में तुम अपनी नीयत ठीक नहीं रख सकें सौ-दो-सौ की चीजें घर रख ही लीं।

प्रकाश के दिल से बोझ उतर गया। मुस्कराकर बोला- अच्छा, तुम्हारा संकेत उस तरफ था, लेकिन मैंने कमीशन के सिवा के पाई भी नहीं छुई। और कमीशम लेना तो कोई पाप नहीं? बड़े-बड़े हक्काम खुले-खजाने कमीशन लिया करते हैं।

चम्पा ने तिरस्कार के भाव से कहा- जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास रखे, उसकी आँख बचाकर एक पाई भी लेना मैं पाप समझती हूँ। तुम्हारी सज्जनता तो मैं जब जानती कि तुम कमीशन के रुपये ले जाकर उनके हवाले कर देते। इन छः महीनों में उन्होंने तुम्हारे साथ क्या-क्या सलूक किये, कुछ याद हैं? मकान खुद छोड़ा; लेकिन वह 20) महीने देते जाते हैं? इलाके से कोई सौगात आती हैं, तो तुम्हारे यहाँ जरुर भेजते हैं। तुम्हारे पास घड़ी न थी, अपनी घड़ी तुम्हें दे दी। तुम्हारी महरी जब नागा करती हैं, खबर पाते ही अपना नौकर भेज देते हैं। मेरी बीमारी ही में डॉक्टर साहब की फीस उन्होंने दी, और दिन में दो बार हाल-चाल भी पूछने आया करते थे। यह जमानत ही क्या छोटी बात हैं? अपने सम्बन्धियों तक की जमानत तो जल्दी कोई कहता ही नहीं, तुम्हारी जमानत के लिए दस हजार नकद निकाल कर दे दिये। इसे तुम छोटी बात समझते हो? आज तुमसे कोई भूल-चूक हो जाय, तो उनके रुपये जब्त हो ही जायेंगे। जो आदमी अपने ऊपर इतनी दया रखे, उसके लिए हमें भी प्राण देने को तैयार रहना चाहिए।

प्रकाश भोजन करके लेटा, तो उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी। दुखते हुए फोड़े में कितना मवाद भरा हुआ हैं, यह उस वक़्त मालूम होता है, जब नश्तर लगाया जाता हैं। मन का विकार उस वक़्त मालूम होता हैं, जब कोई उसे हमारे सामने खोलकर रख देता हैं। किसी सामाजिक या राजनीतिक अन्याय का व्यंग्य-

चित्र देखकर क्यों हमारे मन को चोट लगती हैं? इसीलिए कि वह चित्र हमारी पशुता को खोलकर हमारे सामने रख देता हैं। वह, जो मनो-सागर में बिखरा हुआ पड़ा था, जैसे केन्द्रीभूत होकर वृहदाकार हो जाता हैं। तब हमारे मुँह से निकल पड़ता हैं - उफ्फोह! चम्पा के इन तिरस्कार-भरे शब्दों ने प्रकाश के मन में ग्लानि उत्पन्न कर दी। वह सन्दूक कई गुना भारी होकर शिला की भाँति उसे दबाने लगा। मन में फैला हुआ विकार एक बिन्दु पर एकत्र होकर टीसने लगा।

7

कई दिन बीत गये। प्रकाश को बैंक में जगह मिल गयी। इसी उत्सव में उसके यहाँ मेहमानों की दावत हैं। ठाकुर-साहब, उनकी स्त्री, बीरू और उसकी नवेली बहू- सभी आये हुए हैं। चम्पा सेवा-सत्कार में लगी हूई हैं। बाहर दो-चार मित्र गा-बजा रहे हैं। भोजन करने के बाद ठाकुर साहब चलने को तैयार हुए।

प्रकाश ने कहा- आज आपको यहीं रहना होगा, दादा। मैं इस वक़्त न जाने दूँगा।

चम्पा को उसका यह आग्रह बुरा लगा। चारपाइयाँ नहीं हैं, बिछावन नहीं है और न काफी जगह ही हैं। रात-भर उन्हें तकलीफ देने और आप तकलीफ उठाने की कोई जरुरत उसकी समझ में न आयी; लेकिन प्रकाश आग्रह करता ही रहा, यहाँ तक कि ठाकुर साहब राजी हो गये।

बारह बज गये थे। ठाकुर साहब ऊपर सो रहे थे। बीरू और प्रकाश बाहर बरामदे में थे। तीन स्त्रियाँ अन्दर कमरे में थीं, प्रकाश जाग रहा था। बीरू के सिरहाने उसकी कुंजियों का गुच्छा पड़ा हुआ था। प्रकाश ने गुच्छा उठा लिया। फिर कमरा खोलकर उसमें से गहनों की सन्दूकची निकाली औऱ ठाकुर साहब के घर की तरफ चला। कई महीने पहले वह इसी भाँति कंपित हृदय के साथ ठाकुर साहब के घर में घुसा था। उसके पाँव तब भी इसी तरह थरथरा रहे थे; लेकिन तब काँटा चुभने की वेदना थी, आज काँटा निकलने की। तब ज्वर का चढ़ाव था-

उन्माद, ताप और विकलता से भरा हुआ; अब ज्वर का उतार था- शान्त और शीतल। तब कदम पीछे हटता था, आज आगे बढ़ रहा था।

ठाकुर साहब के घर पहुँचकर उसने बीरू का कमरा खोला और अन्दर जाकर ठाकुर साहब की खाट के नीचे सन्दूकची रख दिया फिर तुरन्त बाहर आकर धीरे से द्वार बन्द किया और घर लौट पड़ा। हनुमान संजीवनी बूटीवाला धवलगिर उठायें जिस गर्वीले आनन्द का अनुभव कर रहे थे, कुछ वैसा ही आनन्द प्रकाश को भी हो रहा था। गहनों को अपने घर ले जाते समय उसके प्राण सूखे हुए थे, मानो किसी अथाह खाई में गिरा जा रहा हो। आज सन्दूकचे को लौटाकर उसे मालूम हो रहा था, जैसे वह किसी विमान पर बैठा हुआ आकाश की ओर उड़ा जा रहा हैं- ऊपर, ऊपर और ऊपर!

वह घर पहुँचा, तो बीरू सोया हुआ था। कुंजी उसके सिरहाने रख दी।

8

ठाकुर साहब प्रातःकाल चले गये।

प्रकाश सन्ध्या-समय पढ़ाने जाया करता था। आज अधीर होकर तीसरे ही पहर जा पहुँचा। देखना चाहता था, वहाँ आज क्या गुल खिल रहे हैं।

वीरेन्द्र ने उसे देखते ही खुश होकर कहा- बाबूजी, कल आपके यहाँ की दावत बड़ी मुबारक थी। जो गहने चोरी हो गये थे, सब मिल गये।

ठाकुर साहब भी आ गये और बोले- बड़ी मुबारक दावत थी तुम्हारी! पूरा का पूरा सन्दूक-का-सन्दूक मिल गया। एक चीज भी नहीं छुई। जैसे केवल रखने के लिए ले गया हो।

प्रकाश को इन बातों पर कैसे विश्वास आये, जब तक वह अपनी आँखों से

सन्दूक देख न ले। कहीं ऐसा भी हो सकता हैं कि चोरी गया माल छः महीने के बाद मिल जाय और ज्यों का त्यों।

सन्दूक को देखकर उसने गम्भीर भाव से कहा- बड़े आश्चर्य की बात हैं। मेरी बुद्धि तो कुछ काम नहीं करती।

ठाकुर- किसी की बुद्धि कुछ काम नहीं करती भई, तुम्हारी ही क्यों। बीरू की माँ कहती हैं; कोई दैवी घटना हैं। आज मुझे भी देवताओं में श्रद्धा हो गयी।

प्रकाश- अगर आँखो-देखी बात न होती, तो मुझे तो कभी विश्वास ही न आता।

ठाकुर- आज इसी खुशी में हमारे यहाँ दावत होगी।

प्रकाश- आपने कोई अनुष्ठान तो नही कराया था?

ठाकुर- अनुष्ठान तो बीसों ही कराये।

प्रकाश- बस, तो यह अनुष्ठान ही की करामात हैं।

घर लौटकर प्रकाश ने चम्पा को यह खबर सुनायी; तो वह दौड़कर गले से चिपट गयी और न-जाने क्यों रोने लगी, जैसे उसका बिछुड़ा हुआ पति बहुत दिनों के बाद घर आ गया हो।

प्रकाश ने कहा- आज उनके यहाँ हमारी दावत हैं।

'मैं कल एक हजार कँगलों को भोजन कराऊँगी।'

'तुम तो सैकड़ों को खर्च बतला रही हो।'

'मुझे इतना आनन्द हो रहा हैं कि लाखों खर्च करने पर भी अरमान पूरा न होगा।'

प्रकाश की आँखों से भी आँसू निकल आये।

***

मोटर के छींटे

क्या नाम कि प्रातःकाल स्थान-पूजा से निपट, तिलक लगा, पीताम्बर पहन, खड़ाऊँ पाँव में डाल, बगल में पत्रा दबा, हाथ में मोटा-सा शत्रु-मरतक-भंजन ले एक जजमान के घर चला। विवाह ती साइत विचारनी थी। कम-से-कम एक कलदार का डौल था। और मेरा जलपान मामूली जलपान नहीं हैं। बाबूओं को तो मुझे निमंत्रित करने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। उनका महीने-भर का नाश्ता मेरा एक दिन का जलपान हैं। इस विषय में तो हम अपने सेठो-साहूकरों के कायल हैं ऐसा खिलाते हैं, ऐसा खिलाते हैं, और इतने खुले मन से कि चोला आनन्दित हो उठता हैं। जजमान का दिल देखकर ही मैं उनका निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ। खिलाते समय किसी ने रोनी सूरत बनायी और मेरी क्षुधा गायब हुई। रोकर किसी ने खिलाया तो क्या? ऐसा भोजन कम-से-कम मुझे तो नहीं पचता। जजमान ऐसा चाहिए कि ललकारता जाय - लो शास्त्री जी, एक बालूशाही और मैं कहता जाऊँ - नहीं जजमान अब नहीं!

रात खूब बर्षा हुई थी, सड़क पर जगह-जगह पानी जमा था। मैं अपने विचारों में मगन चला जाता था कि एक मोटर छप-छप करती हुई निकल गयी। मुँह पर छींटे पड़े। जो देखता हूँ, तो धोती पर मानो किसी ने कीचड़ घोलकर डाल दिया हो। कपड़े भ्रष्ट हुए , वह अलग, देह भ्रष्ट हुई, वह अलग, आर्थिक क्षति जो हुई, वह अलग। अगर मोटर वालो को पकड़ पाता, तो ऐसी मरम्मत करता कि वे भी याद करते। मन मसोसकर रह गया। इस वेश में जजमान के घर तो जा नहीं सकता था, अपना घर भी मील-भर से कम न था। फिर आने-जाने वाले सब मेरी ओर देख-देख कर तालियाँ बजा रहे थे। ऐसी दुर्गति मेरी कभी नहीं हुई थी। अब क्या करोगे मन? घर जाओगे, तो पंडिताइन क्या कहेगी?

मैने चटपट अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। इधर-उधर से दस-बारह पत्थर के टुकड़े बटोरे लिये और दूसरी मोटर की राह देखने लगा। ब्रह्मतेज सिर पर चढ़ बैठा! अभी दस मिनट भी न गुजरे होंगे कि एक मोटर आती हुई दिखायी दी! ओहो वही मोटर थी। शायद स्वामी को स्टेशन से लेकर लौट रही थी। ज्योंहि समीप आयी, मैने एक पत्थर चलाया, भरपूर जोर लगाकर चलाया। साहब की टोपी उड़कर सड़क के उस बाजू पर गिरी। मोटर की चाल धीमी हुई। मैने दूसरा फेर किया। खिड़की के शीशे चूर-चर हो गये और एक टुकड़ा साहब बहादुर के गाल में भी लगा। खून बहने लगा। मोटर रूकी और साहब उतरकर मेरी तरफ आये और घूँसा तानकर बोले- सूअर हम तुमको पुलिस में देगा। इतना सुनना था कि मैंने पोथी-पत्रा जमीन पर फेंका और साहब की कमर पकड़कर अगंजी लगायी, तो कीचड़ में भद-से गिरे। मैंने चट सवारी गाँठी और गरदन पर एक पचीस रद्दे ताबड़तोड़ जमाये कि साहब चौंधिया गये। इतने में उनकी पत्नी उतर आयी। ऊँची एड़ी का जूता, रेशमी साड़ी , गालों पर पाउडर, ओठों पर रंग, भवों पर स्याही, मुझे छाते से गोदने लगी। मैने साहब को छोड़ दिया औऱ डंडा सम्भालता हुआ बोला- देवीजी, आप मरदों के बीच में न पड़े, कहीं चोट-चपेट आ जाय, तो मुझे दुःख होगा।

साहब ने अवसर पाया, तो सम्हलकर उठे और अपने बूटदार पैरों से मुझे एक ठोकर जमायी। मेरे घुटने में बड़ी चोट लगी। मैने बौखलाकर डंडा उठा लिया। और साहब के पाँव में जमा दिया। वह कटे पेड़ की तरह गिरे। मेम साहब छतरी तानकर दौड़ी। मैने धीरे से उनकी छतरी छीनकर फेंक दी। ड्राइवर अभी तक बैठा था। अब वह भी उतरा और छड़ी लेकर मुझ पर पिल पड़ा। मैने एक डंडा उसके भी जमाया, लोट गया। पचासों आदमी तमाशा देखने जमा हो गए। साहब भूमि पर पड़े-पड़े बोले- रेस्केल, हम तुमको पुलिस में देगा।

मैने फिर डंडा सँभाला और चाहता था कि खोपड़ी पर जमाऊँ कि साहब ने हाथ जोड़कर कहा- नहीं-नहीं, बाबा, हम पुलिस में नहीं जायगा, माफी दो।

मैने कहा- हाँ, पुलिस का नाम न लेना, नहीं तो यहीं खोपड़ी रंग दूँगा। बहुत होगा छः महीने की सजा हो जायगी, मगर तुम्हारी आदत छुड़ा दूँगा। मोटर चलाते हो, तो छींटे उड़ाते चलते हो, मारे घमंड के अन्धे हो जाते हो। सामने या बगल में कौन जा रहा हैं, इसका कुछ ध्यान नहीं रखते।

एक दर्शक नें आलोचना की- अरे महाराज, मोटरवाले जान-बूझ कर छींटे उड़ाते हैं और जब आदमी लथपथ हो जाता हैं, तो सब उसका तमाशा देखते हैं और खूब हँसते हैं। आपने बड़ा अच्छा किया, कि एक को ठीक कर दिया।

मैने साहब को ललकार कर कहा- सुनता हैं कुछ, जनता क्या कहती हैं। साहब ने उस आदमी की ओर लाल-लाल आँखों से देखकर कहा- तुम झूठ बोलता हैं, बिल्कुल झूठ बोलता हैं।

मैने डाँटा- अभी तुम्हारी हेकड़ी कम नहीं हुई, आऊँ फिर और दूँ एक सोटा कसके?

साहब ने घिघियाकर कहा- अरे नहीं बाबा, सच बोलता हैं, सच बोलता हैं। अब तो खुश हुआ।

दूसरा दर्शक बोला- अभी जो चाहे कह दें, लेकिन ज्योंही गाड़ी पर बैठे, फिर वही हरकत शुरू कर देंगे। गाड़ी पर बैठते ही सब अपने को नवाब का नाती समझने लगते हैं।

दूसरे महाशय बोले- इससे कहिए थूककर चाटे।

तीसरे सज्जन ने कहा- नहीं, कान पकड़कर उठाइए-बैठाइए।

चौथा बोला- अरे, ड्राइवर को भी। ये सब बदमाश होते हैं। मालदार आदमी घमंड करे, तो एक बात हैं, तुम किस बात पर अकड़ते हो। चक्कर हाथ में लिया और आँखों पर परदा पड़ा।

मैने यह प्रस्ताव स्वीकार किया। ड्राइवर और मालिक दोनों ही का कान पकड़कर उठाना-बैठाना चाहिए और मेम साहब गिने। सुना मेम साहब, तुमको गिनना होगा। पूरी सौ बैठकें। एक भी नहीं, ज्यादा जितनी चाहें, हो जायँ।

दो आदमियों ने साहब का हाथ पकड़कर उठाया, दो ने ड्राइवर-महोदय का। ड्राइवर बेचारे की टाँग में चोट थी, फिर भी बैठके लगा। साहब की अकड़ अभी काफी थी। आप लेट गये और ऊल-जलूल बकने लगे। मैं उस समय रुद्र बना हुआ था। दिन में ठान लिया था कि इससे बिना सौ बैठकें लगवाये न छोड़ूँगा। चार आदमियों को हुक्म दिया कि गाड़ी को ढकेलकर सड़क ले नीचे गिरा दो।

हुक्म की देरी थी। चार की जगह पचास आदमी लिपट गये और गाड़ी को ढकेलने लगे। वह सड़क बहुत ऊँची थी। दोनों तरफ की जमीन नीची। गाड़ी नीचे गिरती तो टूट-टाटकर ढेर हो जाती। गाड़ी सड़क के किनारे तक पहुँच चुकी थी, कि साहब काँखकर उठ खड़े हुए और बोले- बाबा, गाड़ी को मत तोड़ो, हम उठे-बैठेगा।

मैने आदमियों को अलग हट जाने का हुक्म दिया; मगर सबों को एक दिल्लगी मिल गयी थी। किसी ने मेरी तरफ ध्यान न दिया। लेकिन जब मैं डंडा लेकर उनकी ओर दौड़ा तब सब गाड़ी छोड़कर भागे और साहब ने आँखे बन्द करके बैठके लगानी शुरू की।

मैने दस बैठकों के बाद मेम साहब से पूछा- कितनी बैठकें हुई?

मेम साहब ने कहा- हम नही गिनता।

'तो इस तरह साहब दिन-भर काँखते रहेंगे और मैं न छोड़ूँगा। अगर उनको कुशल से घर ले जाना चाहती हो, तो बैठकें गिन दो। मैं उनको रिहा कर दूँगा। '

साहब ने देखा कि बिना दंड भोगे जान न बचेगी. तो बैठकें लगाने लगे। एक, दो, तीन, चार, पाँच....

सहसा एक दूसरी मोटर आती दिखायी दी। साहब ने देखा और नाक रगड़कर बोले- पंडितजी , आप मेरा बाप हैं। मुझ पर दया करो, अब हम कभी मोटर पर न बैठेगे। मुझे भी दया आ गयी। बोला- मोटर पर बैठने से नहीं रोकता, इतना ही कहता हूँ कि मोटर पर बैठ कर भी आदमियों को आदमी समझो।

दूसरी गाड़ी तेज चली आती थी। मैने इशारा किया। सब आदमियों ने दो-दो पत्थर उठा लिये। उस गाड़ी का मालिक स्वयं ड्राइव कर रहा था। गाड़ी धीमी करके धीरे से सरक जाना चाहता था कि मैने बढ़कर उसके दोनों कान पकड़े और खूब जोर से हिलाकर और दोनों गालों पर एक-एक पड़ाका देकर बोला- गाड़ी से छींटा न उड़ाया करो, समझे। चुपके से चले जाओ।

यह महाशय तो झक-झक तो करते रहे; मगर एक सौ आदमियों को पत्थर लिये खड़ा देखा, तो बिना कान-पूँछ डुलाये चलते हुए।

उनके जाने के एक मिनट बाद दूसरी गाड़ी आयी। मैने 50 आदमियों को राह रोक लेने का हुक्म दिया। गाड़ी रूक गयी। मैने उन्हें भी चार पड़ाके देकर विदा किया; मगर बेचारे भले आदमी थे। मजे से चाटें खाकर चलते हुए।

सहसा एक आदमी ने कहा- पुलिस आ रही हैं।

और सब-के-सब हुर्र हो गये। मैं भी सड़क के नीचे उतर गया और एक गली में घुस कर गायब हो गया।

***

कैदी

चौदह साल तक निरन्तर मानसिक वेदना और शारीरिक यातना भोगने के बाद आइवन औखोटस्क जेल से निकला; पर उस पक्षी की भाँति नहीं, जो शिकारी के पिंजरे से पंखहीन होकर निकला हो बल्कि उस सिंह की भाँति, जिसे कटघरे की दीवारों ने और भी भयंकर तथा और भी रक्त-लोलुप बना दिया हो। उसके अन्तस्तल में एक द्रव ज्वाला उमड़ रही थी, जिसने अपने ताप से उसके बलिष्ट शरीर, सुडौल अंग-प्रत्यंग और लहराती हुई अभिलाषाओं को झुलस डाला था और आज उसके अस्तित्व का एक-एक अणु एक-एक चिनगारी बना हुआ था- क्षुधित, चंचल और विद्रोहमय।

जेलर ने उसे तौला। प्रवेश के समय दो मन तीस सेर था, आज केवल एक मन पाँच सेर।

जेलर ने सहानुभूति दिखाकर कहा- तुम बहुत दुर्बल हो गये हो, आइवन। अगर जरा भी कुपथ्य हुआ, तो बुरा होगा।

आइवन ने अपने हड्डियों के ढाँचे को विजय-भाव से देखा और अपने अन्दर एक अग्निमय प्रवाह का अनुभव करता हुआ बोला- कौन कहता है कि मैं दुर्बल हो गया हूँ?

'तुम खुद देख रहे होगे।'

'दिल का आग जब तक नहीं बुझेगी, आइवन नहीं मरेगा, मि. जेलर, सौ वर्ष तक नहीं, विश्वास रखिए।'

आइवन इसी प्रकार की बहकी-बहकी बाते किया करता था, इसलिए जेलर ने

ज्यादा परवाह न की। सब उसे अर्द्ध-विक्षिप्त समझते थे। कुछ लिखा-पढ़ी हो जाने के बाद उसके कपड़े और पुस्तकें मँगवायी गयी; पर वे सारे सूट अब उसे उतारे हुए से लगते थे। कोटों को जेबों में कई नोट निकले, कई नकद रुबेल। उसने सब कुछ वहीं जेल के वार्डन और निम्न कर्मचारियों को दे दिया मानो उसे कोई राज्य मिल गया हो।

जेलर ने कहा- यह नहीं हो सकता, आइवन! तुम सरकारी आदमियों को रिश्वत नहीं दे सकते।

आइवन साधु-भाव हँसा- यह रिश्वत नहीं हैं, मि. जेलर! इन्हें रिश्वत देकर अब मुझे क्या लेना-देना हैं? अब ये अप्रसन्न होकर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे और प्रसन्न होकर मुझे क्या देंगे? यह उन कृपाओं का धन्यवाद हैं जिनके बिना चौदह साल तो क्या, मेरा यहाँ चौदह घंटे रहना असह्य हो जाता।

जब वह जेल के फाटक से निकला, तो जेलर और सारे अन्य कर्मचारी उसके पीछे उसे मोटर तक पहुँचाने चले।

2

पन्द्रह साल पहले आइवन मास्को के सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल का दीपक था।

उसने विद्यालय में ऊँची शिक्षा पायी थी, खेल में अभ्यस्त था, निर्भीक था, उदार और सहृदय था। दिल आईने की भाँति निर्मल , शील का पुतला, दर्बलों की रक्षा के लिए जान पर खेलनेवाला, जिसकी हिम्मत संकट के सामने नंगी तलवार हो जाती थी। उसके साथ हेलेन नाम की एक युवती पढ़ती थी, जिस पर विद्यालय के सारे युवक जान देते थे। वह जितनी ही रूपवती थी, उतनी ही तेज थी, बड़ी कल्पनाशील; पर मनोभावों को ताले में बन्द रखनेवाली। आइवन में क्या देखकर वह उसकी ओर आकर्षित हो गयी, यह कहना कठिन हैं। दोनो में लेशमात्र भी सामंजस्य न था। आइवन सैर और शराब का प्रेमी था, हेलेन कविता एवं संगीत

और नृत्य पर जान देती थी। आइवन की निगाह में रुपये इसलिए थे कि दोनो हाथो से उड़ाये जाएँ, हेलेन अत्यन्त कृपण। आइवन को लेक्चर-हॉल कारागार-सा लगता था; हेलेन इस सागर की मछली थी। पर कदाचित् वह विभिन्नता ही उनमें स्वाभाविक आकर्षण बन गयी, जिसने अन्त में विकल प्रेम का रूप लिया। आइवन ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया और उसने स्वीकार कर लिया। और दोनों किसी शुभ मुहर्त में पाणिग्रहण करके सौहागरात बिताने के लिए किसी पहाड़ी में जाने के मनसूबे बना रहे थे कि सहसा राजनैतिक संग्राम ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। हेलेन पहले से ही राष्ट्रवादियों की ओर झुकी हुई थी। आइवन भी उसी रंग में रँग उठा । खानदान का रईस था, उसके लिए प्रजा-पक्ष लेना एक महान तपस्या थी; इसलिए जब कभी वह इस संग्राम में हताश हो जाता, तो हेलेन उसकी हिम्मत बँधाती और आइवन उसके साहस और अनुराग से प्रभावित होकर अपनी दुर्बलता पर लज्जित हो जाता।

इन्हीं दिनों उक्रायेन प्रान्त की सूबेदारी पर रोमनाफ नाम का एक गवर्नर नियुक्त होकर आया- बड़ा ही कट्टर, राष्ट्रवादियों का जानी दुश्मन, दिन में दो-चार विद्रोहियों को जेल भेज लेता, उसे चैन न आता। आते-ही-आते उसने कई सम्पादकों पर राजद्रोह का अभियोग चलाकर उन्हें साइबेरिया भेजवा दिया, कृषको की सभाएँ तोड़ दी, नगर की म्युनिसिपैलिटी तोड़ दी और जब जनता ने रोष प्रकट करने के लिए जलसे किये, तो पुलिस से भीड़ पर गोलियाँ चलवायीं, जिसमें कई बेगुनाहों की जाने गयीं। मार्शल लॉ जारी कर दिया। सारे नगर में हाहाकार मच गया। लोग मारे डर के डरो से न निकलते थे; क्योंकि पुलिस हर एक की तलाशी लेती थी और उसे पीटती थी।

हेलेन ने कठोर मुद्रा से कहा- यह अन्धेर तो अब नहीं देखा जाता, आइवन। इसका कुछ उपाय होना चाहिए।

आइवन ने प्रश्न की आँखों से देखा- उपाय! हम क्या उपाय कर सकते हैं?

हेलेन ने उसकी जड़ता पर खिन्न होकर कहा- तुम कहते हो, हम क्या कर सकते

हैं? मैं कहती हूँ, हम सब कुछ कर सकते हैं। मैं इन्हीं हाथों से उनका अन्त कर दूँगी।

आइवन ने विस्मय से उसकी ओर देखा- तुम समझती हो, उसे कत्ल करना आसान हैं? वह कभी खुली गाड़ी में नहीं निकलता। उसके आगे-पीछे सशस्त्र सवारों का एक दल हमेंशा रहता हैं। रेलगाड़ी में भी वह रिर्जव डब्बों मे सफर करता हैं। मुझे तो असम्भव सा लगता हैं, हेलेन- बिल्कुल असम्भव।

हेलेन कई मिनट तक चाय बनाती रही। फिर दो प्याले मेज पर रखकर उसने प्याला मुँह से लगाया और धीरे-धीरे पीने लगी। किसी विचार में तन्मय हो रही थी। सहसा उसने प्याला मेज पर रख दिया और बड़ी-बड़ी आँखों में तेज भर कर बोली- यह सब होते हुए भी मैं उसे कत्ल कर सकती हूँ, आइवन! आदमी एक बार अपनी जान पर खेलकर सब कुछ कर सकता हैं। जानते हो, मैं क्या करूँगी? मैं उससे राहो-रस्म पैदा करूँगी, उसका विश्वास प्राप्त करूँगी, उसे इस भ्राँति में डालूँगी कि मुझे उससे प्रेम हैं। मनुष्य कितना ही हृदयहीन हो, उसके हृदय के किसी-न-किसी कोने में पराग की भाँति रस छिपा ही रहता हैं। मैं तो समझती हूँ कि रोमनाफ की यह दमन-नीति उसकी अवरुद्ध अभिलाषा की गाँठ हैं और कुछ नहीं। किसी मायावनी के प्रेम में असफल होकर उसके हृदय का रस-स्रोत सूख गया हैं। वहाँ रस का संचार करना होगा और किसी युवती का एक मधुर शब्द, एक सरल मुसकान भी जादू का काम करेगी। ऐसों को तो वह चुटकियों में अपने पैरों पर गिरा सकती हैं। तुम-जैसे सैलानियों को रिझाना इससे कहीं कठिन हैं। अगर तुम यह स्वीकार करते हो कि मैं रूपहीन नहीं हूँ, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरा कार्य सफल होगा। बतलाओ मैं रूपवती हूँ या नहीं

उसने तिर्छी आँखों से आइवन को देखा। आइवन इस भाव-विलास पर मुग्ध होकर बोला- तुम यह मुझसे पूछती हो, हेलेन? मैं तो संसार की ....

हेलेन ने उसकी बात काट कर कहा- अगर तुम ऐसा समझते हो, तो तुम मूर्ख हो, आइवन ! इसी नगर में नही, हमारे विद्यालय में ही, मुझसे कहीं रूपवती

बालिकाएँ मौजूद हैं। हाँ, तुम इतना कह सकते हो कि तुम कुरूपा नहीं हो। क्या तुम समझते हो, मैं तुम्हें संसार का सबसे रूपवान युवक समझती हूँ? कभी नहीं। मैं ऐसे एक नही सौ नाम गिना सकती हूँ, जो चेहरे-मोहरे में तुमसे बढ़कर हैं, मगर तुममे कोई ऐसी वस्तु हैं, जो तुम्हीं में हैं और वह मुझे और कहीं नजर नहीं आती। तो मेरा कार्यक्रम सुनो। एक महीने तो मुझे उससे मेल करते लगेगा। फिर वह मेरे साथ सैर करने निकलेगा। और तब एक दिन हम और वह दोनों रात को पार्क में जायँगे और तालाब के किनारे बेंच पर बैठेंगे। तुम उसी वक़्त रिवाल्वर लिये आ जाओगे और वहीं पृथ्वी उसके बोझ से हलकी हो जायगी।

जैसा हम पहले कह चुके हैं आइवन एक रईस का लड़का था और क्रांतिमय राजनीति से उसका हार्दिक प्रेम न था। हेलेन के प्रभाव से कुछ मानसिक सहानुभूति अवश्य पैदा हो गयी थी और मानसिक सहानुभूति प्राणी को संकट में नहीं डालती। उसने प्रकट रूप से तो कोई आपत्ति नही की लेकिन कुछ संदिग्ध भाव से बोला- यह तो सोचो हेलेन, इस तरह की हत्या कोई मानुषीय कृति हैं।

हेलेन ने तीखेपन से कहा- जो दूसरों के साथ मानुषीय व्यवहार नहीं करता, उसके साथ हम क्यों मानुषीय व्यवहार करे? क्या यह सूर्य की भाँति प्रकट नहीं हैं कि आज सैकड़ो परिवार इस राक्षस के हाथो से तबाह हो रहे हैं? कौन जानता हैं, इसके हाथ कितने बेगुनाहों के खून से रँगे हुए हैं? ऐसे व्यक्ति के साथ किसी तरह रिआयत करना संगत हैं। तुम न-जाने क्यों इतने ठंडे हो। मैं तो उसके दुष्टाचरण को देखती हूँ तो मेरा रक्त खौलने लगता हैं। मैं सच कहती हूँ, जिस वक़्त उसकी सवारी निकलती हैं. मेरी बोटी-बोटी हिंसा के आवेग से काँपने लगती हैं। अगर मेरे सामने कोई उसकी खाल भी खींच ले, तो मुझे दया न आये। अगर तुममें इतना साहस नहीं हैं, तो कोई हरज नहीं। मैं खुद सब कुछ कर लूँगी। हाँ, देख लेना, मैं कैसे उस कुत्ते को जहन्नुम पहुँचाती हूँ।

हेलेन का मुखमंडल हिंसा के आवेश से लाल हो गया। आइवन ने लज्जित होकर कहा- नहीं-नहीं, यह बात नहीं हैं. हेलेन! मेरा यह आशय न था कि मैं इस काम में तुम्हें सहयोग न दूँगा मुझे आज मालूम हुआ कि तुम्हारी आत्मा देश की

दुर्दशा से कितनी विकल हैं; लेकिन मैं फिर यहीं कहूँगा कि यह काम इतना आसान नहीं हैं और हमें बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ेगा।

हेलेन ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा- तुम इसकी कुछ चिन्ता न करो, आइवन! संसार में मेरे लिए जो वस्तु सबसे प्यारी हैं, उसे दाँव पर रखते हुए क्या मैं सावधानी से काम न लूँगी? लेकिन तुमसे एक याचना करती हूँ। अगर इस बीच में कोई ऐसा काम करूँ, जो तुम्हे बुरा मालूम हो, तो तुम मुझे क्षमा करोगे न?

आइवन ने विस्मय-भरी आँखों से हेलेन के मुख की ओर देखा। उसका आशय समझ में न आया।

हेलेन डरी, आइवन कोई नयी आपत्ति तो नहीं खड़ी करना चाहता। आश्वासन के लिए अपने मुख को उसके आतुर अक्षरों के समीप ले जाकर बोली- प्रेम का अभिनय करने मुझे वह सब कुछ करना पड़ेगा, जिस पर एकमात्र तुम्हारा ही अधिकार हैं। मै डरती हूँ, कहीं तुम मुझ पर सन्देह न करने लगो।

आइवन ने उसे कर-पाश में लेकर कहा- यह असम्भव हैं हेलेन, विश्वास प्रेम की पहली सीढ़ी हैं।

अंतिम शब्द करते-कहते उसकी आँखे झुक गयी। इन शब्दों में उदारता का जो आदर्श था, वह उस पर पूरा उतरेगा या नहीं, वह यहीं सोचने लगी।

इसके तीन दिन पीछे नाटक का सूत्रपात हुआ। हेलेन अपने ऊपर पुलिस के निराधार संदेह की फरियाद लेकर रोमनाफ से मिली और उसे विश्वास दिलाया कि पुलिस के अधिकारी उससे केवल इसलिए असंतुष्ट है कि वह उनके कलुषित प्रस्तावों को ठुकरा रही हैं। यह सत्य हैं कि विद्यालय में उसकी संगति कुछ उग्र युवकों से ही गयी थी; पर विद्यालय से निकलने के बाद उसका उनसे कोई सम्बन्ध नही हैं । रोमनाफ जितना चतुर था, उससे कही चतुर अपने को समझता

था। अपने दस साल के अधिकारी जीवन में उसे किसी रमणी से साबिका न पड़ा था, जिसने उसके ऊपर इतना विश्वास करके अपने को उसकी दया पर छोड़ दिया हो। किसी धन-लोलुप की भाँति सहसा यह धनराशि देखकर उसकी आँखों पर परदा पढ़ गया। अपनी समझ में तो वह हेलेन से उग्र युवकों के विषय में ऐसी बहुत-सी बातो का पता लगाकर फूला न समाया, जो खुफिया पुलिसवालों को बहुत सिर-मारने पर भी ज्ञात न हो सकी थी; पर इन बातों में मिथ्या का कितना मिश्रण हैं, वह न भाँप सका। इस आध घंटे में एक युवती ने एक अनुभवी अफसर को अपने रूप की मदिरा से उन्मत्त कर दिया था।

जब हेलेन चलने लगी, तो रोमनाफ ने कुर्सी से खड़े होकर कहा- मुझे आशा हैं, यह हमारी आखिरी मुलाकात न होगी।

हेलेन ने हाथ बढ़ाकर कहा- हुजूर ने जिस सौजन्य से मेरी विपत्ति-कथा सुनी हैं, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ।

'कल आप तीसरे पहर यहीं चाय पियें।'

रब्त-जब्त बढ़ने लगा। हेलेन आकर रोज की बातें आइवन से कह सुनाती। रोमनाफ वास्तव में जितना बदनाम था, उतरा बुरा नहीं । नहीं, वह बडा रसिक, संगीत और कला का प्रेमी और शील तथा विनय की मूर्ति हैं। इन थोड़े ही दिनों में हेलेन से उसकी घनिष्ठता हो गयी हैं और किसी अज्ञात रीति से नगर में पुलिस का अत्याचार कम होने लगा हैं।

अन्त में निश्चित तिथि आयी। आइवन और हेलेन दिन-भर बैठे-बैठे इसी प्रश्न पर विचार करते रहे। आइवन का मन आज बहुत चंचल हो रहा था। कभी अकारण ही हँसने लगता, कभी अनायास ही रो पड़ता। शंका, प्रतीक्षा और किसी अज्ञात चिंता ने उसके मनो-सागर को इतना अशान्त कर दिया था कि उसमें भावों को नौकाएँ डगमगा रही थीं- न मार्ग का पता था न दिशा का। हेलेन भी आज बहुत चिन्तित और गम्भीर थी। आज के लिए उसने पहले ही से सजीले

वस्त्र बनवा रखे थे। रूप को अलंकृत करने के न-जाने किन-किन विधानों कप प्रयोग कर रही थी; पर इसमें किसी योद्धा का उत्साह नहीं, कायर का कम्पन था।

सहसा आइवन ने आँखों में आँसू भरकर कहा- तुम आज इतनी मायाविनी हो गयी हो हेलेन, कि मुझे न-जाने क्यों तुमसे भय हो रहा हैं!

हेलेन मुसकायी। उस मुसकान में करूणा भरी हुई थी- मनुष्य को कभी-कभी कितने ही अप्रिय कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता हैं, आइवन, आज मैं सुधा से विष का काम लेने जा रही हूँ। अलंकार का ऐसा दुरुपयोग तुमने कहीं और देखा हैं?

आइवन उड़े हुए मन से बोला- इसी को राष्ट्र-जीवन कहते हैं।

'यह राष्ट्र-जीवन हैं- यह नरक हैं।'

'मगर संसार में अभी कुछ दिन और इसकी जरूरत रहेगी।'

'यह अवस्था जितनी जल्द बदल जाय, उतना ही अच्छा।'

पाँसा पलट चुका था, आइवन ने गर्म होकर कहा- अत्याचारियों को संसार में फलने-फूलने दिया जाय, जिसमें एक दिन इनके काँटों के मारे पृथ्वी पर कहीं पाँव रखने की जगह न रहे।

हेलेन ने जवाब न दिया; पर उसके मन में जो अवसाद उत्पन्न हो गया था, वह उसके मुख पर झलक रहा था। राष्ट्र उसकी दृष्टि में सर्वोपरि था, उसके सामने व्यक्ति का कोई मूल्य न था। अगर इस समय उसका मन किसी कारण से दुर्बल भी हो रहा था, तो उसे खोल देने का उसमें साहस न था।

दोनो गले मिलकर विदा हुए। कौन जाने, यह अन्तिम दर्शन हो?

दोनों के दिल भारी थे और आँखें सजल।

आइवन ने उत्साह के साथ कहा- मैं ठीक समय पर आऊँगा।

हेलेन ने कोई जवाब न दिया।

आइवन ने फिर सानुरोध कहा- खुदा से मेरे लिए दुआ करना, हेलेन!

हेलेन ने जैसे रोते हुए कहा- मुझे खुदा पर भरोसा नहीं हैं।

'मुझे तो हैं।'

'कब से?'

'जब से मौत मेरी आँखों के सामने खड़ी हो गयी।'

वह वेग के साथ चला गया। सन्ध्या हो गयी और दो घंटे के बाद ही उस कठिन परीक्षा का समय आ जायगा, जिससे उसके प्राण काँप रहे थे। वह कहीं एकान्त में बैठकर सोचना चाहता था। आज उसे ज्ञात हो रहा था कि वह स्वाधीन नहीं हैं। बड़ी मोटी जंजीर उसके एक-एक अंग को जकड़े हुए थी। इन्हें वह कैसे तोड़े?

दस बज गये थे। हेलेन और रौमनाफ पार्क के एक कुंज में बैठे हुए थे। तेज बर्फीली हवा चल रही थी। चाँद किसी क्षीण आशा की भाँति बादलों में छिपा हुआ था।

हेलेन ने इधर-उधर सशंक नेत्रों से देखकर कहा- अब तो देर हो गयी, यहाँ से चलना चाहिए।

रोमनाफ ने बेंच पर पाँव फैलाते हुए कहा- अभी तो ऐसी देर नहीं हुई हैं, हेलेन! कह नहीं सकता, जीवन के यह क्षण स्वप्न हैं या सत्य; लेकिन सत्य भी हैं तो स्वप्न से अधिक मधुर और स्वप्न भी हैं तो सत्य से अधिक उज्ज्वल।

हेलेन बेचैन होकर उठी और रोमनाफ का हाथ पकड़कर बोली- मेरा जी आज कुछ चंचल हो रहा हैं। सिर में चक्कर आ रहा हैं। चलो मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

रोमनाफ ने उसका हाथ पकड़कर अपनी बगल में बैठाते हुए कहा- लेकिन मैने मोटर तो ग्यारह बजे बुलायी हैं।

हेलेन के मुँह से चीख निकल गयी- ग्यारह बजे!

'हाँ. अब ग्यारह बजा चाहते हैं। आओ तब तक और कुछ बातें हों। रात तो काली बला-सी मालूम होती हैं। जितनी ही देर उसे दूर रख सकूँ उतना ही अच्छा। मैं तो समझता हूँ, उस दिन तुम मेरे सौभाग्य की देवी बनकर आयी थी हेलेन, नहीं तो अब तक मैने न जाने क्या-क्या अत्याचार किये होते। उस उदार नीति ने वातावरण में जो शुभ परिवर्तन कर दिया, उस पर मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा हैं। महीनों के दमन में जो कुछ न कर पाया था, वह दिनों के आश्वासन ने पूरा कर दिखाया। और इसके लिए मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, हेलेन, केवल तुम्हारा। पर खेद यही हैं कि हमारी सरकार दवा करना नहीं जानती, केवल मारना जानती हैं। जार के मंत्रियों में अभी से मेरे विषय में सन्देह होने लगा हैं, और मुझे यहाँ से हटाने का प्रस्ताव हो रहा हैं।

सहसा टार्च का चकाचौंध पैदा करनेवाला प्रकाश बिजली की भाँति उठा और रिवाल्वर छूटने की आवाज आयी। उसी वक़्त रोमनाफ ने उछलकर आइवन को पकड़ लिया और चिल्लाया- पकड़ो, पकड़ो! खून हेलेन, तुम यहाँ से भागो।

पार्क में कई संतरी थे। चारों ओर से दौड़ पड़े। आइवन घिर गया। एक क्षण में न-जाने कहाँ से टाउन-पुलिस, सशस्त्र पुलिस, गुप्त पुलिस और सवार पुलिस के जत्थे-के-जत्थे आ पहुँचे। आइवन गिरफ्तार हो गया।

रोमनाफ ने हेलेन से हाथ मिलाकर सन्देह के स्वर मे कहा- यह आइवन तो वही युवक है, तो तुम्हारे विद्यालय में था।

हेलेन ने क्षुब्ध होकर कहा- हाँ, हैं। लेकिन मुझे इसका जरा भी अनुमान न था कि वह क्रांतिकारी हो गया हैं।

'गोली मेरे सिर पर से सन्-सन् करती हुई निकल गयी।'

'या ईश्वर!'

'मैने दूसरा फायर करने का अवसर ही न दिया। मुझे इस युवक की दशा पर दुःख हो रहा हैं, हेलेन! ये अभागे समझते हैं कि इन हत्याओं से वे देश का उद्धार कर लेंगे। अगर मैं मर ही जाता तो क्या मेरी जगह, कोई मुझसे भी ज्यादा कठोर मनुष्य न आ जाता? लेकिन मुझे जरा भी क्रोध , दुःख या भय नहीं हैं हेलेन, तुम बिल्कुल चिन्ता न करना। चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ'

रास्ते भर रोमनाफ इस आघात से बच जाने पर अपने को बधाई और ईश्वर को धन्यवाद देता रहा और हेलेन विचारों में मग्न बैठी रही।

दूसरे दिन मजिस्ट्रेट के इलजास में अभियोग चला और हेलेन सरकारी गवाह थी। आइवन को मालूम हुआ कि दुनिया अंधेरी हो गयी हैं और वह उसकी अथाह गहराई में धँसता चला जा रहा हैं।

3

चौदह साल के बाद।

आइवन रेलगाड़ी से उतरकर हेलेन के पास जा रहा हैं। उसे घरवालों की सुध नहीं हैं। माता और पिता उसके वियो में मरणासन्न हो रहे हैं, इसकी उसे परवाह नही हैं। वह अपने चौदह साल के पाले हुए हिंसा-भाव से उन्मत्त, हेलेन के पास जा रहा हैं, पर उसकी हिंसा में रक्त की प्यास नहीं हैं, केवल गहरी दाहक दुर्भावना हैं। इस चौदह सालों में उसने जो यातनाएँ झेली हैं, उनके दो-चार वाक्यों में मानो सत्त निकालकर, विष के समान हेलेन की धमनियों में भरकर, उसे तड़पते हुए

देखकर, वह अपनी आँखों को तृप्त करना चाहता हैं। और वह वाक्य क्या हैं? - 'हेलेन, तुमने मेरे साथ जो दगा की हैं, वह शायद त्रिया-चरित के इतिहास में भी अद्‌वितीय हैं। मैने अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणों पर अर्पण कर दिया । मैं केवल तुम्हारे इशारों का गुलाम था। तुमने ही मुझे रोमनाफ की हत्या के लिए प्रेरित किया और तुमने ही मेरे विरुद्ध साक्षी दी, केवल अपनी कुटिल काम-लिप्सा को पूरा करने के लिए! मेरे विरुद्ध कोई दूसरा प्रणाम न था। रोमनाफ और उसकी सादी पुलिस भी झूठी शहादतों से मुझे परास्त न कर सकती थी; मगर तुमने केवल अपनी वासना को तृप्त करने के लिए, केवल रोमनाफ के विषाक्त आलिंगन का आनन्द उठाने के लिए मेरे साथ यह विश्वासघात किया। पर आँखें खोलकर देखो कि वही आइवन, जिसे तुमने पैर के नीचे कुचला था, आज तुम्हारी उन सारी मक्कारियों का पर्दा खोलने के लिए तुम्हारे सामने खड़ा हैं। तुमने राष्ट्र की सेवा का बीड़ा उठाया था। तुम अपने को राष्ट्र की वेदी पर होम कर देना चाहती थी; किन्तु कुत्सित कामनाओं के पहले ही प्रलोभन में तुम अपने सारे बहुरूप को तिलांजलि देकर भोग-लालसा की गुलामी करने पर उतर गयीं। अधिकार और समृद्धि के पहले ही टुकड़े पर तुम दुम हिलाती हुई टूट पड़ी, धिक्कार हैं तुम्हारी इस भोग-लिप्सा को, तुम्हारे इस कुत्सित जीवन को?'

4

सन्ध्या-काल था। पश्चिम के क्षितिज पर दिन का चिता जलकर ठंडी हो रही थी और रोमनाफ के विशाल भवन में हेलेन की अर्थी को ले चलने की तैयारियाँ हो रही थी। नगर के नेता जमा थे और रोमनाफ अपने शोक-कंपित हाथों से अर्थी को पुष्पहार से सजा रहा था एवं उन्हें अपने आत्म-जल से शीतल कर रहा था। उसी वक़्त आइवन उन्मत्त वेश में , दुर्बल, झुका हुआ, सिर के बाल बढ़ायें, कंकाल-सा आकर खड़ा हो गया। किसी ने उसकी ओर ध्यान न दिया! समझे, कोई भिक्षुक होगा, जो ऐसे अवसरों पर दान के लोभ पर आ जाया करते हैं।

जब नगर के विशप ने अन्तिम संस्कार समाप्त किया और मरियम की बेटियाँ

नये जीवन के स्वागत का गीत गा चुकीं, तो आइवन ने अर्थी के पास जाकर आवेश से काँपते हुए स्वर में कहा- यह वह दुष्टा है, जिसे सारी दुनिया के पवित्र आत्माओं की शुभ कामनाएँ भी नरक की यातना से नहीं बचा सकतीं। वह इस योग्य थी कि उसकी लाश....

कई आदमियों ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और धक्के देते हुए फाटक की ओर ले चले। उसी वक़्त रोमनाफ ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया और उसे अलग ले जाकर पूछा- दोस्त, क्या तुम्हारा नाम क्लॉडियस आइवन हैं? हाँ, तुम वही हो. मुझे तुम्हारी सूरत याद आ गयी। मुझे सब कुछ मालूम हैं, रत्ती-रत्ती मालूम हैं। हेलेन ने मुझसे कोई बात नहीं छिपायी। अब वह इस संसार में नहीं हैं, मैं झूठ बोलकर उसकी कोई सेवा नहीं कर सकता। तुम उस पर कठोर शब्दों का प्रहार करो या कठोर आघातों का, वह समान रूप से शान्त रहेगी; लेकिन अन्त समय तक वह तुम्हारी याद करती रही। उस प्रसंग की स्मृति उसे सदैव रुलाती रहती थी। उसके जीवन की यह सबसे बड़ी कामना थी कि वह तुम्हारे सामने घुटने टेक कर क्षमा की याचना करे, मरते-मरते उसने यह वसीयत की, कि जिस तरह भी हो सके उसकी यह विनय तुम तक पहुँचाऊँ कि वह तुम्हारी अपराधिनी हैं और तुमसे क्षमा चाहती हैं। क्या तुम समझते हो, जब वह तुम्हारे सामने आँखों में आँसू भरे आती, तो तुम्हारे हृदय पत्थर होने पर भी न पिघल जाता? क्या इस समय भी तुम्हें दीन याचना की प्रतिमा-सी खडी नही दीखती? चलकर उसका मुसकराता हुआ चेहरा देखो। मोशियो आइलन, तुम्हारा मन अब भी उसका चुम्बन लेने के लिए विकल हो जायगा। मुझे जरा भी ईर्ष्या न होगी। उस फूलों की सेज पर लेटी हुई वह ऐसी लग रही हैं, मानो फूलों की रानी हो। जीवन में उसकी एक ही अभिलाषा अपूर्ण रह गयी आइवन, वह तुम्हारी क्षमा हैं। प्रेमी हृदय बड़ा उदार होता हैं आइवन, वह क्षमा और दया का सागर होता हैं। ईर्ष्या और दम्भ के गन्दे नाले उसमें मिलकर उतने ही विशाल और पवित्र हो जाते हैं। जिसे एक बार तुमने प्यार किया, उसकी अन्तिम अभिलाषा की तुम उपेक्षा नहीं कर सकते।

उसने आइवन का हाथ पकड़ा और सैकड़ो कुतूहल-पूर्ण नेत्रों के सामने उसे लिये हुए अर्थी के पास आया और ताबूत का ऊपरी तख्ता हटाकर हेलेन का शान्त मुख-मंडल उसे दिखा दिया। उस निस्पन्द, निश्चेष्ट, निर्विकार छवि को मृत्यु ने एक दैवी गरिमा-सी प्रदान कर दी थी, मानो स्वर्ग की सारी विभूतियाँ उसका स्वागत कर रही हैं। आइवन की कुटिल आँखों में एक दिव्य ज्योति-सी चमक उठी और वह अपने हृदय के सारे अनुराग और उल्लास को पुष्पों में गूँथ कर उसके गले में डाला था। उसे जान पड़ा, यह सब कुछ जो उसके सामने हो रहा हैं, स्वप्न हैं और एकाएक उसकी आँखें खुल गयी हैं और वह उसी भाँति हेलेन को अपनी छाती से लगाये हुए हैं। उस आत्मानन्द के एक क्षण के लिए क्या वह फिर चौदह साल का कारावास झेलने के लिए तैयार हो जायगा? क्या अब भी उसके जीवन की सबसे सुखद घड़ियाँ वही न थी, जो हेलेन के साथ गुजरी थी और क्या उन घड़ियों के अनुपम आनन्द को वह इन चौदह सालों मे भी भूल सका था? उसने ताबूत के पास बैठकर श्रद्धा से काँपते हुए कंठ से प्रार्थना की- 'ईश्वर, तू मेरे प्राणों से प्रिय हेलेन को अपनी क्षमा के दामन में ले!' और जब वह ताबूत को कन्धे पर लिये चला, तो उसकी आत्मा लज्जित थी अपनी संकीर्णता पर, अपनी उद्विग्नता पर, अपनी नीचता पर और जब ताबूत कब्र में रख दिया, तो वह वहाँ बैठकर न-जाने कब तक रोता रहा। दूसरे दिन रोमनाफ जब फातिहा पढ़ने आया तो देखा, आइवन सिजदे में सिर झुकायें हुए हैं और उसकी आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर चुकी हैं।

***

मिस पद्मा

कानून में अच्छी सफलता प्राप्त कर लेने के बाद मिस पद्मा को एक नया अनुभव हुआ, वह था जीवन का सूनापन। विवाह को उन्होंने एक अप्राकृतिक बंधन समझा था और निश्चय कर लिया था कि स्वतंत्र रहकर जीवन का उपभोग करूँगी। एम. ए. की डिग्री ली, फिर कानून पास किया और प्रैक्टिस शुरू कर दी। रूपवती थी, युवती थी, मृदुभाषिणी थी और प्रतिभाशालिनी भी थी। मार्ग में कोई बाधा न थी। देखते-देखते वह अपने साथी नौजवान मर्द वकीलों को पीछे छोड़कर आगे निकल गयी और अब उसकी आमदनी कभी-कभी एक हजार से भी ऊपर बढ़ जाती । अब उतने परिश्रम और सिर-मगजन की आवश्यकता न रही। मुकदमें अधिकतर वही होते थे, जिनका उसे पूरा अनुभव हो चुका था, उसके विषय में किसी तरह की तैयारी की उसे जरूरत न मालूम होती। अपनी शक्तियों पर कुछ विश्वास भी हो गया था। कानून में कैसे विजय मिला करती हैं, इसके कुछ लटके भी उसे मालूम हो गये थे। इसलिये उसे अब उसे बहुत अवकाश मिलता था और इसे वह किस्से-कहानियाँ पढ़ने, सैर करने, सिनेमा देखने , मिलने-मिलाने में खर्च करती थी। जीवन को सुखी बनाने के लिए किसी व्यसन की जरूरत को वह खूब समझती थी। उसने फूल और पौदे लगाने का व्यसन पाल लिया था। तरह-तरह के बीज और पौदे मँगाती औऱ उन्हें उगते-बढ़ते, फूलते-फलते देखकर खुश होती; मगर जीवन में सूनपने का अनुभव होता रहता था। यह बात न थी कि उसे पुरुषों से विरक्ति हो। नहीं, उसके प्रेमियों की कमी न थी। अगर उसके पास केवल रूप और यौवन होता, तो भी उपासकों का अभाव न रहता; मगर यहाँ तो रूप और यौवन के साथ धन भी थी। फिर रसिक-वृन्द क्यों चूक जाते? पद्मा को विलास से घृणा थी नहीं, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से। जब स्वतंत्र रहकर भोग-विलास का आनन्द उठाया जा सकता हैं, तो फिर क्यों न उड़ाया जाय? भोग में उसे कोई नैतिक बाधा न थी, इसे केवल देह की एक भूख समझती थी। इस भूख को किसी साफ-सुथरी दुकान से भी शान्त

किया जा सकता हैं। और पद्मा को साफ-सुथरी दुकाम की हमेशा तलाश रहती थी। ग्राहक दुकान में वहीं चीज लेता हैं, जो उसे पसन्द आती हैं। पद्मा भी वहीं चीज चाहती थी। यों उसके दर्जनों आशिक थे- कई वकील, कई प्रोफेसर, कई डॉक्टर, कई रईस। मगर ये सब-के-सब ऐय्यास थे- बेफिक्र , केवल भौरे की तरह रस लेकर उड़ जाने वाले। ऐसा एक भी न था, जिस पर वह विश्वास कर सकती। अब उसे मालूम हुआ कि उसका मन केवल भोग नहीं चाहता, कुछ और भी चाहता हैं। वह चीज क्या थी? पूरा आत्म-समर्पण और यह उसे न मिलता था।

उसके प्रेमियों में एक मि. प्रसाद था- बड़ा ही रूपवान और धुरन्धर विद्वान। एक कॉलेज में प्रोफेसर था। वह भी मुक्त-भोग का आदर्श का उपासक था और पद्मा उस पर फिदा थी। चाहती थी उसे बाँधकर रखे, सम्पूर्णतः अपना बना ले; लेकिन प्रसाद चंगुल में न आता था।

सन्ध्या हो गयी थी। पद्मा सैर करने जा रही थी कि प्रसाद आ गये। सैर करना मुल्तवी हो गया। बातचीत में सैर से कहीं ज्यादा आनन्द था और पद्मा आज प्रसाद से कुछ दिल की बात कहने वाली थी। कई दिन के सोच-विचार के बाद उसने कह डालने का निश्चय किया।

उसने प्रसाद की नशीली आँखों से आँखें मिलाकर कहा- तुम यहीं मेरे बँगले में आकर क्यों नहीं रहते?

प्रसाद ने कुटिल-विनोद के साथ कहा- नतीजा यह होगा कि दो-चार महीने में यह मुलाकात बन्द हो जायेगी।

'मेरी समझ में नही आया, तुम्हारा आशय क्या हैं।'

'आशय वहीं हैं, जो मैं कह रहा हूँ।'

'आखिर क्यों?'

'मैं अपनी स्वाधीनता न खोना चाहूँगा, तुम अपनी स्वतन्त्रता न खोना चाहोगी। तुम्हारे पास तुम्हारे आशिक आयेंगे, मुझे जलन होगी। मेरे पास मेरी प्रेमिकाएँ आयेंगी, तुम्हें जलन होगी। मनमुटाव होगा, फिर वैमनस्य होगा और तुम मुझे घर से निकाल दोगी। घर तुम्हारा है ही! मुझे बुरा लगेगा ही, फिर यह मैत्री कैसे निभेगी?'

दोनो कई मिनट तक मौन रहे। प्रसाद ने परिस्थिति को इतने स्पष्ट, बेलाग, लट्ठमार शब्दों में खोलकर रख दिया था कि कुछ कहने की जगह न मिलती थी।

आखिर प्रसाद ही को नुकता सूझा। बोला- जब तब हम दोनों यह प्रतिज्ञा न कर लें कि आज से मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरी हो, तब तक एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता!

'तुम यह प्रतिज्ञा करोंगे?'

'पहले तुम बतलाओ।'

'मैं करूँगी।'

'तो मैं भी करूँगा।'

'मगर इस एक बात के सिवा मैं और सभी बातों में स्वतंत्र रहूँगी!'

'और मैं भी इस एक बात के सिवा हर बात में स्वतंत्र रहूँगा।'

'मंजूर।'

'मंजूर!'

'तो कब से?'

'जब से तुम कहो।'

'मैं तो कहती हूँ, कल ही से।'

'तय। लेकिन अगर तुमने इसके विरुद्ध आचारण किया तो?'

'और तुमने किया तो?'

'तुम मुझे घर से निकाल सकती हो; लेकिन मैं तुम्हें क्या सजा दूँगा?'

'तुम मुझे त्याग देना, और क्या करोगे?'

'जी नहीं, तब इतने से चित्त को शान्ति न मिलेगी। तब मैं चाहूँगा तुम्हे जलील करना; बल्कि तुम्हारी हत्या करना।'

'तुम बहुत निर्दयी हो, प्रसाद?'

'जब तक हम दोनों स्वाधीन हैं, हम किसी को कुछ कहने का हक नहीं, लेकिन एक बार प्रतिज्ञा में बँध जाने के बाद फिर ने मैं इसकी अवज्ञा सह सकूँगा, न तुम सह सकोगी। तुम्हारे पास दंड का साधन हैं, मेरे पास नहीं। कानून मुझे कोई भी अधिकार नहीं देगा। मैं तो केवल अपनी पशुबल से प्रतिज्ञा का पालन कराऊँगा और तुम्हारे इतने नौकरों के सामने मैं अकेला क्या कर सकूँगा?'

'तुम तो चित्र का श्याम पक्ष ही देखते हो! जब मैं तुम्हारी हो रही हूँ, तो यह मकान, नौकर-चाकर और जायदाद सब कुछ तुम्हारा हैं। हम-तुम दोनों जानते हैं कि ईर्ष्या से ज्यादा घृणित कोई सामाजिक पाप नहीं हैं। तुम्हें मुझसें प्रेम हैं या नहीं, मैं नहीं कह सकती; लेकिन तुम्हारे लिए मैं सब कुछ सहने, सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ।'

'दिल से कहती हो पद्मा?'

'सच्चे दिल से।'

'मगर न-जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं आ रहा हैं?'

'मैं तो तुम्हारे ऊपर विश्वास कर रही हूँ।'

'यह समझ लो, मै मेहमान बनकर तुम्हारे घर में न रहूँगा, स्वामी बनकर रहूँगा।'

'तुम घर के स्वामी ही नही, मेरे स्वामी बनकर रहोगे। मैं तुम्हारी स्वामिनी बन कर रहूँगी।'

2

प्रो. प्रसाद और मिस पद्मा दोनों साथ रहते हैं और प्रसन्न हैं। दोनों ही ने जीवन का जो आदर्श मन में स्थिर कर लिया था, वह सत्य बन गया हैं। प्रसात को केवल दो-सौ रुपये वेतन मिलता हैं; मगर अप वह अपनी आमदनी का दुगुना भी खर्च कर दे तो परवाह नहीं। पहले वह कभी-कभी शराब पीता था, अब रात-दिन शराब में मस्त रहता हैं। अब उसके लिए अलग अपनी कार हैं, अलग नौकर हैं, तरह-तरह की बहुमूल्य चीजें मँगवाता रहता हैं और पद्मा बड़े हर्ष से उसकी सारी फिजूल-खर्जियाँ बर्दाश्त करती हैं। नहीं, बर्दाश्त करने का प्रश्न नहीं। वह खुद उसे अच्छे-से-अच्छे सूट पहनाकर अच्छे-से-अच्छे ठाठ में रखकर, प्रसन्न होती हैं। जैसी घड़ी इस वक़्त प्रसाद के पास हैं, शहर के बड़े-बड़े रईस के पास न होगी और पद्मा जितना ही उससे दबती हैं, प्रसाद उतना ही उसे दबाता हैं। कभी-कभी उसे नागवार भी लगता हैं, पर किसी अज्ञात कारण से अपने को उसके वश में पाती हैं। प्रसाद को जरा भी उदास या चिन्तित देखकर उसका मन चंचल हो जाता हैं। उस पर आवाजें कसी जाती हैं; फबतियाँ चुस्त की जाती हैं। जो उसके पुराने प्रेमी हैं, वे उसे जलाने और कुढ़ाने का प्रयास भी करते हैं; पर वह प्रसाद के पास आते ही सब कुछ भूल जाती हैं। प्रसाद ने उस पर पूरा आधिपत्य पा लिया हैं और उसे इसका ज्ञान पद्मा को उसने बारीक आँखों से पढ़ा हैं और उसका

शासन अच्छी तरह पा गया हैं।

मगर जैसे राजनीति के क्षेत्र में अधिकार दुरुपयोग की ओर जाता हैं, उसी तरह प्रेम के क्षेत्र में भी वह दुरुपयोग की ओर ही जाता हैं और जो कमजोर है, उसे तावान देना पड़ता हैं। आत्माभिमानी पद्मा अब प्रसाद की लौड़ी थी और प्रसाद उसकी दुर्बलता का फायदा उठाने से क्यों चूकता? उसने कील की पतली नोक चुभा ली थी और बड़ी कुशलता से उत्तरोत्तर उसे अन्दर ठोंकता जाता था। यहाँ तक कि उसने रात को देर से आना शुरू किया। पद्मा को अपने साथ न ले जाता, उससे बहाना करता कि मेरे सिर में दर्द हैं औऱ जब पद्मा घुमने जाती तो अपनी कार निकाल लेता और उड़ जाता। दो साल गुजर गये और पद्मा को गर्भ था। वह स्थूल भी हो चली थी। उसके रूप में पहले की-सी नवीनता और मादकता न रह गई थी। वह घर की मुर्गी थी, साग बराबर।

एक दिन इसी तरह पद्मा लौटकर आयी, तो प्रसाद गायब थे। वह झुँझला उठी। इधर कई दिन से वह प्रसाद का रंग बदला हुआ देख रही थी। आज उसने कुछ स्पष्ट बाते कहने का साहस बटोरा। दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये, पद्मा उसके इन्तजार में बैठी थी। भोजन ठंड़ा हो गया, नौकर-चाकर सो गये। वह बार-बार उठती, फाटक पर जाकर नजर दौड़ाती। बाहर-एक बजे के करीब प्रसाद घर आये।

पद्मा ने साहस बटोरा था; पर प्रसाद के सामने जाते ही उसे इतनी कमजोरी मालूम हुई। फिर भी उसने जरा कड़े स्वर में पूछा- आज इतनी रात तक कहाँ थे? कुछ खबर हैं, कितनी रात हैं?

प्रसाद को वह इस वक़्त असुन्दरता की मूर्ति-सी लगी। वह एक विद्यालय की छात्रा के साथ सिनेमा देखने गया था। बोला- तुमको आराम से सो जाना चाहिए था। तुम जिस दशा में हो, उसमें तुम्हें, जहाँ तक हो सके, आराम से रहना चाहिए।

पद्मा का साहस कुछ प्रबल हुआ- तुमसे पूछती हूँ, उसका जवाब दो। मुझे

जहन्नुम में भेजो!

'तो तुम भी मुझे जहन्नुम में जाने दो।'

'तुम मेरे साथ दगा कर रहे हो, यह मैं साफ देख रही हूँ।'

'तुम्हारी आँखों की ज्योति कुछ बढ़ गयी होगी!'

'मैं इधर कई दिनो से तुम्हारा मिजाज कुछ बदला हुआ देख रही हूँ।'

'मैं तुम्हारे साथ अपने को बेचा नही हैं। अगर तुम्हारा जी मुझसे भर गया हो, तो मैं आज जाने को तैयार हूँ।'

'तुम जाने की धमकी क्या देते हो! यहाँ तुमने आकर कोई बड़ा त्याग नहीं किया हैं।'

'मैने त्याग नहीं किया हैं? तुम यह कहने का साहस कर रही हो। मैं देखता हूँ, तुम्हारा मिजाज़ बिगड़ रहा हैं। तुम समझती हो, मैने इसे अपंग कर दिया । मगर मैं इसी वक़्त तुम्हें ठोकर मारने को तैयार हूँ, इसी वक़्त, इसी वक़्त!'

पद्मा का साहस जैसे बुझ गया था। प्रसाद अपना ट्रँक सँभाल रहा था। पद्मा ने दीन-भाव से कहा- मैने तो ऐसी कोई बात नहीं कहीं, जो तुम इतना बिगड़ उठे। मैं तो केवल तुमसे पूछ रहीं थी, कहाँ थे। क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं देना चाहते? मैं कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती और तुम मुझे बात-बात पर डाँटते रहते हो। तुम्हें मुझ पर जरा भी दया नहीं आती। मुझे तुमसे कुछ भी तो सहानुभूति मिलनी चाहिए। मैं तुम्हारे लिए क्या कुछ करने को तैयार नहीं हूँ? और आज जो मेरी दशा हो गयी हैं, तो तुम मुझसे आँखे फेर लेते हो...

उसका कंठ रुँध गया और मेज पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। प्रसाद ने पूरी विजय पायी।

3

पद्मा के लिए मातृत्व अब बड़ा ही अप्रिय प्रसंग था। उस पर चिंता मँडराती रहती। कभी-कभी वह भय से काँप उठती और पछताती। प्रसाद की निरंकुशता दिन-दिन बढती जाती थी। क्या करे, क्या न करें। गर्भ पूरा हो गया था, वह कोर्ट न जाती थी। दिन-भर अकेली बैठी रहती थी। प्रसाद सन्ध्या समय आते, चाय-वाय पीकर फिर उड़ जाते, तो ग्यारह-बारह बजे से पहले न लौटते। वह कहाँ जाते हैं, यह भी उससे छिपा न था। प्रसाद को तो जैसे उसकी सूरत से नफरत थी। पूर्ण गर्भ, पीला मुख, चिन्तित, सशंक, उदास। फिर भी वह प्रसाद को श्रृंगार और आभूषण से बाँधने की चेष्टा से बाज न आती थी। मगर वह जितना ही प्रयास करती, उतना ही प्रसाद का मन उसकी ओर से फिरता था। इस अवस्था में श्रृंगार उसे और भी भद्दा लगता।

प्रसव-वेदना हो रही थी। प्रसाद का पता नहीं। नर्स मौजूद थी, लेडी डॉक्टर मौजूद थी; मगर प्रसाद का न रहना पद्मा की प्रसव वेदना को और भी दारूण बना रहा था।

बालक को गोद में देखकर उसका कलेजा फूल उठा, मगर फिर प्रसाद को सामने न पाकर उसने बालक की ओर से मुँह फेर लिया। मीठे फल में जैसे कीड़े पड़ गये हों।

पाँच दिन सौर-गृह में काटने के बाद जैसे पद्मा जेलखाने से निकली- नंगी तलवार बनी हुई। माता बनकर वह अपने में एक अद्भूत शक्ति का अनुभव कर रही थी।

उसने चपरासी को चेक देकर बैंक भेजा। प्रसव-सम्बन्धी कई बिल अदा करने थे। चपरासी खाली हाथ लौट आया।

पद्मा ने पूछा- रुपये?

'बैंक बाबू ने कहा, रुपये प्रसाद बाबू निकाल ले गये।'

पद्मा को गोली लग गयी। बीस हजार रुपये प्राणों की तरह संचित कर रखे थे, इसी शिशु के लिए। हाय! सौर से निकलने पर मालूम हुआ, प्रसाद विद्यालय की एक बालिका को लेकर इंगलैंड की सैर करने चले गये । झल्लायी हुआ घर में आयी, प्रसाद की तसवीर उठाकर जमीन पर पटक दी और उसे पैरों से कुचला। उसका जितना सामान था, उसे जमा करके दियासलाई लगा दी और उसके नाम पर थूक दिया।

एक महीना बीत गया था। पद्मा अपने बँगले के फाटक पर शिशु को गोद में लिए खड़ी थी। उसका क्रोध अब शोकमय निराशा बन चुका था। बालक पर कभी दया आती, कभी प्यार आता, कभी घृणा होती। उसने सड़क पर देखा, एक यूरोपियन लेडी अपने पति के साथ अपने बालक को गाड़ी में बिठाये लिये चली जा रही थी। उसने हसरत-भरी आँखों से उस खुशनसीब जोड़े को देखा और उसकी आँखे सजल हो गयीं।

***

विद्रोही

आज दस साल से जब्त कर रहा हूँ। अपने इस नन्हें-से हृदय में अग्नि का दहकता हुआ कुंड छिपाये बैठा हूँ। संसार में कहीं शान्ति होगी, कहीं सैर-तमाशे होगें, कहीं मनोरंजन की वस्तुएँ होगी; मेरे लिए तो अब यहीं अग्निराशि हैं और कुछ नहीं। जीवन की सारी अभिलाषाएँ इसी में जलकर राख हो गयीं। किससे अपनी मनोव्यथा कहूँ? फायदा ही क्या? जिसके भाग्य में रुदन, अनंत रुदन हो, उसका मर जाना ही अच्छा।

मैने पहली बार तारा को उस वक़्त देखा, जब मेरी उम्र दस साल की थी। मेरे पिता आगरे के एक अच्छे डॉक्टर थे। लखनऊ में मेरे एक चचा रहते थे। उन्होंने वकालत में काफी धन कमाया था। मैं उन दिनों चचा ही के साथ रहता था। चचा के कोई सन्तान न थी, इसलिए मैं ही उनका वारिस था। चचा और चची दोनों मुझे अपना पुत्र मानते थे। मेरी माता बचपन में ही सिधार चुकी थी। मातृ-स्नेह का जो कुछ प्रसाद मुझे मिला, वह चची जी ही की भिक्षा थी। यही भिक्षा मेरे उस मातृ-प्रेम से वंचित बालपन की सारी विभूति थी।

चचा साहब के पड़ोस में हमारी बिदादरी के एक बाबू साहब और रहते थे। वह रेलवे-विभाग में किसी अच्छे ओहदे पर थे। दो-ढाई सौ रुपये पाते थे। नाम था विमलचन्द्र। तारा उन्हीं की पुत्री थी। उस वक़्त उसकी उम्र पाँच साल की होगी। बचपन का वह दिन आज भी आँखों के सामने हैं, जब तारा एक फ्राक पहने, बालों में एक गुलाब का फूल गूँथे हुए मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। कह नही सकता, क्यों में उसे देखकर झेंप-सा गया। मुझे वह देव-कन्या सी मालूम हुई, जो उषा-काल के सौरभ और प्रकाश से रंजित आकाश से उतर आयी हो।

उस दिन से तारा अक्सर मेरे घर आती। उसके घर में खेलने की जगह न थी।

चचा साहब के घर के सामने लम्बा-चौड़ा मैदान था। वहीं वह खेला करती। धीरे-धीरे में भी उससे मानूस हो गया। मैं जब स्कूल से लौटता तो तारा दौड़कर मेरे हाथों से किताबों का बस्ता ले लेती। जब मैं स्कूल जाने के लिए गाड़ी पर बैठता, तो वह भी आकर मेरे साथ बैठ जाती। एक दिन उसके सामने चची ने चाचा से कहा- तारा को मैं अपनी बहू बनाऊँगी। क्यों कृष्णा, तू तारा से ब्याह करेगा? मैं मारे शर्म से बाहर भागा; लेकिन तारा वही खड़ी रही, मानो चची ने उसे मिठाई देने को बुलाया हो। उस दिन से चचा और चची में अक्सर यही चर्चा होती- कभी सलाह के ढंग से, कभी मजाक के ढंग से। उस अवसर पर मैं तो शर्मा कर बाहर भाग जाता था; पर तारा खुश होती थी। दोनों परिवारों में इतना घराव था कि इस सम्बन्ध का हो जाना कोई असाधारण बात न थी। तारा के माता-पिता को तो इसका पूरा विश्वास था कि तारा से मेरा विवाह होगा। मैं जब उनके घर जाता, तो मेरी बड़ी आवभगत होती। तारा की माँ उसे मेरे साथ छोड़कर किसी बहाने से टल जाती थी। किसी को अब इसमें शक न था कि तारा ही मेरी हदयेश्वरी होगी।

एक दिन इस सरला ने मिट्टी का एक घरौंदा बनाया। मेरे मकान के सामने नीम का पेड़ था। उसी की छाँह में वह घरौदा तैयार हुआ। उसमें कई जरा-जरा से कमरे थे, कई मिट्टी के बरतन, एक नन्हीं-सी चारपाई थी। मैंने जाकर देखा, तो तारा घरौंदा बनाने में तन्मय हो रही थी। मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पास आयी और बोली- कृष्णा, चलो हमारा घर देखो, मैंने अभी बनाया हैं। घरौंदा देखा, तो हँसकर बोला- इसमें कौन रहेगा, तारा?

तारा ने ऐसा मुँह बनाया, मानो वह व्यर्थ का प्रश्न था। बोली- क्यों, हम और तुम रहेंगें ? जब हमारा-तुम्हारा विवाह हो जाएगा, तो हम लोग इसी घर में आकर रहेंगे। वह देखो, तुम्हारी बैठक हैं, तुम यहीं बैठकर पढोगे। दूसरा कमरा मेरा हैं, इसमें बैठकर मैं गुड़िया खेलूँगी।

मैंने हँसी करके कहा- क्यों, क्या मैं सारी उम्र पढ़ता ही रहूँगा और तुम हमेशा

गुड़िया ही खेलती रहोगी?

तारा ने मेरी तरफ इस ढंग से देखा, जैसे मेरी बात नहीं समझी। पगली जानती थी कि जिन्दगी खेलने और हँसने ही के लिए हैं। यह न जानती थी कि एक दिन हवा का एक झोंका आयेगा और इस घरौंदे को उड़ा ले जायेगा और इसी के साथ हम दोनों भी कही-से-कहीं जा उड़ेगे।

2

इसके बाद मैं पिताजी के पास चला आया और कई साल पढ़ता रहा। लखनऊ की जलवायु मेरे अनुकूल न थी, या पिताजी ने मुझे अपने पास रखने के लिए यह बहाना किया था, मैं निश्चित नहीं कह सकता। इंटरमीडिएट तक मैंने आगरे ही में पढ़ा; लेकिन चचा साहब के दर्शनों के लिए बराबर जाता रहता था। हर एक तातील में लखनऊ अवश्य जाता और गर्मियों की छुट्टी तो पूरी लखनऊ ही में कटती थी। एक छुट्टी गुजरते ही दूसरी छुट्टी आने के दिन गिने जाते लगते थे। अगर मुझे एक दिन की भी देर हो जाती, तो तारा का पत्र आ पहुँचता। बचपन के उस सरल प्रेम में अब जवानी का उत्साह और उन्माद था। वे प्यारे दिन क्या भूल सकते हैं। वहीं मधुर स्मृतियाँ अब इस जीवन का सर्वस्व हैं। हम दोनों रात को सब की नजरें बचाकर मिलते और हवाई किले बनाते। इससे कोई यह न समझे कि हमारे मन में पाप था, कदापि नहीं। हमारे बीच में एक भी ऐसा शब्द, एक भी ऐसा संकेत न आने पाता, जो हम दूसरों के सामने न कर सकते , जो उचित सीमा के बाहर होते। यह केवल वह संकोच था, जो इस अवस्था में हुआ करता हैं। शादी हो जाने बाद भी तो कुछ दिनों तक स्त्री औऱ पुरुष बड़ो के सामने बातें करते लजाते हैं। हाँ, जो अंग्रेजी सभ्यता के उपासक हैं, उनकी बात मैं नहीं चलता। वे तो बड़ो के सामने आलिंगन और चुम्बन तक करते हैं। हमारी मुलाकतें दोस्तों की मुलाकतें होती थी- कभी ताश की बाजी होती, कभी साहित्य की चर्चा, कभी स्वदेश सेवा के मनसूबे बँधते, कभी संसार यात्रा के। क्या कहूँ, तारा

का हृदय कितना पवित्र था। अब मुझे ज्ञात हुआ कि स्त्री कैसे पुरुष पर नियन्त्रण कर सकती हैं, कुत्सित को कैसे पवित्र बना सकती हैं। एक दूसरे से बातें करने में, एक दूसरे के सामने बैठे रहने में हमें असीम आनन्द होता था। फिर, प्रेम की बातों की जरूरत वहाँ होती है, जहाँ अपने अखंड अनुराग, अपनी अतुल निष्ठा, अपने पूर्ण-आत्म-समर्पण का विश्वास दिलाना होता हैं। हमारा सम्बन्ध तो स्थिर हो चुका था। केवल रस्में बाकी थी। वह मुझे अपनी पति समझती थी, मैं उसे अपनी पत्नी समझता था। ठाकुरजी को भोग लगाने के पहले थाल के पदार्थो को कौन हाथ लगा सकता हैं? हम दोनों में कभी-कभी लड़ाई भी होती थी और कई-कई दिनों तक बातचीत की नौबत न आती; लेकिन ज्यादती कोई करें, मनाना उसी को पड़ता था। मैं जरा-सी बात पर तिनक जाता था। वह हँसमुख थी, बहुत ही सहनशील, लेकिन उसके साथ ही मानिनी भी परले सिरे की। मुझे खिलाकर भी खुद न खाती, मुझे हँसाकर भी खुद न हँसती।

इंटरमिडिएट पास होते ही मुझे फौज में एक जगह मिल गयी। उस विभाग के अफसरों में पिताजी का बड़ा मान था। मैं सार्जन्ट हो गया और सौभाग्य से लखनऊ में ही मेरी नियुक्ति हुई। मुँहमाँगी मुराद पूरी हूई।

मगर विधि-वाम कुछ और ही षड्यन्त्र रच रहा था। मैं तो इस ख्याल में मग्न था कि कुछ दिनों में तारा मेरी होगी। उधर एख दूसरा ही गुल खिल गया। शहर के एक नामी रईस ने चचा जी से मेरे विवाह की बात छेड़ दी और आठ हजार रुपये दहेज का वचन दिया । चचाजी के मुँह से लार टपक पड़ी। सोचा, यह आशातीत रकम मिलती हैं, इसे क्यों छोड़ूँ। विमल बाबू की कन्या का विवाह कहीं-न-कहीं हो ही जाएगा। उन्हें सोचकर जवाब देने का वादा करके विदा किया और विमल बाबू को बुलाकर कहा- आज चौधरी साहब कृष्णा की शादी की बातचीत करने आये थे। आप तो उन्हें जानते होंगे? अच्छे रईस हैं। आठ हजार दे रहे हैं। मैंने कह दिया, सोच कर जवाब दुँगा। आपकी क्या राय हैं? यह शादी मंजूर कर लूँ?

विमल बाबू ने चकित होकर कहा- यह आप क्या फरमाते हैं? कृष्णा की शादी तो तारा से ठीक हो चुकी हैं न?

चचा साहब ने अनजान बनकर कहा- यह तो मुझे आज मालूम हो रहा हैं। किसने ठीक की हैं यह शादी? आपसे तो मुझसें इस विषय में कोई भी बातचीत नहीं हुई।

विमल बाबू जरा गर्म होकर बोले- जो बात आज दस-बारह साल से सुनता हूँ, क्या उसकी तसदीक भी करनी चाहिए थी? मैं तो इसे तय समझे बैठा हूँ; मैं ही क्या, सारा मुहल्ला तय समझ रहा हैं।

चचा साहब में बदनामी के भय से जरा दबकर कहा- भाई साहब, हक तो यह हैं कि जब कभी इस सम्बन्ध की चर्चा करता था, दिल्लगी के तौर पर लेकिन खैर, मैं तो आपको निराश नही करना चाहता। आप मेरे पुराने मित्र हैं। मैं आपके साथ सब तरह की रिआयत करने को तैयार हूँ। मुझे आठ हजार मिल रहे हैं। आप मुझे सात ही हजार दीजिये- छः हजार ही दीजिए।

विमल बाबू ने उदासीन भाव से कहा- आप मुझसे मजाक कर रहे हैं या सचमुच दहेज माँग रहे हैं, मुझे यकीन नहीं आता।

चचा साहब ने माथा सिकोड़कर कहा- इसमें मजाक की तो कोई बात नहीं। मैं आपके सामने चौधरी से बात कर सकता हूँ।

विमल- बाबूजी, आपने तो यह नया प्रश्न छेड़ दिया। मुझे तो स्वप्न में भी गुमान न था कि हमारे और आपके बीच में यह प्रश्न खड़ा होगा। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ दिया। दस-पाँच हजार में आपका कुछ न बनेगा। हाँ, यह रकम मेरी सामर्थ्य से बाहर हैं। मैं तो आपसे दया ही की भिक्षा माँग सकता हूँ। आज दस-बारह साल से हम कृष्णा को अपना दामाद समझते आ रहे हैं। आपकी बातो से भी कई बार इसकी तसदीक हो चुकी हैं। कृष्णा और तारा में जो प्रेम हैं, वह आपसे

छिपा नहीं हैं। ईश्वर के लिए थोड़े-से रुपयों के वास्ते कई जनों का खून न कीजिए।

चचा साहब ने धृष्टता से कहा- विमल बाबू, मुझे खेद हैं कि मैं इस विषय में और नहीं दब सकता।

विमल बाबू जरा तेज होकर बोले- आप मेरा गला घोंट रहे हैं।

चचा- आपको मेरा एहसान मानना चाहिए कि कितनी रिआयत कर रहा हूँ।

विमल- क्यों न हो, आप मेरा गला घोंटें और मैं आपका एहसान मानूँ? मैं इतना उदार नहीं हूँ। अगर मुझे मालूम होता कि आप इतने लोभी हैं, तो आपसे दूर ही रहता। मैं आपको सज्जन समझता था। अब मालूम हुआ कि आप भी कौड़ियों को गुलाम हैं। जिसकी निगाह में मुरौवत नहीं, जिसकी बातों का विश्वास नहीं, उसे मैं शरीफ नहीं कह सकता। आपको अख्तियार हैं, कृष्णा बाबू की शादी जहाँ चाहें करें; लेकिन आपको हाथ न मलना पड़े, तो कहिएगा। तारा का विवाह तो कहीं-न-कहीं हो ही जायगा और ईश्वर ने चाहा तो किसी अच्छे ही घर में होगा। संसार में सज्जनों का अभाव नहीं हैं, मगर आपके हाथ अपयश के सिवा और कुछ न लगेगा।

चचा साहब ने त्यौरियाँ चढ़ाकर कहा- अगर आप मेरे घर में न होते, तो इस अपमान का कुछ जवाब देता!

विमल बाबू ने छड़ी उठा ली और कमरे बाहर जाते हुए कहा- आप मुझे क्या जवाब देंगे? आप जवाब देने के योग्य ही नहीं हैं।

उसी दिन शाम को जब मैं बैरक से आया और जलपान करके विमल बाबू के घर जाने लगा, तो चची ने कहा- कहाँ जाते हो? विमल बाबू से और तुम्हारे चचाजी से आज एक झड़प हो गयी।

मैने ठिठक कर ताज्जूब के साथ कहा- झड़प हो गयी! किस बात पर?

चची ने सारा-का-सारा वृत्तान्त कह सुनाया और विमल को जितने काले रंगों में रंग सकी, रंग - तुमसे क्या कहूँ बेटा, ऐसा मुँहफट तो आदमी ही नही देखा। हजारों ही गालियों दीं, लड़ने पर आमादा हो गया।

मैंने एक मिनट कर सन्नाटे में खड़े रहकर कहा- अच्छी बात हैं, वहाँ न जाऊँगा। बैरक जा रहा हूँ। चची बहुत रोयीं-चिल्लायी; पर मैं एक क्षण-भर भी न ठहरा। ऐसा जान पड़ता था, जैसे कोई मेरे हृदय मं भाले भोंक रहा हैं। घर से बैरक तक पैदल जाने में शायद मुझे दस मिनट से ज्यादा न लगे। बार-बार जी झुँझलता था; चचा साहब पर नहीं, विमल बाबू पर भी नही, केवल अपने ऊपर। क्यों मुझमें इतनी हिम्मत नहीं हैं कि जाकर चचा साहब से कह दूँ- कोई लाख रुपये भी दे, तो शादी न करूँगा। मैं क्यों इतना डरपोक, इतना तेजहीन, इतना दब्बू हो गया?

इसी क्रोध में मैने पिताजी को एक पत्र लिखा और वह सारा वृत्तांत सुनाने के बाद अन्त में लिखा- मैंने निश्चय कर लिया हैं कि और कहीं शादी न करूँगा, चाहे मुझे आपकी अवज्ञा ही क्यों न करनी पडे। उस आवेश में न जाने क्या-क्या लिख गया, अब याद भी नहीं। इतना याद हैं कि दस-बारह पन्ने दस मिनट में लिख डाले थे। सम्भव होता तो मैं यहीं सारी बाते तार से भेजता।

तीन दिन मैं बड़ी व्यग्रता के साथ काटे। उसका केवल अनुमान किया जा सकता हैं। सोचता, तारा हमें अपने मन में कितना नीच समझ रही होगी। कई बार जी में आया कि चलकर उसके पैरों पर गिर पड़ूँ औऱ कहूँ- देवी, मेरा अपराध क्षमा करो- चचा साहब के कठोर व्यवहार की परवा न करो। मैं तुम्हारा था और तुम्हारा हूँ। चचा साहब मुझसे बिगड़ जायँ, पिताजी घर से निकाल दें, मुझे किसी की परवा नहीं हैं; लेकिन तुम्हें खोकर मेरा जीवन ही खो जायेगा।

तीसरे दिन पत्र का जवाब आया। रही-सही आशा भी टूट गयी। वही जवाब था जिसका मुझे शंका थी। लिखा था- भाई साहब मेरे पूज्य हैं। उन्होंने जो निश्चय

किया हैं, उसके विरुद्ध मैं एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकता और तुम्हारे लिए भी यही उचित हैं कि उन्हें नाराज न करो।

मैने उस पत्र को फाड़कर पैरों से कुचल दिया और उसी वक़्त विमल बाबू के घर की तरफ चला। आह! उस वक़्त अगर कोई मेरा रास्ता रोक लेता, मुझे धमकता कि उधर मत जाओ, तो मै विमल बाबू के पास जाकर ही दम लेता और आज मेरा जीवन कुछ और ही होता; पर वहाँ मना करने वाला कौन बैठा था। कुछ दूर चल कर हिम्मत हार बैठा। लौट पड़ा। कह नहीं सकता, क्या सोचकर लौटा। चचा साहब की अप्रसन्नता का मुझे रत्ती-भर भी भय न था। उनकी अब मेरे दिल में कोई इज्जत न थी। मैं उनकी सारी सम्पत्ति को ठुकरा देने को तैयार था। पिताजी के नाराज हो जाने का भी डर न था। संकोच केवल यह था- कौन मुँह लेकर जाऊँ; आखिर मैं उन्हीं चचा का भतीजा हूँ। विमल बाबू मुझसे मुखातिब न हुए या जाते-ही-जाते दुत्कार दिया, तो मेरे लिए डूब मेरे लिए डूब मरने के सिवा और क्या रह जायगा? सबसे बड़ी शंका यह थी कि कहीं तारा ही मेरा तिरस्कार कर बैठे तो मेरी क्या गति होगी। हाय! अहृदय तारा! निष्ठुर तारा! अबोध तारा! अगर तूने उस वक़्त दो शब्द लिख कर मुझे तसल्ली दे दी होती, तो आज मेरा जीवन कितना सुखमय होता। तेरे मौन के मुझे मटियामेट कर दिया- सदा के लिए! आह, सदा के लिए।

3

तीन दिन बाद फिर मैंने अंगारों पर लोट-लोट कर काटे। ठान लिया था कि अब किसी से न मिलूँगा। सारा संसार मुझे अपना शत्रु-सा दिखता था। तारा पर भी क्रोध आता था। चचा साहब की तो सूरत से मझु घृणा हो गयी थी; मगर तीसरे दिन शाम को चचाजी का रुक्का पहुँचा, मुझसे आकर मिल जाओ। जी में तो आया, लिख दूँ, मेरा लिख दूँ, मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नही, आप समझ लीजिए, मैं मर गया। मगर फिर उनके स्नेह और उपकारों की याद आ गयी। खरी-खरी

सुनाने का भी अच्छा अवसर मिल रहा था। हृदय में युद्ध का नशा और जोश भरे हुए मैं चचाजी की सेवा में गया।

चचाजी नें मुझे सिर से पैर तक देख कर कहा- क्या आजकल तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं हैं? रायसाहब सीताराम तशरीफ लाये थे। तुमसे कुछ बातें करना चाहते थे। कल सबेरे मौका मिले, तो चले आना या तुम्हें लौटने की जल्दी न हो, तो मैं इसी वक़्त बुला भेजूँ।

मैं समझ गया कि यह रायसाहब कौन हैं; लेकिन अनजान बनकर बोला-यह रायसाहब कौन हैं? मेरा तो उनसे परिचय नहीं हैं।

चचाजी ने लापरवाही से कहा- अजी, यह वही महाशय हैं, जो तुम्हारे ब्याह के लिए घेरे हुए हैं। शहर के रईस और कुलीन आदमी हैं। लड़की भी बहुत अच्छी हैं। कम-से-कम तारा से कई गुनी अच्छी। मैने हाँ कर लिया हैं। तम्हें भी जो बाते पूछनी होस उनसे पूछ लो।

मैने आवेश के उमड़ते हुए तूफान को रोककर कहा- आपने नाहक हाँ की। मैं अपना विवाह नहीं करना चाहता।

चचाजी ने मेरी तरफ आँखें फाड़कर कहा- क्यों?

मैने उसी निर्भीकता से जवाब दिया- इसीलिए कि मैं इस विषय में स्वाधीन रहना चाहता हूँ।

चचाजी ने जरा नर्म होकर कहा- मैं अपनी बात दे चुका हूँ, क्या तुम्हें इसका कुछ ख्याल नहीं हैं?

मैने उद्दंडता से जवाब दिया- जो बात पैसों पर बिकती हैं, उसके लिए मैं अपनी जिन्दगी नहीं खराब कर सकता।

चचा साहब ने गम्भीर भाव से कहा- यह तुम्हारा आखिरी फैसला हैं?

'जी हाँ, आखिरी।'

'पछताना पड़ेगा।'

'आप इसकी चिन्ता न करें। आपको कष्ट देने न आऊँगा।'

'अच्छी बात हैं।'

यह कहकर वह उठे और अन्दर चले गये। मैं कमरे से निकला और बैरक की तरफ चला। सारी पृथ्वी चक्कर खा रहीं थी, आसमान नाच रहा था और मेरी देह हवा में उड़ी जाती थी। मालूम होता था, पैरौं के नीचे जमीन हैं ही नहीं।

बैरक में पहुँचकर मैं पलंग पर लेट गया और फूट-फूटकर रोने लगा। माँ-बाप, चाचा-चाची, धन-दौलत, सब कुछ होते होते हुए भी मैं अनाथ था। उफ! कितना निर्दय आघात था!

4

सबेरे हमारे रेजिमेंट को देहरादून जाने का हुक्म हुआ। मुझे आँखे-सी मिल गयी। अब लखनऊ काटे खाता था। उसके गली-कूचों तक से घृणा हो गयी थी। एक बार जी में आया, चलकर तारा से मिल लूँ; मगर फिर वही शंका हुई- कहीं वह मुखातिब न हुई तो? विमल बाबू इस दशा में भी मुझसे उतना ही स्नेह दिखायेंगे, जितना अब तक दिखाते आये हैं, इसका मैं निश्चय न कर सका। पहले मैं धनी परिवार का दीपक था, अब एक अनाथ युवक, जिसे मजूरी के सिवा और कोई अवलम्ब नहीं था।

देहरादून में अगर कुछ दिन मैं शान्ति से रहता, तो सम्भव था, मेरा आहत हृदय सँभल जाता और मैं विमल बाबू को मना लेता; लेकिन वहाँ पहुँचे एक सप्ताह भी

न हुआ था कि मुझे तारा का पत्र मिल गया। पते को देखकर मेरे हाथ काँपने लगे। समस्त देह में कंपन-सा होने लगा। शायद शेर को देखकर भी मैं इतना भयभीत न होता। हिम्मत ही न पड़ती थी कि उसे खोलूँ। वही लिखावट थी, वही मोतियों की लड़ी, जिसे देखकर मेरे लोचन तृप्त हो जाते थे, जिसे चूमता था और हृदय से लगाता था, वही काले अक्षर आज नागिनों से भी ज्यादा डरावने मालूम होते थे। अनुमान कर रहा था कि उसने क्या लिखा होगा; पर अनुमान की दूर तक दौड़ भी पत्र के विषय तक न पहुँच सकी। आखिर, एक बार कलेजा मजबूत करके मैने पत्र खोल डाला। देखते ही आँखों में अँधेरा छा गया। मालूम हुआ, किसी ने शीशा पिघला कर पिला दिया। तारा का विवाह तय हो गया था। शादी होने में कुल चौबीस घंटे बाकी थे। उसनें मुझसे अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगी और विनती की थी कि मुझे भूला देना। पत्र का अन्तिम वाक्य पढ़कर मेरा आँखों से आँसूओं की झड़ी लग गयी। लिखा था- यह अन्तिम प्यार लो। अब आज से मेरे और तुम्हारे बीच में केवल मैत्री का नाता हैं। मगर कुछ और समझूँ तो वह अपने पति के साथ अन्याय होगा, जिसे शायद तुम सबसे ज्यादा नापसंद करोगे। बस इससे अधिक और न लिखूँगी। बहुत अच्छा हुआ कि तुम यहाँ से चले गये। तुम यहाँ रहते, तो तुम्हें भी दुःख होता और मुझे भी। मगर प्यारे! अपनी इस अभागिनी तारा को भूल न जाना। तुमसे यही अन्तिम निवेदन हैं।

मैं पत्र को हाथ में लिये-लिये लेट गया। मालूम होता था, छाती फट जाएगी! भगवान, अब क्या करूँ? जब तक मैं लखनऊ पहुँचूँगा, बारात द्वार पर आ चुकी होगी, यह निश्चय था। लेकिन तारा के अन्तिम दर्शन करने की प्रबल इच्छा को मैं किसी तरह न रोक सकता था। वही अब जीवन की अंतिम लालसा थी।

मैंने जाकर कंमाडिग आफिसर से कहा- मुझे एक बड़े जरूरी काम से लखनऊ जाना हैं। तीन दिन की छुट्टी चाहता हूँ।

साहब ने कहा- अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।

'मेरा जाना जरूरी हैं।'

'तुम नहीं जा सकते।'

'मैं किसी तरह नहीं रूक सकता।'

'तुम किसी तरह नहीं जा सकते।'

मैने और अधिक आग्रह न किया। वहाँ से चला आया। रात की गाड़ी से लखनऊ जाने का निश्चय कर लिया। कोर्ट-मार्शल का अब मुझे जरा भी डर न था।

5

जब मैं लखनऊ पहुँचा, तो शाम हो गयी थी। कुछ देर तक मैं प्लेटफार्म से दूर खड़ा अँधेरा हो जाने का इन्तजार करना रहा। तब अपनी किस्मत के नाटक का सबसे भीषण कांड देखने चला। बारात द्वार पर आ गयी थी। गैस की रोशनी हो रही थी। बाराती लोग जमा थे। हमारे मकान की छत तारा की छत से मिली हुई थी। रास्ता मरदाने कमरे की बगल से था। चचा साहब शायद कहीं सैर करने गये हुए थे। नौकर-चाकर सब बारात की बहार देख रहे थे। मैं चुपके से जीने पर चढ़ा और छत पर जा पहुँचा। वहाँ इस वक़्त बिल्कुल सन्नाटा था। उसे देखकर मेरा दिल भर आया। हाय! यहीं वह स्थान हैं, जहाँ हमने प्रेम के आनन्द उठाये थे यहीं मैं तारा के साथ बैठकर जिन्दगी के मनसूबे बाँधता था! यही स्थान मेरी आशाओं का स्वर्ग और मेरे जीवन का तीर्थ था। इस जमीन का एक-एक अणु मेरे लिए मधुर-स्मृतियों से पवित्र था। पर हाय! मेरे हृदय की भाँति आज वह भी ऊजड़, सुनसान, अंधेरा था। मैं उसी जमीन से लिपटकर खूब रोया, यहाँ तक की हिचकियाँ बँध गयी। काश! इस वक़्त तारा वहाँ आ जाती, तो मैं उसके चरणों पर सिर रखकर हमेशा के लिए सो जाता। मुझे ऐसा भासित होता था कि तारा की पवित्र आत्मा मेरी दशा पर रो रही हैं। आज भी तारा यहाँ जरुर आयी होगी। शायद इसी जमीन पर लिपटकर वह भी रोयी होगी। उस भूमि से उसके सुगन्धित केशो की महक आ रही थी। मैने जेब से रूमाल निकाला और वहाँ की

धूल जमा करने लगा। एक क्षण में मैने सारी छत साफ कर डाली और अपनी अभिलाषाओं की इस राख को हाथ में लिये घंटो रोया। यही मेरे प्रेम का पुरस्कार हैं, यही मेरी उपासना का वरदान हैं, यहीं मेरे जीवन की विभूति हैं! हाय री दुर्दशा!

नीचे विवाह के संस्कार हो रहे थे। ठीक आधी रात के समय वधू मंडल के नीचे आयी, अब भाँवरे होगी। मैं छत के किनारे चला आया और यह मर्मान्तक दृश्य देखने लगा। बस, यही मालूम हो रहा था कि कोई हृदय के टुकड़े किये डालता हैं। आश्चर्य हैं, मेरी छाती क्यों न फट गयी, मेरी आँखें न निकल पड़ी। वह मंडप मेरे लिए एक चिता थी, जिसमें वह सब कुछ, जिस पर मेरे जीवन का आधार था; जला जा रहा था।

भाँवरें समाप्त हो गयीं तो मैं कोठे से उतरा। अब क्या बाकी था ? चिता की राख भी जलमग्न हो चुकी थी। दिल को थामे, वेदना से तपड़ता हुआ, जीने के द्वार पर आया; मगर द्वार बाहर से बन्द था। अब क्या हो? उल्टे पाँव लौटा। अब तारा के आँगन से होकर जाने के सिवा दूसरा रास्ता न था। मैने सोचा, इस जमघट में मुझे कौन पहचानता हैं, निकल जाऊँगा। लेकिन ज्यों ही आँगन में पहुँचा, तारा की माताजी की निगाह पड़ गयी। चौककर बोली- कौन, कृष्णा बाबू? तुम कब आये? आओ, मेरे कमरे में आओ। तुम्हारे चचा साहब के भय से हमने तुम्हें न्यौता नहीं भेजा। तारा प्रातःकाल विदा हो जायगी। आओ, उससे मिल लो। दिन-भर से तुम्हारी रट लगा रही हैं।

यह कहते हुए उन्होंने मेरा बाजू पकड़ लिया और मुझे खीचते हुए अपने कमरे में ले गयी। फिर पूछा- अपने घर से होते हुए आये हो न?

मैने कहा- मेरा घर यहाँ कहाँ हैं?

'क्यों, तुम्हारे चचा साहब नहीं हैं?'

'हाँ, चचा साहब का घर हैं, मेरा घर अब कहीं नहीं हैं। बनने की कभी आशा थी,

पर आप लोगों ने वह भी तोड़ दी।'

'हमारा इसमे क्या दोष था भैया? लड़की का ब्याह तो कहीं-न-कहीं करना था। तुम्हारे चचाजी ने तो हमें मँझधार में छोड़ दिया था। भगवान ही ने उबारा। क्या अभी स्टेशन से चले आ रहे हो? तब तो अभी कुछ खाया भी न होगा।'

'हाँ, थोड़ा-सा जहर लाकर दीजिए, यही मेरे लिए सबसे अच्छी दवा हैं।'

वृद्धा विस्मित होकर मुँह ताकने लगी। मुझे तारा से कितना प्रेम था, वह बेचारी क्या जानती थी?

मैंने उसी विरक्ति के साथ फिर कहा- जब आप लोगों ने मुझे मार डालने ही का निश्चय कर लिया, तो अब देर क्यों करती हैं? आप मेरे साथ यह दगा करेंगी यह मैं न समझता था। खैर, जो हुआ, अच्छा ही हुआ। चचा और बाप की आँखों से गिरकर मे शायद आपकी आँखों में भी न जँचता।

बुढ़िया ने मेरी तरफ शिकायत की नजरों से देखकर कहा- तुम हमको इतना स्वार्थी समझते हो, बेटा।

मैने जले हुए हृदय से कहा- अब तक तो न समझता था लेकिन परिस्थित ने ऐसा समझने को मजबूर किया। मेरे खून का प्यासा दुश्मन भी मेरे ऊपर इससे घातक वार न कर सकता । मेरा खून आप ही की गरदन पर होगा।

'तुम्हारे चचाजी ने ही तो इन्कार कर दिया?'

'आप लोगों ने मुझसे भी कुछ पूछा, मुझसे भी कुछ कहा, मुझे भी कुछ कहने का अवसर दिया? आपने तो ऐसी निगाहें फेरी जैसे आप दिल से यही चाहती थी। मगर अब आपसे शिकायत क्यों करूँ? तारा खुश रहे, मेरे लिए यही बहुत हैं।'

'तो बेटा, तुमने भी तो कुछ नहीं लिखा; अगर तुम एक पुरजा लिख देते तो हमें

तस्कीन हो जाती। हमें क्या मालूम था कि तुम तारा को इतना प्यार करते हो। हमसे जरूर भूल हुई; मगर उससे बड़ी भूल तुमसे हुई। अब मुझे मालूम हुआ कि तारा क्यो बराबर डाकिये को पूछती रहती थी। अभी कल वह दिन-भर डाकिये का राह देखती रही। जब तुम्हारा कोई खत नहीं आया, तब वह निराश हो गयी। बुला लूँ उसे? मिलना चाहते हो?'

मैने चारपाई से उठकर कहा- नहीं-नहीं, उसे मत बुलाइए। मैं अब उसे नहीं देख सकता। उसे देख कर मैं न जाने क्या कर बैठूँ।

यह कहता हुआ मैं चल पड़ा। तारा की माँ ने कई बार पुकारा पर मैने पीछे फिर कर भी न देखा।

यह हैं मुझ निराश की कहानी। इसे आज दस साल गुजर गये। इन दस सालों में मेरे ऊपर जो कुछ बीती, उसे मैं ही जानता हूँ। कई-कई दिन मुझे निराहार रहना पड़ा हैं। फौज से तो उसके तीसरे ही दिन निकाल दिया गया था। अब मारे-मारे फिरने के सिवा मुझे कोई काम नहीं। पहले तो काम मिलता ही नहीं और अगर मिल भी गया, तो मैं टिकता नहीं। जिन्दगी पहाड़ हो गयी हैं। किसी बात की रुचि नही रही। आदमी की सूरत से दूर भागता हूँ।

तारा प्रसन्न हैं। तीन-चार साल हुए, एक बार मैं उसके घर गया था। उसके स्वामी ने बहुत आग्रह करके बुलाया था। बहुत कसमें दिलायीं। मजबूर होकर गया। यह कली अब खिलकर फूल हो गयी हैं। तारा मेरे सामने आयी। उसका पति भी बैठा हुआ था। मैं उसकी तरफ ताक न सका। उसने मेरे पैर खींच लिये। मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। अगर तारा दुखी होती, कष्ट में होती, फटेहालों मे होती तो मैं उस पर बलि हो जाता; पर सम्पन्न, सरस, विकसित तारा मेरी संवेदना के योग्य न थी। मैं इस कुटिल विचार को न रोक सका- कितनी निष्ठुरता! कितनी बेवफाई!

शाम को मैं उदास बैठा वहाँ जाने पछता रहा था कि तारा का पति आकर मेरे

पास बैठ गया और मुस्कराकर बोला- बाबूजी, मुझे यह सुनकर खेद हुआ कि तारा से मेरे विवाह हो जाने का आपको बड़ा सदमा हुआ। तारा जैसी रमणी शायद देवताओं को भी स्वार्थी बना देती; लेकिन मैं आपसे सच कहता हूँ, अगर मैं जानता कि आपको उससे इतना प्रेम हैं, तो मैं हरगिज आपकी राह का काँटा न बनता। शोक यही हैं कि मुझे बहुत पीछे मालूम हुआ। तारा मुझसे आपकी प्रेम-कथा कह चुकी हैं।

मैने मुस्कराकर कहा- तब तो आपको मेरी सूरत से घृणा होगी।

उसने जोश से कहा- इसके प्रतिकूल मैं आपका आभारी हूँ । प्रेम का ऐसा पवित्र, ऐसा उज्जवल आदर्श आपने उसके सामने रखा। वह आपको अब भी उसी मुहब्बत से याद करती हैं। शायद कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि आपका जिक्र न करती हो। आपके प्रेम को वह अपनी जिन्दगी की सबसे प्यारी चीज समझती हैं। आप शायद समझते हों कि उन दिनों की याद करके उसे दुःख होता होगा। बिल्कुल नहीं, वही उसके जीवन की सबसे मधुर स्मृतियाँ हैं। वह कहती हैं, मैने अपने कृष्णा को तुममें पाया हैं। मेरे लिए इतनी ही काफी हैं।

***

उन्माद

मनहर ने अनुरक्त होकर कहा- वह सब तुम्हारी कुर्बानियों का फल हैं वागी। नहीं तो आज मैं किसी अँधेरी गली में, किसी अँधरे मकान के अन्दर जिन्दगी के दिन काटता होता। तुम्हारी सेवा और उपकार हमेशा याद रहेंगे, तुमने मेरा जीवन सुधार दिया- मुझे आदमी बना दिया।

बागेश्वरी ने सिर झुकाये हुए नम्रता से उत्तर दिया- यह तुम्हारी सज्जनता ही मानूँ, मैं बेचारी भला जिन्दगी क्या सुधारूँगी? हाँ तुम्हारे साथ मैं भी एक दिन आदमी बन जाऊँगी। तुमने परिश्रम किया, उसका पुरस्कार पाया। जो अपनी मदद आप करते हैं, उनकी मदद परमात्मा भी करते हैं, अगर मुझ-जैसी गँवारिन किसी और के पाले पड़ती, तो अब तक न-जाने क्या गत होती।

मनहर मानो इस बहस में अपना पक्ष-समर्थन करने के लिए कमर बाँधता हुआ बोला- तुम जैसी गँवारिन पर मैं एक लाख सजी हुई गुड़ियों और रंगीन तितलियों को न्योछावर कर सकता हूँ। तुमने मेहनत करने का वह अवसर और अवकाश दिया, जिनके बिना कोई सफल हो ही नहीं सकता। अगर तुमने अपनी अन्य विलास-प्रिय, रंगीन-मिजाज बहनों की तरह मुझे अपने तकाजों से दबा रखा होता, तो मुझे उन्नति करने का अवसर कहाँ मिलता? तुमने मुझे वह निश्चिन्तता प्रदान की, जो स्कूल के दिनों में भी न मिली थी। अपने और सहकारियों को देखता हूँ, जो मुझे उन पर दया आती हैं। किसी का खर्च पूरा नहीं पड़ता। आधा महीना भी नहीं जाने पाया और हाथ खाली हो जाता हैं। कोई दोस्तों से उधार माँगता हैं, कोई घर वालों के खत लिखता हैं। कोई गहनों की फिक्र में मरा जाता हैं, कोई कपड़ो की। कभी नौकर की टोह में हैरान, कभी वैद्य की टोह में परेशान! किसी को शान्ति नहीं। आये दिन स्त्री-पुरुष में जूते चलते हैं। अपना-जैसा भाग्यवान तो मुझे कोई दीख नहीं पड़ता। मुझे घर के सारे आनन्द प्राप्त हैं और जिम्मेदारी एक भी नहीं। तुमने ही मेरे हौसलों को उभारा, मुझे उत्तेजना दी। जब कभी मेरा उत्साह टूटने लगता था, तो तुम मुझे तसल्ली देती थी। मुझे मालूम

ही नही हुआ कि तुम घर का प्रबन्ध कैसे करती हो। तुमने मोटे-से-मोटा काम अपने हाथों से किया, जिसमें मुझे पुस्तकों के लिए रुपये की कमी न हो। तुम्हीं मेरी देवी हो और तुम्हारी बदौलत ही आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ हैं। मैं तुम्हारी इन सेवाओं की स्मृति को हृदय में सुरक्षित रखूँगी, वागी, और एक दिन वह आयेगा, जब तुम अपने त्याग और तप का आनन्द उठाओगी।

वागेश्वरी ने गदगद होकर कहा- तुम्हारे ये शब्द मेरे लिए सबसे बडे पुरस्कार हैं मानू! मैं और किसी पुरस्कार की भूखी नहीं। मैने जो कुछ तुम्हारी थोड़ी-बहुत सेवा की, उसका इतना यश मुझे मिलेगा; मुझे तो आशा भी न थी।

मनहरनाथ का हृदय इस समय उदार भावों से उमड़ा हुआ था। वह जों बहुत ही अल्पभाषी, कुछ रूखा आदमी था और शायद वागेश्वरी के मन मे उनकी शुष्कता पर दुःख भी हुआ हो; पर इस समय सफलता के नशे ने उसकी वाणी में पर-से लगा दिये थे। बोला- जिस समय मेरे विवाह की बातचीत हो रही थी, मैं बहुत शंकित था। समझ गया कि मुझे जो कुछ होना था, हो चुका । अब मुझे सारी उम्र देवीजी की नाजबरदारी में गुजरेगी। बड़े-बड़े अंगरेज विद्वानो की पुस्तकें पढ़ने से मुझे भी विवाह से घृणा हो गयी थी। मैं इसे उम्र कैद समझने लगा था, जो आत्मा और बुद्धि की उन्नति का द्वार बन्द कर देती हैं। मगर दो ही चार मास के बाद मुझे अपनी भूल मालूम हुई। मुझे मालूम हुआ कि सुभार्या स्वर्ग की सबसे विभूति हैं, जो मनुष्य को उज्जवल और पूर्ण बना देती हैं, जो आत्मोन्नति का मूल-मन्त्र हैं। मुझे मालूम हुआ कि विवाह का उद्देश्य भोग नहीं, आत्मा का विकास हैं।

वागेश्वरी यह नम्रता और सहन न कर सकी। वह किसी बात के बहाने से उठ कर चली गयी।

मनहर और वागेश्वरी का विवाह हुए तीन साल गुजरे थे। मनहर उस समय एक दफतर में क्लर्क था। सामान्य युवकों की भाँति उसे भी जासूसी उपन्यासों से बहुत प्रेम था। धीरे-धीरे उसे जासूसी का शौक हुआ। इस विषय में उसने बहुत-

सा साहित्य जमा किया और बड़े मनोयोग से उनका अध्ययन किया। इसके बाद उसने उस विषय पर स्वयं एक किताब लिखी। रचना में उसने ऐसी विलक्षण विवेचना-शक्ति का परिचय दिया, शैली भी इतनी रोचक थी, कि जनता ने उसे हाथों-हाथ लिया। इस विषय पर वह सर्वोत्तम ग्रंथ था।

देश में धूम मच गयी। यहाँ तक कि इटली और जर्मनी-जैसे देशों से उसके पास प्रशंसा-पत्र आये और इस विषय की पत्रिकाओं में अच्छी-अच्छी आलोचनाएँ निकलीं। अन्त में सरकार ने भी अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया- उसे इंगलैंड जाकर इस कला का अभ्यास करने के लिए वृत्ति प्रदान की। और यह सब कुछ वागेश्वरी की सत्प्रेरणा का शुभ-फल था।

मनहर की इच्छा थी कि वागेश्वरी भी साथ चले; पर वागेश्वरी उनके पाँव की बेड़ी न बनना चाहती थी। उसने घर रहकर सास-ससुर की सेवा करना ही उचित समझा।

मनहर के लिए इंगलैंड एक दूसरी ही दुनिया थी, जहाँ उन्नति के मुख्य साधनों में एक रूपवती पत्नी का होना भी था। अगर पत्नी रूपवती हैं, चपल हैं, चतुर हैं, अब वह उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता हैं। मनोयोग और तपस्या के बूते पर नहीं, पत्नी के प्रभाव और आकर्षण के तेज पर। उस संसार में रूप और लावण्य-व्रत के बंधनों से मुक्त, एक अबाध सम्पत्ति थी! जिसने किसी रमणी को प्राप्त कर लिया; उसकी मानो तकदीर खुल गयी। यदि कोई सुन्दरी तुम्हारी सहधर्मिणी नहीं हैं, तो तुम्हारा सारा उद्योग, सारी कार्यपटुता निष्फल हैं, कोई तुम्हारा पुरसाँहल न होगा; अतएव वहाँ लोग रूप को व्यापारिक दृष्टि से देखते थे।

साल ही भर के अंग्रेजी-समाज के संसर्ग ने मनहर की मनोवृत्तियों में क्रांति पैदा कर दी। उसके मिजाज में संसारिकता का इतना प्राधान्य हो गया कि कोमल भावों के लिए वहाँ स्थान ही न रहा। वागेश्वरी उसके विद्याभ्यास में सहायक होती थी; पर उसे अधिकार और पद की ऊँचाईयों पर न पहुँता सकती थी। उसके

त्याग और सेवा का महत्त्व भी अब मनहर की निगाहों में कम होता जा रहा था। वागेश्वरी अब उसे व्यर्थ-सी वस्तु मालूम होती थी, क्योंकि उसकी भौतिक दृष्टि में हर एक वस्तु का मूल्य उससे होने वाले लाभ पर ही अवलंबित था। अपना पूर्व-जीवन अब उसे हास्यपद जान पड़ता था। चंचल, हँसमुख, विनोदिनी अंग्रेज-युवतियों के सामने वागेश्वरी एक हलकी, तुच्छ-सी जान पड़ती थी- इस विद्युत-प्रकाश में वह दीपक अब मलिन पड़ गया था। यहाँ तक कि शनैःशनै उसका मलिन प्रकाश भी लुप्त हो गया।

मनहर ने अपने भविष्य का निश्चय कर लिया। यह भी एक रमणी की रूप नौका द्वारा ही अपने लक्ष्य पर पहुँचेगा। इसके सिवा और कोई उपाय न था।

2

रात के नौ बजे थे। मनहर लंदन के एक फैशनेबुल रेस्ट्राँ में बना-ठना बैठा था। उसका रंग-रूप और ठाट-बाट देखकर सहसा यह कोई नहीं कह सकता था कि अंग्रेज नहीं हैं। लंदन में भी उसके सौभाग्य ने उसका साथ दिया था। उसने चोरी के कई गहरे मुआमलों का पता लगा दिया था, इसलिए धन और यश दोंनो ही मिल रहा था। वह अब यहाँ के भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग बन गया था, जिसके आतिथ्य औऱ सौजन्य की सभी सराहना करते थे। उसका लबोलहजा भी अंग्रेजो से मिलता-जुलता था। उसके सामने मेज की दूसरी ओर एक रमणी बैठी हुई उसकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसके अंग-अंग से यौवन टपका पड़ता था। भारत के अदभूत वृत्तांत सुन-सुनकर उसकी आँखे खुशी से चमक रही थीं। मनहर चिड़िया के सामने दाने बिखेर रहा था।

मनहर - विचित्र देश हैं जेनी, अत्यन्त विचित्र। पाँच-पाँच साल के दूल्हे तुम्हें भारत के सिवा और कहीं देखने को न मिलेंगे। लाल रंग का कामदार कपड़े, सिर पर चमकता हुआ लम्बा टोप, चेहरे पर फूलों का झालरदार बुर्का, घोड़े पर सवार

चले जा रहे हैं। दो आदमी दोनो तरफ से छतरियाँ लगाये हुए हैं। हाथों में मेंहदी लगी हूई?

जेनी- मेंहदी क्यों लगाते हैं?

मनहर- जिसमें हाथ लाल हो जायँ। पैरों में भी रंग भरा जाता हैं। उँगलियों के नाखून लाल रंग दिये जाते हैं। वह दृश्य देखते ही बनता हैं।

जेनी- यह तो दिल में सनसनी पैदा करने वाला दृश्य होगा। दुलहिन भी इसी तरह सजायी जाती होगी?

मनहर- इससे कई गुना अधिक। सिर से पाँव तक सोने-चाँदी के जेवरों से लदी हुई। ऐसा कोई अंग नहीं जिसमें दो-दो, चार-चार गहने न हों।

जेनी- तुम्हारी शादी भी उसी तरह हुई होगी। तुम्हें तो बड़ा आनन्द आया होगा?

मनहर- हाँ, वही आनन्द आया था, जो तुम्हें मेरी-गो राउंडर पर चढ़ने में आता हैं। अच्छी-अच्छी चीजें खाने को मिलती हैं; अच्छे-अच्छे कपड़े मिलते हैं। खूब नाच-तमाशे देखता था और शहनाइयों का गाना सुनता था। मजा तो तब आता है, जब दुलहिन अपने घर से विदा होती हैं। सारे घर में कुहराम मच जाता हैं। दुलहिन हर एक से लिपट-लिपट कर रोती हैं; जैसे मातम कर रही हैं।

जेनी- दुलहिन रोती क्यों हैं?

मनहर- रोने का रिवाज चला आता हैं। हाँलाकि सभी जानते हैं कि वह हमेशा के लिए नहीं जा रहीं हैं, फिर भी सारा घर इस तरह फूट-फूटकर रोता हैं, मानो कालेपानी भेजी जा रही हैं।

जेनी- मैं तो इस तमाशे पर खूब हँसूँ।

मनहर- हँसने की बात ही हैं।

जेनी- तुम्हारी बीबी भी रोयी होगी?

मनहर- अजी, कुछ न पूछो, पछाड़े खा रही थी, मानो मैं उसका गला घोट दूँगा। मेरी पालकी से निकलकर भागी जाती थी; पर मैने जोर से पकड़ कर अपनी बगल में बैठा लिया। तब मुझे दाँत काटने लगी।

मिस जेनी ने जोर से कहकहा मारा औऱ हँसी के साथ लोट गयी। बोली- हॉरिबिल! हॉरिबिल! क्या अब भी दाँत काटती हैं?

मनहर- वह अब इस संसार में नही हैं, जेनी! मैं उससे खूब काम लेता था। मैं सोता था, तो वह मेरे बदन में चम्पी लगाती थी, मेरे सिर पर तेल डालती थी, पंखा झलती थी।

जेनी- मुझे तो विश्वास नही आता। बिल्कुल मूर्ख थी!

मनहर- कुछ न पूछो। दिन को किसी के सामने मुझसे बोलती भी न थी; मगर मैं उसका पीछा करता रहता था।

जेनी- ओ! नॉटी बॉय! तुम बड़े शरीर हो; थीं तो रूपवती?

मनहर- हाँ, उसका मुँह तुम्हारे तलवों जैसा था।?

जेनी- नॉनसेंस! तुम ऐसी औरत के पीछे कभी न दौड़ते।

मनहर- उस वक़्त मैं भी मूर्ख था, जेनी।

जेनी- ऐसी मूर्ख लड़की से तुमने विवाह क्यों किया?

मनहर- विवाह न करता तो माँ-बाप जहर खा लेते।

जेनी- वह तुम्हें प्यार कैसे करने लगी?

मनहर- और करती क्या? मेरे सिवा दूसरा थी ही कौन ? घर से बाहर न निकलने पाती थी, मगर प्यार हममें से किसी को न था। वह मेरी आत्मा और हृदय को सन्तुष्ट न कर सकती थी, जेनी! मुझे उन दिनों की याद आती हैं, तो ऐसा मालूम होता हैं कि कोई भयंकर स्वप्न था। उफ! अगर वह स्त्री आज जीवित होती, तो मैं किसी अँधेरे दफतर में बैठा कलम घिसता होता। इस देश में आकर मुझे ययार्थ ज्ञान हुआ कि संसार में स्त्री का क्या स्थान हैं, उसका क्या दायित्व हैं और जीवन उसके कारण कितना आनन्दप्रद हो जाता हैं। और जिस दिन तुम्हारे दर्शन हुए, वह तो मेरी जिन्दगी का सबसे मुबारक दिन था। याद हैं तुम्हें वह दिन? तुम्हारी वह सूरत मेरी आँखों में अब भी फिर रही हैं।

जेनी- अब मै चली जाऊँगी। तुम मेरी खुशामद करने लगे।

3

भारत के मजदूरदल सचिव थे लार्ड बारबर, और उनके प्राईवेट सेक्रेटरी थे मि. कावर्ड। लार्ड बारबर भारत के सच्चे मित्र समझे जाते थे। जब कंजरवेटिव और लिबरल दलों का अधिकार था, तो लार्ड बारबर भारत की बड़ी जोरो से बकालत करते थे। वह इन मन्त्रियों पर ऐसे-ऐसे कटाक्ष करते थे कि उन बेचारों को कोई जवाब न सूझता। एक बार वह हिन्दुस्तान आये थे और यहाँ की कॉग्रेस में शरीक भी हुए थे। उस समय उनकी उदार वक्तृताओ ने समस्त देश में आशा और उत्साह की एक लहर दौड़ा दी थी। कॉग्रेस के जलसे के बाद वह जिस शहर में गये, जनता ने उनके रास्ते में आँखें बिछायी, उनकी गाड़ियाँ खींची, उनपर फूल बरसाये। चारों ओर से यही आवाज आती थी- यह हैं भारत का उद्धार करने वाला। लोगो को विश्वास हो गया कि भारत के सौभाग्य से अगर कभी लार्ड बारबर को अधिकार प्राप्त हुआ, तो वह दिन भारत के इतिहास में मुबारक होगा।

लेकिन अधिकार पाते ही लार्ड बारबर में एक विचित्र परिवर्तन हो गया। उनके सारे सदभाव, उनकी उदारता, न्यायपरायणता, सहानुभूति ये सभी अधिकार के भँवर में पड़ गये। और अब लार्ड बारबर और उनके पूर्वाधिकार के व्यवहार में लेशमात्र भी अन्तर न था। वह भी वही कर रहे थे, जो उनके पहले के लोग कर चुके थे। वही दमन था, वही जातिगत अभिमान, वही कट्टरता , वही संकीर्णता। देवता के अधिकार के सिहासन पर पाँव रखते ही अपना देवत्व खो बैठा था। अपने दो साल के अधिकार-काम में उन्होंने सैकड़ो ही अफसर नियुक्त किये थे; पर उनमें एक भी हिन्दुस्तानी न था। भारतवासी निराश हो-होकर उन्हें 'डाइहार्ड', 'धन का उपासक' और 'साम्राज्यवाद का पुजारी' कहने लगे थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि जो कुछ करते थे मि. कावर्ड करते थे। हक यह था कि लार्ड बारबर की नीयत के इतने शेर थे, जितने दिल के कमजोर । हालाँकि परिणाम दोनो दशाओं में एक-सा था।

यह मि. कावर्ड एक ही महापुरुष थे। उनकी उम्र चालीस से अधिक गुजर चुकी थी; पर अभी तक विवाह न किया था। शायद उनका ख्याल था कि राजनीति के क्षेत्र में रहकर वैवाहिक जीवन का आनन्द नहीं उठा सकते । वास्तव में नवीनता के मधुप थे। उन्हें नित्य नये विनोद और आकर्षण, नित्य नये विलास और उल्लास की टोह रहती थी। दूसरों के लगाये हुए बाग की सैर करके चित्त को प्रसन्न कर लेना इससे कहीं सरल था कि अपना बाग आप लगायें और उसकी रक्षा और सजावट में अपना सिर खपायें। उनको व्यावहारिक और व्यापारिक दृष्टि में यह लटका उससें कही आसान था।

दोपहर का समय था। मि. कावर्ड नाश्ता करके सिंगार पी रहे थे कि मिस जेनी रोज के आने की खबर हुई। उन्होंने तुरन्त आईने के सामने खड़े होकर अपनी सूरत देखी, बिखरे हुए बालों को सँवारा, बहुमूल्य इत्र मला और मुख से स्वागत की सहास छवि दरशाते हुए कमरे से निकलकर मिस रोज से हाथ मिलाया।

जेनी ने कमरे में कदम रखते ही कहा- अब मैं समझ गयी कि क्यों कोई सुन्दरी तुम्हारी बात नहीं पूछती। आप अपने वादों को पूरा करना नहीं जानते।

मि. कावर्ड ने जेनी के लिए एक कुर्सी खीचते हुए कहा- मुझे बहुत खेद हैं मिस रोज, कि मैं कल अपना वादा पूरा न कर सका। प्राइवेट सेक्रेटरियों का जीवन कुत्तों के जीवन से भी हेय हैं। बार-बार चाहता था कि दफतर से उठूँ; पर एक-न-एक कॉल ऐसा आ जाता था कि फिर रुक जाना पड़ता था। मै तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

जेनी- मै तुम्हे तलाश करती रही। जब तुम न मिले, तो मेरा जी खट्टा हो गया। मैं और किसी के साथ नहीं नाची! अगर तुम्हें नही जाना था, तो मुझे निमन्त्रण पत्र क्यों दिलाया था।

कावर्ड ने जेनी को सिगार भेंट करते हुए कहा- तुम मुझे लज्जित कर रही हो, जैनी! मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती थी कि तुम्हारे साथ नाचता? एक पुराना बैचलर होने पर भी मैं उस आनन्द की कल्पना कर सकता हूँ। बस, समझ लो कि तड़प-तड़प कर रह जाता था।

जेनी ने कठोर मुस्कान के साथ कहा- तुम इसी योग्य हो कि बैचलर बने रहो। यही तुम्हारी सजा हैं।

कावर्ड ने अनुरक्त होकर उत्तर दिया- तुम बड़ी कठोर हो, जेनी! तुम्हीं क्या रमणियाँ सभी कठोर होती हैं। मैं कितनी परवशता दिखाऊँ, तुम्हें विश्वास न आयेगा। मुझे यह अरमान ही रह गया कि कोई सुन्दरी मेरे अनुराग और लगन का आदर करती।

जेनी- तुमसे अनुराग हो भी तो? रमणियाँ ऐसे बहानेबाजों को मुँह नहीं लगाती।

कावर्ड- फिर बहानेबाज कहा - मजबूर क्यों नहीं कहती?

जेनी- मैं किसी की मजबूरी को नहीं मानती। मेरे लिए यह हर्ष और गौरव की बात नहीं हो सकती, कि आपको जब अपने सरकारी, अर्ध-सरकारी और गैर-सरकारी कामों से अवकाश मिले, तो आप मेरा मन रखने के लिए एक क्षण के लिए अपने कोमल चरणों को कष्ट न दे। मैं दफ्तर और काम के हीले नहीं सुनना चाहती। इसी कारण तुम अब तक झींख रहे हो।

कावर्ड ने गम्भीर भाव से कहा- तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, जेनी! मेरे अविवाहित रहने का क्या कारण हैं, यह कल तक मुझे खुद न मालूम था। कल आप-ही-आप मालूम हो गया।

जेनी ने उसका परिहास करते हुए कहा- अच्छा! तो यह रहस्य आपके मालूम हो गया? तब तो आप सचमुच आत्मदर्शी हैं। जरा मैं भी सुनूँ, क्या कारण था?

कावर्ड ने उत्साह के साथ कहा- अब तक कोई सुन्दरी न मिली थी, जो मुझे उन्मत्त कर सकती।

जेनी ने कठोर परिहास के साथ कहा- मेरा ख्याल था कि दुनिया में ऐसी औरत पैदा ही नहीं हुई, जो तुम्हें उन्मत्त कर सकती। तुम उन्मत्त बनाना चाहते हो, उन्मत्त बनना नहीं चाहते।

कावड़- तुम बड़ा अत्याचार करती हो, जेनी।

जेनी- अपने उन्माद का प्रमाण देना चाहते हो

कावर्ड- हृदय से, जेनी! मै इस अवसर की ताक में बैठा हूँ।

उसी जिन शाम को जेनी ने मनहर से कहा- तुम्हारे सौभाग्य पर बधाई! तुम्हें वह जगह मिल गयी।

मनहर ने उछलकर बोला- सच! सेक्रेटरी से कोई बातचीत हुई थी?

जेनी- सेक्रेटरी से कुछ कहने की जरूरत ही न पड़ी। सब कुछ कावर्ड के हाथ में हैं। मैने उसी को चंग पर चढ़ाया। लगा मुझे इश्क जताने। पचास साल की तो उम्र है, चाँद के बाल झड़ गये, गालों में झुर्रियाँ पड़ गयी हैं , पर अभी तक आपको इश्क का खब्त हैं। आप अपने को एक ही रसिया समझते हैं। उसके बूढ़े चोचले बहुत बुरे मालूम होते थे; मगर तुम्हारे लिए सब कुछ सहना पड़ा । खैर मेहनत सफल हो गयी हैं। कल तुम्हें परवाना मिल जायगा। अब सफर की तैयारी करनी चाहिए।

मनहर ने गदगद् होकर कहा- तुमने मुझ पर बड़ा एहसान किया हैं, जेनी!

4

मनहर को गुप्तचर विभाग में ऊँचा पद मिला। देश के राष्ट्रीय पत्रों में उसकी तारीफों के पुल बाँधे, उसकी तसवीर छापी और राष्ट्र की ओर से उसे बधाई दी। वह पहला भारतीय था, जिसे वह ऊँचा पद प्रदान किया गया था। ब्रिटिश सरकार ने सिद्ध कर दिया था कि उसकी न्याय-बुद्धि जातीय अभिमान और द्वेष से उच्चतर हैं।

मनहर और जेनी का विवाह इंगलैंड में ही हो गया। हनीमून का महीना फ्रांस में गुजरा। वहाँ से दोनो हिन्दुस्तान आये। मनहर का दफ्तर बम्बई में था। यहीं दोनो एक होटल में रहने लगे। मनहर को गुप्त अभियोग की खोज के लिए अक्सर दौरे करने पड़ते थे। कभी काश्मीर, कभी मद्रास, कभी रंगून। जेनी इन यात्राओं में बराबर उसके साथ रहती। नित्य नये दृश्य थे, नये विनोद, नये उल्लास। उसकी नवीनता-प्रिय प्रकृति के लिए आनन्द का इससे अच्छा और क्या सामान हो सकता था?

मनहर का रहन-सहन तो अंग्रेजी था ही, घरवालों से भी सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। वागेश्वरी के पत्रो का उत्तर देना तो दूर रहा, उन्हें खोलकर पढ़ता भी न था।

भारत में उसे हमेशा यह शंका बनी रहती थी कि कहीं घरवालों को उसका पता न चल जाय। जेनी से वह अपनी यथार्थ स्थिति को छिपाये रखना चाहता था। उसने घरवालों को आने की सूचना तक न दी। यहाँ तक की वह हिन्दुस्तानियों से बहुत कम ही मिलता था। उसके मित्र अधिकांश पुलिस और फौज के अफसर थे। वहीं उसके मेहमान होते। वाकचतुर जेनी सम्मोहन कला में सिद्धहस्त थी। पुरुषों के प्रेम से खेलना उसकी सबसे अमोदमय क्रीड़ा थी। जलाती थी, रिझाती भी थी, और मनहर भी उसकी कपट-लीला का शिकार बनता रहता था। उसे हमेशा भूल-भुलैया में रखती, कभी इतना निकट कि छाती पर सवार , कभी इतना दूर कि योजन का अन्तर - कभी निष्ठुर और कभी कठोर, कभी प्रेम-विह्वल और व्यग्र। एक रहस्य था, जिसे वह कभी समझता था और कभी हैरान रह जाता था।

इस तरह दो वर्ष बीत गये और मनहर तथा जेनी कोण की दो भुजाओं की भाँति एक दूसरे से दूर होते गये। मनहर इस भावना को हृदय से न निकाल सकता था कि जेनी का मेरे प्रति एक विशेष कर्त्तव्य हैं। यह चाहे उसकी संकीर्णता हो या कुल-मर्यादा का असर कि वह जेनी को पाबन्द देखना चाहता था। उसकी स्वच्छन्द वृत्ति उसे लज्जास्पद मालूम होती थी। वह भूल जाता था कि जेनी से उसके सम्पर्क का आरम्भ ही स्वार्थ पर अवलम्बित था। शायद उसने समझा था कि समय के साथ जेनी को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो जायगा; हालाँकि उसे मालूम होना चाहिए था कि टेढी बुनियाद पर बना हुआ भवन जल्द या देर में अवश्य भूमिस्थ होकर रहेगा। और ऊँचाई के साथ इसकी शंका और भी बढती जाती थी। इसके विपरीत जेनी का व्यवहार बिल्कुल परिस्थिति के अनुकूल था। उसने मनहर को विनोदमय तथा विलासमय जीवन का एक साधन समझा था और उसी विचार पर वह अब तक स्थिर थी। इस व्यक्ति को वह मन में पति का स्थान न दे सकती थी, पाषाण-प्रतिमा को अपना देवता न बना सकती थी। पत्नी बनना उसके जीवन का स्वप्न न था, इसलिए वह मनहर के प्रति अपने किसी कर्त्तव्य को स्वीकार न करती थी। अगर मनहर अपनी गाढी कमाई उसके चरणों पर अर्पित करता था, तो उस पर कोई एहसान न करता था। मनहर

उसका बनाया हुआ पुतला, उसी का लगाया हुआ वृक्ष था। उसकी छाया और फल को भोग करना वह अपना अधिकार समझती थी।

5

मनोमालिन्य बढ़ता गया। आखिर मनहर ने उसके साथ दावतों और जलसों में जाना छोड़ दिया; पर जेनी पूर्ववत् सैर करने जाती , मित्रों से मिलती, दावतें करती और दावतों में शरीक होती। मनहर के साथ न जाने से लेशमात्र भी दुःख या निराशा न होती थी; बल्कि वह शायद उसकी उदासीनता पर और भी प्रसन्न होती। मनहर इस मानसिक व्यथा को शराब के नशे मे डूबोने का उद्योग करता। पीना तो उसने इंगलैंड में ही शुरू कर दिया था, पर अब उसकी मात्रा बहुत बढ़ गयी थी। वहाँ स्फूर्ति और आनन्द के लिए पीता था, यहाँ स्फूर्ति और आनन्द को मिटाने के लिए। वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता था। वह जानता था, शराब मुझे पिये जा रही हैं; पर उसके जीवन का यही एक अवलम्ब रह गया था।

गर्मियों के दिन थे। मनहर एक मुआमले की जाँच करने के लिए लखनऊ में डेरा डाले हुए था। मुआमला संगीन था। उसे सिर उठाने की फुरसत न मिलती थी। स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो चला था, मगर जेनी अपने सैर-सपाटें मे मग्न थी। आखिर एक दिन उसने कहा, मैं नैनीताल जा रही हूँ। यहाँ की गर्मी मुझसे सही नहीं जाती।

मनहर ने लाल-लाल आँखे निकाल कर कहा- नैनीताल में क्या काम हैं?

वह आज अपना अधिकार दिखाने पर तुल गया। जेनी भी उसके अधिकार की उपेक्षा पर तुली हुई थी। बोली- यहाँ कोई सोसाइटी नहीं। सारा लखनऊ पहाड़ो पर चला गया हैं।

मनहर ने जैसे म्यान से तलवार निकलकर कर कहा- जब तक मैं यहाँ हूँ, तुम्हें कहीं जाने का अधिकार नहीं हैं। तुम्हारी शादी मेरे साथ हुई हैं, सोसाइटी के साथ

नहीं। फिर तुम साफ देख रही हो कि मैं बीमार हूँ, तिस पर भी तुम अपनी विलास प्रवृत्ति को रोक नहीं सकती। मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी, जेनी! मैं तुमको शरीफ समझता था। मुझे स्वप्न में भी यह गुमान न था कि तुम मेरे साथ ऐसी बेवफाई करोगी।

जेनी ने अविचलित भाव से कहा- तो क्या तुम समझते थे, मैं भी तुम्हारी हिन्दुस्तानी स्त्री की तरह तुम्हारी लौड़ी बन कर रहूँगी और तुम्हारे सहलाऊँगी? मैं तुम्हे इतना नादान नहीं समझती। अगर तुम्हें हमारी अंग्रेजी सभ्यता का इतनी मोटी-सी बात मालूम नहीं, तो अब मालूम कर लो कि अंग्रेज स्त्री अपनी रुचि के सिवा और किसी की पाबन्द नहीं। तुमने मुझसे विवाह किया था कि मेरी सहायता से तुम्हें सम्मान और पद प्राप्त हो। सभी पुरुष ऐसा करते हैं और तुमने भी वही किया। मैं इसके लिए तुम्हें बुरा नहीं कहती लेकिन जब तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो गया, जिसके लिए तुमने मुझसे विवाह किया था, तो तुम मुझसे अधिक आशा क्यों रखते हो? तुम हिन्दुस्तानी हो, अंगरेज नहीं हो सकते। मैं अंगरेज हूँ और हिन्दुस्तानी नहीं हो सकती; इसलिए हम में से किसी को यह अधिकार नहीं हैं कि वह दूसरे को अपनी मर्जी का गुलाम बनाने की चेष्ठा करे।

मनहर हतबुद्धि-सा बैठा सुनता रहा। एक-एक शब्द विष की घूँट की भाँति उसके कंठ के नीचे उतर रहा था। कितना कठोर सत्य था। पद-लालसा के उस प्रचंड आवेग में, विलास तृष्णा के उस अदम्य प्रवाह में वह भूल गया था कि जीवन में कोई ऐसा तत्व भी हैं, जिसके सामने पद और विलास काँच के खिलौनों से अधिक मूल्य नहीं रखते । यह विस्मृत सत्य इस समय अपने दारुण-विलाप से उसकी मदमग्न चेतना को तड़पाने लगा।

शाम को जेनी नैनीताल चली गयी। मनहर ने उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखा।

तीन दिन तक मनहर घर से न निकला। जीवन के पाँच-छः वर्षों में उसने जितने रत्न संचित किये थे, जिसपर वह गर्व करता था; जिन्हें पाकर वह अपने को धन्य मानता था, अब परीक्षा की कसौटी पर आकर नकली पत्थर सिद्ध हो रहे थे। उसकी अपमानित, ग्लानित, पराजित आत्मा एकान्त-रोदन के सिवा और कोई त्राण न पाती थी। अपनी टूटी हुई झोपड़ी को छोड़कर वह जिस-जिस सुनहले कलशवाले भवन की ओर लपका था, वह मरीचिका-मात्र थी और अब उसे फिर उसी टूटी झोपड़ी की याद आयी, जहाँ शान्ति, प्रेम और आशीर्वाद की सुधा पी थी। यह सारा आडम्बर उसे काट खाने लगा। उस सरल शीतल स्नेह के सामने ये सारी विभूतियाँ तुच्छ-सी जँचने लगी। तीसरे दिन वह भीषण संकल्प करके उठा और दो पत्र लिखे। एक तो अपने पद से इस्तीफा था, दूसरा जेनी से अन्तिम विदा की सूचना। इस्तीफे में उसने लिखा- मेरा स्वास्थ्य नष्ट हो गया हैं और मै इस भार को नहीं सँभाल सकता। जेनी के पत्र में उसने लिखा- हम और तुम दोनों ने भूल की और हमें जल्द-से-जल्द उस भूल का सुधार लेना चाहिए। मैं तुम्हें सारे बन्धनों से मुक्त करता हूँ। तुम भी मुझे मुक्त कर दो। मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं हैं। अपराध न तुम्हारा हैं, न मेरा। समझ का फेर तुम्हें भी था और मुझे भी। मैंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया हैं औऱ अब तुम्हारा मुझ पर कोई एहसान नहीं रहा। मेरे पास जो कुछ हैं, वह तुम्हारा हैं, वह सब मैं छोड़े जा रहा हूँ। मैं तो निमित्त-मात्र था, स्वामिनी तुम थी। उस सभ्यता को दूर से ही सलाम हैं , जो विनोद और विलास के सामने किसी बन्धन को स्वीकार नहीं करती।

उसने खुद जाकर दोनो पत्रों की रजिस्ट्री करायी और उत्तर का इन्तजार किया बिना ही वहाँ से चलने को तैयार हो गया।

7

जेनी ने जब मनहर का पत्र पाकर पढ़ा, तो मुस्कायी। उसे मनहर की इच्छा पर शासन का ऐसा अभ्यास पड़ गया था कि इस पत्र से उसे जरा भी घबराहट न

हुई। उसे विश्वास था कि दो-चार दिन चिकनी-चुपड़ी बातें करके वह उसे फिर वशीभूत कर लेगी। अगर मनहर की इच्छा केवल धमकी देनी न होती, उसके दिल पर चोट लगी होती, तो वह अब तक यहाँ न होता। कब का यह स्थान छोड़ चुका होता। उसका यहाँ रहना ही बता रहा हैं कि वह केवल बन्दरघुड़की दे रहा हैं।

जेनी ने स्थिरचित होकर कपड़े बदले औऱ तब इस तरह मनहर के कमरे में आयी, मानो कोई अभिनय करने स्टेज पर आयी हो।

मनहर उसे देखते ही जोर से ठट्ठा मार कर हँसा। जेनी सहम कर पीछे हट गयी। इस हँसी कमें क्रोध या प्रतिकार न था। उसमें उन्माद भरा हुआ था। मनहर के सामने मेज पर बोतल और गिलास रखा हुआ था। एक दिन में उसने न-जाने कितनी शराब पी ली थी। उसकी आँखों में जैसे रक्त उबला पड़ता था।

जेनी ने समीप जाकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और बोली- क्या रात-भर पीते ही रहोगे? चलों आराम से लेटो, रात ज्यादा हो गयी हैं। घंटो से बैठी तुम्हारा इन्तजार कर रही हूँ। तुम इतने निष्ठुर ते कभी न थे।

मनहर खोया हुआ-सा बोला- तुम कब आ गयी वागी? देखो, मैं कब से तुम्हे पुकार रहा हूँ। चलो, आज सैर कर आयें। उसी नदी के किनारे तुम अपना वही प्यारा गीत सुनाना, जिसे सुनकर मैं पागल हो जाता हूँ। क्या कहती हो, मैं बेमुरौवत हूँ? यह तुम्हारा अन्याय है, वागी! मैं कसम खाकर कहता हूँ, ऐसा एक दिन भी नहीं गुजरा, जब तुम्हारी याद ने मुझे रुलाया हो।

जेनी ने उसका कन्धा हिलाकर कहा- तुम यह क्या ऊल-जुलूल बक रहे हो? वागी यहाँ कहाँ हैं?

मनहर ने उसकी ओर अपरिचित भाव से देखकर कुछ कहा, फिर जोर से हँसकर बोला- मैं यह न मानूँगा, वागी! तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। वहाँ मैं तुम्हारे लिए फूलों की एक माला बनाऊँगा...।

जेनी ने समझा, यह शराब बहुत पी गये हैं। बक-झक कर रहे हैं। इनसे इस वक़्त कुछ बाते करना व्यर्थ हैं। चुपके से कमरे से बाहर चली गयी। उसे जरा-सी शंका हुई थी। यहाँ उसका मूलोच्छेद हो गया। जिस आदमी का अपनी वाणी पर अधिकार नहीं, वह इच्छा पर क्या अधिकार रख सकता हैं?

उस घड़ी से मनहर घर वालों की रट-सी लग गयी। कभी वागेश्वरी को पुकारता, कभी अम्माँ को, कभी दादा को। उसका आत्मा अतीत मे विचरती रहती, उस अतीत में जब जेनी ने काली छाया की भाँति प्रवेश न किया था और वागेश्वरी अपने सरल व्रत से उसके जीवन में प्रकाश फैलाती रहती थी।

दूसरे दिन जेनी ने जाकर कहा- तुम इतनी शराब क्यो पीते हो? देखते नहीं, तुम्हारी क्या दशा हो रही हैं?

मनहर ने उसकी ओर आश्चर्य से देखकर कहा- तुम कौन हो?

जेनी- क्यों मुझे नहीं पहचानते हो ?इतनी जल्दी भूल गये?

मनहर- मैने तुम्हें कभी नही देखा! मैं तुम्हें नहीं पहचानता।

जेनी ने और अधिक बातचीत न थी। उसने मनहर के कमरे से शराब की बोतलें उठवा ली और नौकरों की ताकीद कर दी कि उसे एक घूँट भी शराब न दी जाय। उसे अब कुछ-कुछ सन्देह होने लगा था, क्योंकि मनहर की दशा उससे कहीं शंकाजनक थी, जितनी वह समझती थी। मनहर का जीवित और स्वस्थ रहना उसके आवश्यक था। इसी घोड़े पर बैठकर वह शिकार खेलती थी। घोड़े के बगैर शिकार का आनन्द कहाँ?

मगर एक सप्ताह हो जाने पर भी मनहर की मानसिक दशा में कोई अन्तर न हुआ। न मित्रों को पहचानता था, न नौकरों को। पिछले तीन बरसों का जीवन एक स्वप्न की भाँति मिट गया था।

सातवें दिन जेनी सिविल सर्जन को लेकर आयी, तो मनहर का कहीं पता न था।

8

पाँच साल के बाद वागेश्वरी का लुटा हुआ सुहाग फिर चेता। माँ-बाप पुत्र के वियोग में रो-रोकर अंधे हो चुके थे। वागेश्वरी निराशा में भी आस बाँधे बैठी हुई थी। उसका मायका सम्पन्न था। बार-बार बुलावे आते, बाप आया, भाई आया, पर धैर्य और व्रत की देवी घर से न टली।

जब मनहर भारत आया, तो वागेश्वरी ने सुना कि वह विलायत से एक मेम लाया हैं। फिर भी उसे आशा थी कि वह आयेगा; लेकिन उसकी आशा पूरी न हुई। फिर उसने सुना, वह ईसाई हो गया है आचार-विचार त्याग दिया हैं, तब उसने माथा ठोक लिया।

घर की अवस्था दिन-दिन बिगड़ने लगी। वर्षा बन्द हो गयी और सागर सूखने लगा। घर बिका, कुछ जमीन थी, वह बिकी, फिर गहनों की बारी आयी, यहाँ तक कि अब केवल आकाशी वृत्ति थी। कभी चूल्हा जल गया, कभी ठंड़ा पडा रहा।

एक दिन संध्या समय वह कुएँ पर पानी भरने गयी थी कि एक थका हुआ जीर्ण, विपत्ति का मारा जैसा आदमी आकर कुएँ की जगत पर बैठ गया। वागेश्वरी ने देखा, तो मनहर! उसने तुरन्त घूँघट बढ़ा लिया। आँखो पर विश्वास न हुआ, फिर भी आनन्द और विस्मय से हृदय में फुरेरियाँ उड़ने लगी। रस्सी और कलसा कुएँ पर छोड़कर लपकी हुई घर आयी और सास से बोली- अम्माँजी, जरा कुएँ पर जाकर देखों, कौन आया हैं। सास ने कहा- तू पानी लाने गयी थी, या तमाशा देखने? घर में एक बूँद पानी नही हैं। कौन आया है कुएँ पर?

'चलकर, देख लो न!'

'कोई सिपाही-प्यादा होगा। अब उसके सिवा और कौन आनेवाला हैं। कोई महाजन तो नही हैं?'

'नहीं अम्माँ, तुम चली क्यों नहीं चलती?'

बूढ़ी माता भाँति-भाँति की शंकाएँ करती हुई कुएँ पर पहुँची, तो मनहर दौड़कर उनके पैरों से लिपट गया। माता ने उसे छाती से लगाकर कहा- तुम्हारी यह दशा हैं मानू? क्या बीमार हैं? असबाब कहाँ हैं?

मनहर ने कहा- पहले कुछ खाने को दो, अम्माँ! बहुत भूखा हूँ। मैं बड़ी दूर से पैदल चला आ रहा हूँ।

गाँव में खबर फैल गयी कि मनहर आया हैं। लोग उसे देखने दौड़े। किस ठाट से आया हैं? बड़े ऊँचे पद पर हैं, हजारों रुपये पाता हैं। अब उसके ठाट का क्या पूछना! मेम भी साथ आयी हैं या नही?

मगर जब आकर देखा, तो आफत का मारा आदमी, फटेहाल, कपड़े तार-तार, बाल बढ़े हुए, जैसे जेल से आया हो।

प्रश्नों की बौछार होने लगी- हमने तो सुना था, तुम किसी ऊँचे पद पर हो।

मनहर ने जैसे किसी भूली बात को याद करने का विफल प्रयास करके कहा- मैं! मै तो किसी ओहदे पर नहीं!

'वाह! तुम विलायत से मेम नही लाये थे?'

मनहर ने चकित होकर कहा- विलायत। विलायत कौन गया था?

'अरे! भंग तो नही खा गये हो। तुम विलायत नही गये थे?'

मनहर मूढ़ों की भाँति हँसा- मैं विलायत करने क्या जाता?

'अजी, तुमको वजीफा नहीं मिला था? यहाँ से तुम विलायत गये थे। तुम्हारे पत्र बराबर आते थे। अब तुम कहते हो, विलायत गयी ही नही। होश में हो, या हम लोगों को उल्लू बना रहा हो?'

मनहर ने उन लोगों की ओर आँखे फाड़कर देखा और बोला- मैं तो कहीं नहीं गया था। आप लोग जाने क्या कह रहे हैं।

अब इसमे सन्देह की गुंजाइश न रही कि वह अपने होश-हवास में नहीं है। उसे विलायत जाने के पहले की सारी बाते याद थीं। गाँव और घर के हरेक आदमी को पहचानता था, सबसे नम्रता और प्रेम से बाते करता था; लेकिन जब इंगलैंड , अंगरेज-बीवी और ऊँचे पद का जिक्र आता तो भौचक्का होकर ताकने लगता। वागेश्वरी को अब उसके प्रेम मे अस्वाभाविक अनुराग दीखता था, जो बनावटी मालूम होता था। वह चाहती थी कि उसके व्यवहार और आचरण में पहले की-सी बेतकल्लुफी हो। वह प्रेम का स्वाँग नहीं, प्रेम चाहती थी। दस ही पाँच दिनों में उसे ज्ञान हो गया कि इस विशेष अनुराग का कारण बनावट या दिखावा नहीं, वरन् कोई मानसिक विकार हैं। मनहर ने माँ-बाप के इतना अदब पहले कभी न किया था। उसे अब मोटे-से-मोटा काम करने में संकोच न था। वह, जो बाजार से साग-भाजी लाने में अपना अनादर समझता था, अब कुएँ से पानी खींचता, लकड़ियाँ फाड़ता और घर में झाड़ू लगाता था और अपने ही घर में ही नहीं, सारे मुहल्ले में उसकी सेवा और नम्रता का चर्चा होती थी।

एक बार मुहल्ले में चोरी हुई। पुलिस ने बहुत दौड़-धूप की; पर चोरों का पता न चला। मनहर ने चोर का पता ही नही लगा दिया; बल्कि माल भी बरामद करा दिया। इससे आसपास के गाँवों और मुहल्लों में उसका यश फैल गया। कोई चोरी हो जाती थी तो लोग उसके पास दौड़े आते और अधिकांश उद्योग सफल भी होते थे। इस तरह उसकी जीविका की एक व्यवस्था हो गयी। वह अब

वागेश्वरी का गुलाम था। उसी की दिलजोई और सेवा में उसके दिन कटते थे। अगर उसमें विकार या बीमारी का कोई लक्षण था, तो इतना ही। यही सनक उसे सवार हो गयी थी।

वागेश्वरी को उसकी दशा पर दुःख होता था; पर उसकी यह बीमारी उस स्वास्थ्य से अधिक उसे प्रिय थी, जब वह उसकी बात भी न पूछता था।

9

छः महीनों को बाद एक दिन जेनी मनहर का पता लगाती हुई आ पहुँची। हाथ में जो कुछ था, वह सब उड़ा चुकने के बाद अब उसे किसी आश्रय की खोज थी। उसके चाहने वालों मे कोई ऐसा न था, जो उसकी आर्थिक सहायता करता। शायद अब जेनी को कुछ ग्लानि भी होती थी। वह अपने किये पर लज्जित थी।

द्वार पर हार्न की आवाज सुनकर मनहर बाहर निकला और इस प्रकार जेनी को देखने लगा, मानो उसे कभी देखा ही नही।

जेनी ने मोटर से उतर कर उससे हाथ मिलाया और अपनी बीती सुनाने लगी- तुम इस तरह मुझसे छिपकर क्यो चले आये? और फिर आकर एक पत्र भी नहीं लिखा। आखिर , मैने तुम्हारे साथ क्या बुराई की थी! फिर मुझमें कोई बुराई देखी थी, तो तुम्हें चाहिए था कि मुझे सावधान कर देते। छिपकर चले आने से क्या फायदा हुआ? ऐसी अच्छी जगह मिल गयी थी, वह भी हाथ से निकल गयी।

मनहर काठ के उल्लू की भाँति खड़ा रहा।

जेनी ने फिर कहा- तुम्हारे चले आने के बाद मेरे ऊपर जो संकट आये, वह सुनाऊँ, तो तुम घबरा जाओगे। मैं इसी चिन्ता और दुःख से बीमार हो गयी। तुम्हारे बगैर मेरी जीवन निरर्थक हो गया हैं। तुम्हारा चित्र देखकर मन को

ढाढस देती थी। तुम्हारे पत्रों को आदि से अन्त तक पढ़ना मेरे लिए सबसे मनोरंजक विषय था। तुम मेरे साथ चलो, मैंने एक डॉक्टर से बातचीत की हैं, वह मस्तिष्क के विकारों का डॉक्टर हैं। मुझ आशा है, उसके उपचार से तुम्हें लाभ होगा।

मनहर चुपचाप विरक्त-भाव से खड़ा रहा, मानो वह न कुछ देख रहा हैं, न सुन रहा हैं।

सहसा वागेश्वरी निकल आयी। जेनी को देखते ही वह ताड़ गयी कि यही मेरी यूरोपियन सौत हैं। वह उसे बड़े आदर-सत्कार के साथ भीतर ले गयी। मनहर भी उनके पीछे-पीछे चला गया।

जेनी ने टूटी खाट पर बैठते हुए कहा- इन्होंने मेरा जिक्र तो तुमसे किया ही होगी। मेरी इनसे लंदन में शादी हुई हैं।

वागेश्वरी बोली- यह तो मैं आपको देखते ही समझ गयी थी।

जेनी- इन्होने कभी मेरा जिक्र नहीं किया?

वागेश्वरी बोली- कभी नहीं। इन्हें तो कुछ याद नहीं। आपको को यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ होगा?

जेनी- महीनो के बाद तब इनके घर का पता चला। वहाँ से बिना कुछ कहे-सुने चल दिये

'आपको कुछ मालूम हैं, इन्हें क्या शिकायत हैं?'

'शराब बहुत पीने लगे थे। आपने किसी डॉक्टर को नहीं दिखाया?'

'हमने तो किसी को नहीं दिखाया'

जेनी ने तिरस्कार करके कहा- क्यों? क्या आप इन्हें हमेशा बीनार रखना चाहती हैं?

वागेश्वरी ने बेपरवाही से जवाब दिया- मेरे लिए तो इनका बीमार रहना इनके स्वस्थ रहने से कहीं अच्छा हैं। तब वह अपना आत्मा को भूल गये थे, अब उसे पा गये।

फिर उसने निर्दय कटाक्ष करके कहा- मेरे विचार से तो वह तब बीमार थे , अब स्वस्थ हैं।

जेनी ने चिढकर कहा- नॉनसेंस! इनकी किसी विशेषज्ञ से चिकित्सा करानी होगी। यह जासूसी में बड़े कुशल हैं। इनके सभी अफसर इनसे प्रसन्न हैं। यह चाहें तो अब भी इन्हें वह जगह मिल सकती हैं। अपने विभाग में ऊँचे-से-ऊँचे पद तक पहुँच सकते हैं। मुझे विश्वास हैं कि इनका रोग असाध्य नहीं हैं; हाँ, विचित्र अवश्य हैं। आप क्या इनकी बहन हैं?

वागेश्वरी ने मुसकरा कर कहा- आफ तो गाली दे रही हैं। यह मेरे स्वामी हैं।

जेनी पर जैसे मानो व्रजपात-सा हुआ। उसके मुख पर से नम्रता गया और मन में छिपा हुआ क्रोध जैसे दाँत पीसने लगा। उसकी गरदन की नसें तन गयी, दोनो मुट्ठियाँ बँध गयी। उन्मत्त होकर बोली- बड़ा दगाबाज आदमी हैं। इसने मुझे बड़ा धोखा दिया। मुझसे इसने कहा था, मेरी स्त्री मर गयी हैं। कितना बड़ी घूर्त हैं। यह पागल नही हैं। इसने पागलपन का स्वाँग भरा हैं। मैं अदालत से इसकी सजा कराऊँगी।

क्रोधावेश के कारण वह काँप उठी। फिर रोती हुई बोली- इस दगाबाजी का मैं इसे मजा चखाऊँगी। आह! इसने मेरा घोर अपमान किया हैं ! ऐसा विश्वासघात करनेवाले को जो दंड दिया जाय, वह थोडा हैं! इसने कैसी मीठी-मीठी बाते करके मुझे फाँसा। मैंने ही इसे जगह दिलायी, मेरे ही प्रयत्नों से यह बड़ा आदमी बना।

इसके लिए मैने अपना घर छोड़ा, अपना देश छो़ड़ा औऱ इसने मेरे साथ कपट किया।

जेनी सिर पर हाथ रखकर बैठ गयी। फिर तैश में उठी और मनहर के पास जाकर उसको अपनी ओर खीचती हुई बोली- मैं तुम्हे खराब करके छोड़ूँगी। तूने मुझे समझा क्या हैं...

मनहर इस तरह शान्त भाव से खड़ा रहा, मानो कोई प्रयोजन नही हैं।

फिर वह सिहनी की भाँति मनहर पर टूट पड़ी और उसे जमीन पर गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। वागेश्वरी ने उसका हाथ पकड़कर अलग कर दिया और बोली- तुम ऐसी डायन न होती, तो उनकी यह दशा क्यों होती?

जेनी ने तैश में आकर जेब से पिस्तौल निकाली और वागेश्वरी की तरफ बढ़ी। सहसा मनहर तडपकर उठा, उसके हाथ से भरा हुआ पिस्तौल छीनकर फेक दिया और वागेश्वरी के सामने खड़ा हो गया। फिर ऐसा मुँह बना लिया, मानो कुछ हुआ ही नही।

उसी वक़्त मनहर की माता दोपहरी की नींद सोकर उठीं और जेनी को देखकर वागेश्वरी की ओर प्रश्न की आँखों से ताका।

वागेश्वरी ने उपहास के भाव से कहा- यह आपकी बहु हैं।

बुढिया तिनककर बोली- कैसी मेरी बहू? यह मेरी बहू बनने जोग है बँदरिया? लड़के पर न जाने क्या कर-करा दिया, अब छाती पर मूँग दलने आयी हैं?

जेनी एक क्षण तक खून-भरी आँखों से मनहर की ओर देखती रही । फिर बिजली की भाँति कौधकर उसने आँगन में पड़ा हुआ पिस्तौल उठा लिया और वागेश्वरी पर छोड़ना चाहती थी कि मनहर सामने आ गया। उसके हाथ से पिस्तौल छील लिया और अपनी छाती में गोली मार ली।

***

न्याय

हजरत मुहम्मद को इलहाम हुए थोड़े ही दिन हुए थे। दस-पाँच पड़ोसियों तथा निकट सम्बन्धियों के सिवा और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था, यह तक कि उनकी लड़की जैनब और दामाद अबुलआस भी जिनका विवाह इलहाम के पहले ही हो चुका था, अभी दीक्षित न हुए थे। जैनब कई बार अपने मैके गयी थी और अपने पूज्य पिता की ज्ञानमय वाणी सुन चुकी थी। वह दिल से इस्लाम पर ईमान ला चुकी थी; लेकिन अबुलआस धार्मिक मनोवृत्ति का आदमी न था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के के खजूर, मेवे आदि जिन्सें लेकर बन्दरगाहों को चालान किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन-देन का खरा, मेहनती आदमी था, जिसे इहलोक से इतनी फुरसत न थी कि परलोक की फिक्र करे।

जैनब के सामने कठिन समस्या थी। आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर। न धर्म को छोड़ सकती थी; न पति को। उसके घर के सभी आदमी मूर्तिपूजक थे। इस नये सम्प्रदाय से सारे नगर में हलचल मची हुई थी। जैनब सबसे अपनी लगन को छिपाती, यहाँ तक कि पति से भी न कह सकती थी। वे धार्मिक सहिष्णता के दिन न थ; बात-बात पर खून की नदी बह जाती थी, खानदान-के-खानदान मिट जाते थे। उन दिनों अरब की वीरता पारस्परिक कलहों में प्रकट होती थी। राजनैतिक संगठन का जमाना न था। खून का बदला खून, धन-हानि का बदला खून, अपमान का बदला खून- मानव-रक्त ही से सभी झगडों का निपटारा होता था। ऐसी अवस्था में अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार और मुहम्मद तथा इनके इने-गिने अनुयायियों में देवासुरों का संग्राम छेड़ना था। उधर प्रेम का बन्धन पैरो को जकड़े हुए था। नये धर्म में दीक्षित होना अपने प्राणप्रिय पति से सदा के लिए बिछुड जाना था। कुरैश-जाति के ऐसे लोग मिश्रित विवाहों को परिवार के लिए कलंक समझते थे।

माया और धर्म की दुविधा में पड़ी हुई जैनब कुढ़ती रहती थी।

2

धर्म का अनुराग एक दुर्बल वस्तु हैं; किन्तु जब उसका वेग होता है; तो हृदय के रोके नहीं रुकता। दोपहर का समय था, धूप इतनी तेज थी कि उसकी ओर ताकते आँखों से चिनगारियाँ निकलती थी। हजरत मुहम्मद चिन्ता में डूबे हुए बैठे हैं। निराशा चारों ओर अन्धकार के रूप में दिखायी देती थी। खुजैदा भी सिर झुकाये पास ही बैठी हुई एक फटा कुरता सी रही थी। धन-सम्पत्ति सब कुछ इस लगन की भेंट हो चुकी थी। शत्रुओं का दुराग्रह दिनोंदिन बढ़ता जाता था। उसके मतानुयायियों को भाँति-भाँति की यन्त्रणाएं दी जा रही थी। स्वयं हजरत का घर से निकलना मुश्किल था। यह खौफ होता था कि कहीं लोग उनपर ईट-पत्थर ने फेंकने लगें। खबर आती थी, आज फलाँ मुस्लिम का घर लुट गया, आज फलाँ को लोगों ने आहत किया। हजरत ये खबरे सुन कर विकल हो जाते थे और बार-बार खुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हजरत ने फरमाया- मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देंगे। मैं खुद सब कुछ झेल सकता हूँ, लेकिन अपने दोस्तों की तकलीफें नहीं देखी जाती।

खुजैदा- हमारे चले जाने से इन बेचारों की और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम-से-कम तुम्हारे पास आकर रो तो लेते हैं। मुसीबत में रोने का सहारा ही बहुत होता हैं।

हजरत- तो मैं अकेले थोडे ही जाना चाहता हूँ। मैं सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग यहाँ बिखरे हुए हैं; कोई किसी की मदद को नहीं पहुँच सकता। हम सब एक ही जगह एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे, तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने का साहस न होगा। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू को ढेर तो हो ही सकते हैं, जिसपर चढने का किसी को हिम्मत न

होगी।

सहजा जैनब घर में दाखिल हई। उसके साथ न कोई आदमी था, न आदमजात। मालूम होता था, कहीं से भागी चली आ रही हैं। खुजैदा ने उसे गले लगाकर पूछा- क्या हुआ जैनब, खैरियत तो हैं?

जैनब ने अपने अन्तर-संग्राम की कथा कह सुनायी और पिता से दीक्षा की याचना की।

हजरत मुहम्मद आँखों में आँसू भरकर बोले- बेटी, मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती; लेकिन जानता हूँ , तुम्हारा क्या हाल होगा।

जैनब- या हजरत! खुदा की राह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय कर लिया हैं। दुनिया के लिए अपना नजात को नहीं खोना चाहती।

हजरत- जैनब, खुदा की राहों में काँटे हैं।

जैनब- अब्बाजान, लगन को काँटों की परवा नहीं होती!

हजरत- ससुराल से नाता टूट जायेगा।

जैनब- खुदा से नाता जुड़ जायेगा?

हजरत- और अबुलआस?

जैनब की आँखों में आँसू डबडबा आये। क्षीण स्वर में बोली- अब्बाजान, उन्होंने इतने दिनों मुझे बाँध रखा था, नहीं तो मैं कब की आपकी शरण आ चुकी होती। मैं जानती हूँ उनसे जुदा होकर मैं जिन्दा न रहूँगी और शायद उनसे भी मेरा वियोग न सहा जाय; पर मुझे विश्वास हैं कि वह किसी-न-किसी दिन खुदा पर ईमान लायेंगे और फिर मुझे उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हजरत- बेटी, अबुलआस ईमानदार हैं, दयाशील हैं, सदवक्ता हैं, किन्तु अहंकार शायद अन्त तक उसे ईश्वर से विमुख रखे। वह तकदीर को नहीं मानता। रूह को नही मानता, स्वर्ग और नरक को नहीं मानता। कहता हैं, खुदा की जरूरत ही क्या हैं? हम उससे क्यों डरें? विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिए काफी हैं। ऐसा आदमी खुदा पर ईमान नहीं ला सकता। कुफ्र को तोड़ना आसान हैं; लेकिन वह जब दर्शन की सूरत पकड़ लेता हैं, तो उस पर किसी का जोर नहीं चलता।

जैनब ने दृढ होकर कहा- या हजरत, आत्मा का उपकार जिसमें हो, मुझे वही चाहिए। मैं किसी इन्सान को अपने और खुदा के बीच में न आने दूँगी।

हजरत ने कहा- खुदा तुझ पर दया करे बेटी! तेरी बातों ने दिल खुश कर दिया।

यह कहकर उन्होंने जैनब को गले लगा लिया।

3

दूसरे दिन जैनब को यथाविधि आम मस्जिद में कलमा पढ़ाया गया।

कुरेशियों ने जब यह खबर पायी, तो जल उठे। गजब खुदा का। इस्लाम ने तो बड़े-बड़े घरों पर भी हाथ साफ करना शुरू किया ! अगर यही हाल रहा, तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि हमारे लिए उसका सामना करना कठिन हो जायगा। अबुलआस के घर पर एक बड़ी मजलिस हुई।

अबूसिफियान ने जो इस्लाम के दुश्मनों में सबसे प्रतिष्ठित मनुष्य था, अबुलआस से कहा- तुम्हें अपनी बीवी को तलाक देना पड़ेगा।

अबुलआस ने कहा- हरगिज नहीं।

अबूसिफियन- तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे।

अ.आ. - हरगिज नहीं।

अ.सि. - तो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पड़ेगा।

अ.आ. - हरगिज नही। आप लोग मुझे आज्ञा दीजिये कि उसे अपने घर लाऊँ।

अ.सि. - हरगिज नहीं।

अ.आ. - क्या यह नहीं हो सकता कि वह मेरे घर में रहकर अपने इच्छानुसार खुदा की बन्दगी करे?

अ.सि. - हरगिज नहीं।

अ.आ. - मेरी कौम मेरे साथ इतनी सहानुभूति भी न करेगी? तो फिर आप लोग मुझे समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंजूर हैं। आप लोग और जो सजा चाहें दे, वह सब मंजूर हैं। मगर मैं अपनी बीवी को नहीं छोड़ सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नही करना चाहता और वह भी अपनी बीवी की।

अ.सि. - कुरैश में क्या और लड़कियाँ नहीं हैं?

अ.आ. - जैनब की-सी कोई नहीं।

अ.सि. - हम ऐसी लड़कियाँ बता सकते हैं, जो चाँद को लज्जित कर दें।

अ.आ. - मैं सौन्दर्य का उपासक नहीं।

अ.सि. - ऐसी लड़कियाँ दे सकता हूँ, जो गृह-प्रबन्ध में निपुण हों, बातें ऐसी करें कि मुँह से फूल झंडे, खाना ऐसा पकायें कि बीमार को भी रुचिकर हो, सीने-पिरोने में इतनी कुशल कि पुराने कपड़े को नया कर दें।

अ.आ. -मै इन गुणों में से किसी गुण का भी उपासक नहीं। मैं प्रेम और केवल प्रेम का उपासक हूँ। और मुझे विश्वास हैं कि जैनब का-सा प्रेम मुझे सारी दुनिया में कहीं नही मिल सकता।

अ.सि. - प्रेम होता, तो तुम्हें छोड़कर यह बेवफाई करती?

अ.आ. - मैं नहीं चाहता कि मेरे लिए वह अपने आत्म-स्वातंत्र्य त्याग करे।

अ.सि. - इसका आशय यह हैं कि तुम समाज में समाज के विरोधी बनकर रहना चाहते हो। आँखो की कसम! समाज तुम्हें अपने ऊपर यह अत्याचार न करने देना! मै कहे देता हूँ इसके लिए तुम रोओगे।

4

अबूसिफियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गये, इधर अबुलआस ने लकड़ी सँभाली और हजरत मुहम्मद के घर जा पहुँचे। शाम हो गयी थी। हजरत दरवाजे पर अपनी मुरीदों के साथ मगरिब की नमाज पढ़ रहे थे। अबुलआस ने उन्हें सलाम किया और जब तक नमाज होती रही, गौर से देखते रहे। जमाअत का एक साथ उठना-बैठना और झुकना देखकर उनके मन में श्रद्धा की तरंगें उठने लगी। उन्हें मालूम न होता था कि मैं क्या कर रहा हूँ; पर अज्ञात भाव से वह जमाअत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिए अबुलआस भी उसी अन्तर-प्रवाह में बह गये।

जब नमाज खतम हुई और लोग सिधारे, अबुलआस में हजरत के पास जाकर सलाम किया और कहा- मैं जैनब को विदा कराने आया हूँ।

हजरत ने विस्मित होकर पूछा- तुम्हें मालूम नहीं कि वह खुदा और उसके रसूल

पर ईमान ला चुकी हैं?

अ.आ. - जी हाँ, मालूम हैं।

हजरत- इस्लाम ऐसे सम्बन्धों का निषेध करता हैं, यह भी तुम्हें मालूम हैं?

अ.आ. - क्या इसका मतलब यह हैं कि जैनब ने मुझे तलाक दे दिया?

हजरत- अगर यही मतलब हो तो!

अ.आ. - तो कुछ नही। जैनब का अपने खुदा और रसूल की बन्दगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिलकर घर चला जाऊँगा और फिर आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा; लेकिन उस दशा में अगर कुरैशी-जाति आपसे लड़ने को तैयार हो जाय, तो उसका इलजाम मुझ पर न होगा।

हजरत- कुरैश से इस वक़्त नहीं लडना चाहता।

अ.आ. - तो जैनब को मेरे साथ जाने दीजिए। उस हालत में कुरैश के क्रोध का भाजन मैं होऊँगा। आप और आपके मुरीदों पर कोई आफत नहीं होगी।

हजरत- तुम दबाव में आकर जैनब को खुदा की तरफ से फेरने का यत्न तो न करोगे?

अ.आ. - मैं किसी के धर्म में बाधा डालना सर्वथा अमानुषीय समझता हूँ।

हजरत- तुम्हें लोग जैनब को तलाक देने पर तो मजबूर न करेंगे?

अ.आ. - मैं जैनब को तलाक देने के पहले जिन्दगी को तलाक दे दूँगा।

हजरत को अबुलआस की बातो से इतमीनान हो गया। वह आस की इज्जत करते थे। आस को हरम में जैनब से मिलने का मौका दिया।

आस ने पूछा- जैनब, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलने आया हूँ; धर्म के बदलने से कहीं मन तो नही बदल गया?

जैनब रोती हुई उनके पैरो पर गिर पड़ी और बोली- या मेरे आका! धर्म बार-बार मिलता हैं, ह्रदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ, चाहे जहाँ रहूँ, लेकिन समाज मुझे आपकी सेवा में रहने देगा?

आस- यदि समाज न रहने देगा, तो मै समाज से निकल जाऊँगा। दुनिया में आराम से जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत से स्थान हैं। रहा मैं, तुम जानती हो, मैं धार्मिक स्वाधीनता का पक्षपाती हूँ। मैं तुम्हारे धार्मिक विषयों में कभी हस्तक्षेप न करूँगा।

जैनब चली, जो खुदैजा ने रोते हुए उसे यमन के लालों का एक बहुमूल्य हार विदाई में दिया।

5

इस्लाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिनोंदिन बढ़ने लगे। अवहेलना की दशा से निकलकर उसने भय के क्षेत्र में प्रवेश किया । शत्रुओं ने उसे समूल नाश करने की आयोजना करनी शुरू की। दूर-दूर के कबीलों से मदद माँगी जाने लगी। इस्लाम में इतनी शक्ति न थी कि शस्त्र-बल से विरोधियों को दबा सके। हजरत मुहम्मद ने मक्का छोड़कर कहीं और चले जाने का निश्चिय किया। मक्के में मुस्लिमों के घर सारे शहर में बिखरे हुए थे। एक की मदद को दूसरे मुसलमान न पहुँच सकते थे! हजरत किसी ऐसा जगह आबाद होना चाहते थे, जहाँ सब मिले हुए रहें और शत्रुओं को संगठित शक्ति का प्रतिकार कर सकें। भक्तजन उनके साथ हुए और एक दिन मुस्लिमों ने मक्के से मदीने को प्रस्थान किया। यही हिजरत थी।

मदीने पहुँचकर मुसलमानों में एक नयी शक्ति , नयी स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निश्शंक होकर अपने धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की जरूरत न थी।

आत्मविश्वास बढा। इधर भी विधर्मियों का स्वागत करने की तैयारियाँ होने लगीं। दोनो पक्ष सेना इकट्ठी करने लगे। विधर्मियों ने संकल्प किया कि संसार से इस्लाम का नाम ही मिटा देंगे। इस्लाम ने भी उनके दाँत खट्टे करने का निश्चय किया।

एक दिन अबुलआस ने आकर पत्नी से कहा- जैनब, हमारे नेताओं ने इस्लाम पर जिहाद करने की घोषणा कर दी हैं।

जैनब ने घबरा कर कहा- अब तो वे लोग यहाँ से चले गये! फिर इस जिहाद की क्या जरूरत?

अबुलआस - मक्के चले गये, अरब से तो नहीं चले गये! उन लोगों की ज्यातियाँ बढ़ती जा रही हैं। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नहीं हैं! जिहाद मे मेरा शरीक होना जरूरी हैं।

जैनब- अगर तुम्हारा दिल तुम्हें मजबूर करता हैं, तो शौक से जाओ मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

आस- मेरे साथ?

जैनब- हाँ, वहाँ आहत मुसलमानो की सेवा-सुश्रुषा करूँगी।

आस- शौक से चलो।

घोर संग्राम हुआ। दोनो दलवालों ने खूब दिल के अरमान निकाले। भाई-भाई से, बाप बेटे से लड़ा। सिद्ध हो गया कि मजहब का बन्धन रक्त और वीर्य के बन्धन से सुदृढ हैं।

दोनो दलवाले वीर थे! अन्तर यह था कि मुसलमानों में नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी। दिलों में वह अटल विश्वास था, जो नवजात संप्रदायों का लक्षण हैं। विधर्मियों में 'बलिदान' का यह भाव लुप्त था।

कई दिनों तक लड़ाई होती रही। मुसलमानो की संख्या बहुत कम थी, पर अन्त मे उनके धर्मोत्साह मे मैदान मार लिया। विधर्मियों में कितने मारे गये, कितने ही घायल हुए और कितने ही कैद कर लिये गये। अबुलआस भी इन्हीं कैदियों में थे।

जैनब ने ज्योंही सुना कि अबुलआस पकड़ लिये गये, उसने तुरन्त हजरत मुहम्मद की सेवा में मुक्ति-धन भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो खुजैदा ने उसे दिया था। जैनब अपने पूज्य पिता को उस धर्म-संकट में एक क्षण के लिये भी न डालना चाहती थी, जो मुक्ति-धन के अभाव की दिशा में उनपर पड़ता , किन्तु अबुलआस को इच्छा होते हुए भी पक्षपात भय से न छोड़ सके।

सब कैदी हजरत के सामने पेश किये गये। कितने ही तो ईमान लाये, कितनों के घरों से मुक्ति-धन आ चुका था, वे मुक्त कर दिये गये। हजरत ने अबुलआस को देखा, सबसे अलग सिर झुकाये खड़े हैं। मुख पर लज्जा का भाव झलक रहा हैं।

हजरत ने कहा- अबुलआस, खुदा ने इस्माल की हिदायत की, वरना उसे यह विजय न प्राप्त होती।

अबुलआस- अगर आपके कथनानुसार संसार में एक खुदा हैं, तो वह अपने एक बन्दे को दूसरे का गला काटने में मदद नहीं दे सकता। मुसलमानों की विजय उनके रणोंत्साह से हुई।

एक सहाबी ने पूछा- तुम्हारा फिदिया (मुक्ति धन) कहाँ हैं?

हजरत ने फरमाया- अबुलआस का हार निहायत बेशकीमती हैं, इनके बारे में आप क्या फैसला करते हैं? आपको मालूम हैं, यह मेरे दामाद हैं?

अबूबकर- आज तुम्हारे घर में जैनब हैं, जिन पर ऐसे सैकड़ो हार कुर्बान किये जा सकते हैं।

अबुलआस- तो आपका मतलब यह है कि जैनब मेरी फिदिया हो?

जैद- बेशक हमारा मतलब हैं।

अबुलआस- उससे तो कहीं बेहतर था कि आप मुझे कत्ल कर देते।

अबूबकर- हम रसूल के दामाद का कत्ल नही करेंगे, चाहे वह विधर्मी ही क्यों न हो। तुम्हारी यहाँ उतनी ही खातिर होगी, जितनी हम कर सकते हैं।

अबुलआस के सामने विषम समस्या थी। इधर यहाँ की मेहमानी में अपमान था, उधर जैनब के वियोग की दारुण वेदना था। उन्होंने निश्चय किया कि यह वेदना सहुँगा, किन्तु अपमान न सहूँगा। प्रेम, आत्मा की गौरव पर बलिदान कर दूँगा। बोले- मुझे आपका फैसला मंजूर हैं। जैनब मेरी फिदिया होगी।

7

मदीने में रसूल की बेटी की जितनी इज्जत होनी चाहिए, उतनी होती थी। सुख था, ऐश्वर्य था, धर्म था; पर प्रेम न था। अबुलआस के वियोग में रोया करती थी।

तीन वर्ष तीन युगों की भाँति बीते। अबुलआस के दर्शन न हुए।

उधर अबुलआस पर उसकी बिरादरी का दबाव पड़ रहा था कि विवाह कर लो; पर जैनब की मधुर स्मृतियाँ ही उसके प्रणय वंचित हृदय को तसकीन देने मे काफी थी, वह उत्तरोत्तर उत्साह के साथ अपने व्यवसाय में तल्लीन हो गया। महीनों घर न आता। धनोपार्जन ही अब उसके जीवन का मुख्य आधार था! लोगों को आश्चर्य होता था कि अब यह धन के पीछे क्यों प्राण दे रहा हैं। निराशा और चिन्ता बहुधा शराब के नशे से शान्त होती हैं; प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोन्माद हो गया था। धन के आवरण में ढका हुआ यह प्रेम का नैराश्य था; माया के परदे में छिपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

एक बार वह मक्के से माल लादकर ईराक की तरफ चला। काफिले में और भी कितने ही सौदागर थे। रक्षकों का एक दल भी साथ था। मुसलमानों के कई काफिले विधर्मियों के हाथों लुट चुके थे। उन्हें ज्योहि इस काफिले की खबर मिली, जैद ने कुछ चुने हुए आदमियों के साथ उनपर धावा कर दिया। काफिले के रक्षक लड़े और मारे गये। काफिले वाले भाग निकले। अतुल धन मुसलमानो के हाथ लगा। अबुलआस फिर कैद हो गये।

दूसरे दिन हजरत मुहम्मद के सामने अबुलआस की पेशी हुई। हजरत ने एक बार उसकी करुण-दृष्टि डाली और सिर झुका लिया। साहिबियों ने कहा- या हजरत, अबुलआस के बारे में आप क्या फैसला करते हैं?

मुहम्मद - इसके बारे में फैसला करना तुम्हारा काम हैं। यह मेरा दामाद हैं। सम्भव हैं कि मैं पक्षपात का दोषी हो जाऊँ!

यह कहकर वह मकान में चले गये। जैनब रोकर पैरो पर गिर पड़ी और बोली - अब्बाजान, आपने औरों को आजाद कर दिया। अबुलआस क्या उन सबसे गया बीता हैं?

हजरत- नहीं जैनब, न्याय के पद पर बैठने वाले आदमी को पक्षपात और द्वेष से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि यह नीति मैने ही बनायी हैं। तो भी अब उसका

स्वामी नहीं, दास हूँ। मुझे अबुलआस से प्रेम हैं। मैं न्याय को प्रेमकलंकित नहीं कर सकता।

सहाबी हजरत की इस नीति-भक्त पर मुग्ध हो गये। अबुलआस को सब माल-असबाब के साथ मुक्त कर दिया।

अबुलआस पर हजरत की न्याय-परायणता का गहरा असर पड़ा। मक्के आकर उन्होंने अपना हिसाब-किताब साफ किया, लोगो का माल लौटाया, कर्ज अदा किया और घर-बार त्याग तक हजरत मुहम्मद की सेवा में पहुँच गये। जैनब की मुराद पूरी हुई।

***

कुत्सा

अपने घर में आदमी बादशाह को भी गाली देता हैं। एक दिन मैं अपने दो-तीन मित्रों के साथ बैठा हुआ एक राष्ट्रीय संस्था के व्यक्तियों की आलोचना कर रहा था। हमारे विचार में राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं को स्वार्थ और लोभ से ऊपर रहना चाहिए। ऊँचा और पवित्र आदर्श सामने रख कर ही राष्ट्र की सच्ची सेवा की जा सकती हैं। कई व्यक्तियों के आचरण ने हमें क्षुब्ध कर दिया था और हम इस समय बैठे अपने दिल का गुबार निकाल रहे थे! सम्भव था, उस परिस्थिति में पड़कर हम और भी गिर जाते; लेकिन उस वक़्त तो हम विचारक के स्थान पर बैठे हुए थे और विचारक उदार बनने लगे, तो न्याय कौन करे? विचारक को यह भूल जाने में विलम्ब नहीं होता कि उसमें भी कमजोरियाँ हैं। उसमें और अभियुक्त में केवल इतनी ही अन्तर हैं कि या तो विचारक महाशय उस परिस्थिति में पड़े नहीं, या पड़कर भी अपनी चतुराई से बेदाग निकल गये।

पद्मादेवी ने कहा- महाशय 'क' काम तो बड़े उत्साह से करते हैं; लेकिन अगर हिसाब देखा जाय, तो उनके जिम्मे एक हजार से कम न निकलेगा।

उर्मिलादेवी ने कहा- खैर 'क' को तो क्षमा किया जा सकता हैं। उसके बाल-बच्चे हैं, आखिर उनका पालन-पोषण कैसे करे? जब वह चौबीसों घंटे सेवा-कार्य में लगा रहता हैं, तो उसे कुछ-न-कुछ तो मिलना ही चाहिए। उस योग्यता का आदमी 500) वेतन पर भी न मिलता। अगर इस साल-भर में उसने एक हजार खर्च कर डाला, तो बहुत नहीं हैं। महाशय 'ख' तो बिल्कुल निहंग हैं। 'जोरू न जाँता अल्लाह मियाँ से नाता' ; पर उनके जिम्मे भी एक हजार से कम न होंगे। किसी को क्या अधिकार हैं कि वह गरीबों का धन मोटर की सवारी और यार-दोस्तों की दावत में उड़ा दे?

श्यामादेवी उद्दंड होकर बोली- महाशय 'ग' को इसका जवाब देना पड़ेगा, भाई

साहब! यों बचकर नहीं निकल सकते। हम लोग भिक्षा माँग-माँग कर पैसे लाते हैं; इसीलिए कि यार-दोस्तों की दावतें हों. शराबे उडायी जायँ और मुजरे देखे जायँ? रोज सिनेमा की सैर होती हैं। गरीबों का धन यों उड़ाने के लिए नहीं हैं। यहाँ पाई-पाई का लेखा समझना पड़ेगी। मै भरी सभा में रगेंदूँगी। उन्हें जहाँ पाँच सौ वेतन मिलता हो, वहाँ चले जायँ। राष्ट्र के सेवक बहुतेरे निकल आवेंगे।

मैं भी एक बार इसी संस्था का मन्त्री रह चुका हूँ । मुझे गर्व हैं कि मेरे ऊपर कभी किसी ने इस तरह का आक्षेप नहीं किया; पर न-जाने क्यों लोग मेरे मन्त्रित्व से सन्तुष्ट नहीं थे। लोगो का ख्याल था कि मैं बहुत कम समय देता हूँ, और मेरे समय में संस्था ने कोई गौरव बढ़ानेवाला काम नहीं किया; इसलिए मैने रूठकर इस्तीफा दे दिया था। मै उसी पद से बेलौस रहकर भी निकाला गया। महाशय 'ग' हजारों हड़प करके भी उसी पद पर जमें हुए हैं। क्या यह मेंरे उनसे कुनह रखने की काफी वजह न थी? मैं चतुर खिलाड़ी की भाँति खुद को कुछ न कहना चाहता था, किन्तु परदे की आड़ से रस्सी खींचता रहता था।

मैने रद्दा जमाया- देवीजी, आप अन्याय कर रही हैं। महाशय 'ग' से ज्यादा दिलेर और ...

उर्मिला ने मेरी बात को काटकर कहा- मैं ऐसे आदमी की दिलेरी नहीं कहती जो छिपकर जनता के रुपये से शराब पियें। जिन शराब की दूकानों पर हम धरना देने जाते थे, उन्हीं दूकानों से उनके लिए शराब आती थी। इससे बढ़कर बेवफाई और क्या हो सकती हैं? ऐसे आदमी को देशद्रोही कहती हूँ।

मैने और खींची- लेकिन यह तो तुम भी मानती हो कि क्या महाशय 'ग' केवल अपने प्रभाव से हजारों रुपयें चन्दा वसूल कर लाते हैं। विलायती कपड़े को रोकने का उन्हें जिनता श्रेय दिया जाय, थोड़ा हैं।

उर्मिला देवी कब माननेवाली थी। बोली- उन्हें चन्दे इस संस्था के नाम पर मिलते हैं, व्यक्तिगत रूप से एक धेला भी लावें तो कहूँ। रहा विलायती कपड़ा। जनता

नामों को पूजती हैं औऱ महाशय की तारीफें हो रही हैं; पर सच पूछिए तो यह श्रेय हमें मिलना चाहिए। वह तो कभी किसी दूकान पर गये ही नही। आज सारे शहर में इस बात की चर्चा हो रही हैं। जहाँ चन्दा माँगने जाओ, वहीं लोग यही आक्षेप करने लगते हैं। किस-किसका मुँह बन्द कीजिएगा? आप बनते तो है जाति के सेवक; मगर आचरण ऐसा कि शोहदों का भी न होगा। देश का उद्धार ऐसे विलासियों के हाथों नहीं हो सकता। उसके लिए त्याग होना चाहिए।

2

यहीं आलोचनाएँ हो रही थी कि एक दूसरी देवी आयीं, भगवती! बेचारी चन्दा माँगने आयी थी। थकी-माँदी चली आ रही थी। यहाँ जो पंचायत देवी, तो रम गयी। उनके साथ उनकी बालिका भी थी। कोई दस साल उम्र होगी, इन कामों में बराबर माँ के साथ रहती थी। उसे जोर की भूख लगी हुई थी। घर की कुंजी भगवती देवी के पास थी। पतिदेव दफ्तर से आ गये होगे। घर का खुलना भी जरूरी था, इसलिए मैंन बालिका को उसके घर पहुँचाने की सेवा स्वीकार की

कुछ दूर चलकर बालिका न कहा- आपको मालूम हैं, महाशय 'ग' शराब पीते हैं?

मैं इस आक्षेप का समर्थन न कर सका। भोली-भाली बालिका के हृदय में कटुता, द्वेष और प्रपंच का विष बोना मेरी ईर्ष्यालु प्रकृति को भी रुचिकर न जान पड़ा। जहाँ कोमलता और सारल्य, विश्वास और माधुर्य का राज्य होना चाहिए, वहाँ कुत्सा और क्षुद्रता का मर्यादित होना कौन पसन्द करेगा? देवता के गले में काँटों की माला कौन पहनायेगा?

मैने पूछा- तुमसे किसने कहा कि महाशय 'ग' शराब पीते हैं?

'वाह पीते ही हैं, आप क्या जानें?'

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ?'

'सारे शहर के लोग कह रहे हैं!'

'शहर वाले झूठ बोल रहे हैं।'

बालिका ने मेरी ओर अविश्वास की आँखों से देखा, शायद वह समझी, मैं भी महाशय 'ग' के ही भाई-बन्दों में हूँ।

'आप कह सकते हैं, महाशय 'ग' शराब नहीं पीते?'

'हाँ, वह कभी शराब नहीं पीते।'

'और महाशय 'क' ने जनता के रुपये भी नहीं उड़ाये?'

'यह भी असत्य हैं।'

'और महाशय 'ख' मोटर पर हवा खाने नही जाते?'

'मोटर पर हवा खाना अपराध नहीं हैं।'

'अपराध नहीं हैं, राजाओं के लिए, रईसों के लिए, अफसरों के लिए, जो जनता का खून चूसते हैं, देश-भक्ति का दम भरनेवालों के लिए यह बहुत बड़ा अपराध हैं।'

'लेकिन यह तो सोचो, इन लोगों को कितना दौड़ना पड़ता हैं। पैदल कहाँ तक दौड़े?'

'पैरगाड़ी पर तो चल सकते हैं। यह कुछ बात नहीं हैं। ये लोग शान दिखाना चाहते हैं, जिससे लोग समझे कि यह भी बहुत बड़े आदमी हैं। हमारी संस्था गरीबों की संस्था हैं। यहाँ मोटर पर उसी वक़्त बैठना चाहिए, जब और किसी तरह काम ही न चल सके औऱ शराबियों के लिए तो यहाँ स्थान ही न होना

चाहिए। आप तो चन्दे माँगने जाते नहीं। हमें कितना लज्जित होना पड़ता हैं, आपको क्या मालूम।'

मैने गम्भीर होकर कहा- तुम्हें लोगों से कह देना चाहिए, यह सरासर गलत हैं। हम और तुम इस संस्था के शुभचिन्तक हैं। हमें अपने कार्यकर्त्ताओं का अपमान करना उचित नहीं हैं। मैं यह नही कहता कि क, ख, ग में बुराईयाँ नहीं हैं। संसार में ऐसा कौन हैं, जिसमें बुराईयाँ न हो, लेकिन बुराईयों के मुकाबले में उनमें गुण कितने हैं, यह तो देखो। हम सभी स्वार्थ पर जान देते हैं- मकान बनाते हैं, जायदाद खरीदते हैं। और कुछ नही, तो आराम से घर में सोते हैं। ये बेचारे चौबीसों घंटे देश-हित की फिक्र में डूबे रहते हैं। तीनों ही साल-साल भर की सजा काटकर, कई महीने हुए, लौटे हैं। तीनों ही के उद्योग से अस्पताल और पुस्तकायल खुले। इन्हीं वीरों ने आन्दोलन करके किसानों का लगान कम कराया। अगर इन्हें शराब पीना और धन कमाना होता, तो इस क्षेत्र में आते हीं क्यो?

बालिका ने विचारपूर्ण दृष्टि से मुझे देखा। फिर बोली- यह बतलाइए, महाशय 'ग' शराब पीते हैं या नहीं?

मैने निश्चयपूर्वक कहा- नहीं। जो यह कहता हैं, वह झूठ बोलता हैं।

भगवती देवी का मकान आ गया। बालिका चली गयी। मैं आज झूठ बोलकर जितना प्रसन्न था, उतना कभी सच बोलकर भी न हुआ था। मैने बालिका के निर्मल हृदय को कुत्सा के पंक में गिरने से बचा लिया था!

***

दो बैलों की कथा

जानवरों में गधा सबसे ज्यादा बुद्धिहीन समझा जाता हैं । हम जब किसी आदमी को पल्ले दरजे का बेवकूफ कहना चाहता हैं तो उसे गधा कहते हैं । गधा सचमुच बेवकूफ हैं, या उसके सीधेपन, उसकी मिरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी हैं, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता । गायें सींग मारती हैं, ब्याही हुई गाय तो अनायास ही सिंहनी का रूप धारण कर लेती हैं । कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर हैं, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ जाता हैं, किन्तु गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना । जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब, सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चहरे पर कभी असंतोष की छाया भी न दुखायी देरी । वैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो, पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा । उसके चहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायी रूप से छाया रहता हैं । सुख-दुःख, हानि-लाभ, किसी भी दशा में बदलते नहीं देखा । ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वे सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गये है, पर आदमी उसे बेवकूफ कहता हैं । सद् गुणों का इतना अनादर कहीं नहीं देखा । कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं हैं । देखिये न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही हैं। क्यों अमरीका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता ? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी तोड़कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते हैं फिर भी बदनाम हैं । कहा जाता हैं, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं । अगर वे ईट का जवाब पत्थर से देना सीश जाते तो शायद सभ्य कहलाते लगते । जापान की मिशाल सामने हैं । एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गण्य बना दिया ।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी हैं, जो उससे कम गधा हैं और वह हैं

बैल । जिस अर्थ में हम गधा का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में 'बछिया के ताउ' का भी प्रयोग करते हैं । कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे, मगर हमारा विचार ऐसा नहीं हैं । बैल कभी-कभी मारता भी हैं और कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आता हैं । और भी कई रीतिओं से अपना असंतोष प्रकट कर देता हैं, अतएव उसका स्थान गधे से नीचा हैं ।

झूरी काछी के दोनो बैलों के बैलों के नाम थे हीरा और मोती । दोनों पछाई जाति के थे -- देखने में सुन्दर, काम में चौकस, डील में ऊँचे । बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाईचारा हो गया । दोनो आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक दूसरे से मूक भाषा में विचार-विनिमय करते थे । एक-दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाते थे, हम नहीं कह सकते । अवश्य ही उनमे कोई ऐसी गुप्त शक्ति था, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करनेवाला मनुष्य वंचित हैं । दोनों एक दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते, कभी-कभी सींग भी मिला लिया करते थे -- विग्रह के नाते से नहीं, केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्ठता होते ही धौल-धप्पा होने लगता हैं । इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफसी, कुछ हल्की-सी रहती हैं, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता । जिस वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिये जाते और गरदन हिला-हिलाकर चलते, उस वक्त हर एक की यही चेष्ठा होती थी कि ज्यादा से ज्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे । दिनभर के बाद या संध्या को दोनों खुलते तो एक दुसरे को चाट-चूटकर अपनी थकान मिटा लिया करते । नाँद में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ ही उठते, साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते थे । एक मूँह हटा लेता, तो दूसरा भी हटा लेता ।

सं योग की बात, झूरी ने एक बार गोई को सुसराल भेज दिया । बैलों को क्या मालूम क्यों भेजे जा रहे हैं । समझे, मालिक ने हमे बेच दिया । अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने , पर झूरी के साले गया को घर तक ले जाने में दाँतों में पसीना आ गया । पीछे से हाँकता तो दोनों दायें-बायें भागते, पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनो पीछे को जोर लगाते । मारते तो

दोनों सींग नीचे करके हुँकारते । अगर ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते -- तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो ? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी । अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था और काम ले लेते । हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था । हमने कभी दाने-चारे की शिकाय नही की । तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया, फिर भी तुमने हमें उस जालिम के हाथ क्यों बेच दिया ?

संध्या समय दोनों बैल अपने नये स्थान पर पहुँचे । दिन-भर के भूखे थे, लेकिन जब नाँद में लगाये गये, तो एक ने भी उसने मुँह न डाला । दिल-भारी हो रहा था । जिसे उन्होंने अपना घर समझ रखा था, वह आज उनसे छूट गया था । यह नया घर, नया गाँव, नये आदमी, उन्हें बेगानों से लगते थे ।

दोनों ने अपनी मूक-भाषा में सलाह की, एक-दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गये । जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने जोर मारकर पगहे तुड़ा डाले औऱ घर की तगफ चले । पगहे मजबूत थे । अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा; पर इन दोनों में इस समय दूना शक्ति आ गयी थी । एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गयी ।

झूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं । दोनों की गरदनों में आधा-आधा गराँव लटक रहा हैं । घुटने तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह झलक रहा हैं ।

झूरी बैलों के देखकर स्नेह से गदगद् हो गया । दौड़कर उन्हे गले लगा लिया । प्रेमालिंगन और चुम्बन का नह दृश्य बड़ा मनोहर था ।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गये और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्वपूर्ण थी । बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशू-वीरों को अभिनन्दन पत्र देना चाहिए । कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़ , कोई चोकर , कोई भूसी ।

एक बालक ने कहा -- ऐसे बैल किसी के पास न होंगे । दूसरे ने समर्थन किया -- इतनी दूर से दोनों अकेले चले आये । तीसरा बोला -- बैल नही हैं वे, उस जनम के आदमी हैं । इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस नहीं हुआ ।

झूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा तो जल उठी । बोली -- कैसे नमकहराम बैल हैं कि एक दिन वहाँ काम न किया , भाग खड़े हुए ।

झूरी अपने बैलों पर यह आक्षेप न सुन सका -- नमकहराम क्यों हैं? चारा-दाना न दिया होगा, तो क्या करते ?

स्त्री रोब के साथ कहा -- बस, तुम्हीं ही तो बैलों को खिलाना जानते हो और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते है ।

झूरी ने चिढ़ाया -- चारा मिलता तो क्यों भागचे ?

स्त्री चिढ़ी -- भागे इसलिए कि वे लोग तुम जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों के सहलाते नहीं । खिलाते है तो रगड़कर जोतते भी हैं । ये ठहरे काम-चोर, भाग निकले, अब देखूँ ? कहाँ से खली और चोकर मिलता हैं । सूखे-भूसे के सिवा कुछ न दूँगी , खाये चाहे मरे ।

वही हुआ। मजूर को बड़ी ताकीद कर दी गयी कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाय ।

बैलों ने नाँद मे मुँह डाला, तो फीका-फीका । न कोई चिकनाहट, न कोई रस । क्या खायँ ? आशा भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे ।

झूरी ने मजूर सा कहा -- थोड़ी सी खली क्यों नहीं ड़ाल देता बे ? 'मालकिन मुझे मार डालेगी।' 'चुराकर डाल आ।' 'ना दादा, पीछे से तुम ही उन्हीं की-सी कहोगे ।'

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला । अबकी बार उसने दोनों को गाड़ी मे जोता ।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा ; पर हीरा ने सँभाल लिया । वह ज्यादा सहनशील था ।

संध्या-समय घर पुहँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों से बाँधा और कल की शरारत का मजा चखाया . फिर वही सूखा भूसा डाल दिया । अपने दोनों बैलों को खली, चूनी सब कुछ दी ।

दोनों बैलो का ऐसा अपमान कभी न हुआ था । झूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था । उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे । यहाँ मार पड़ी । आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा ।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता , पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की कसम खा ली थी । वह मारते मारते थक गया, पर दोनों ने पाँव न उठाया । एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक पर खूब डंडे जमाये, तो मोती का गुस्सा काबू के बाहर हो गया । हल लेकर भागा, हल रस्सी, जूआ सब टूट-टाट कर बराबर हो गया । गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होती, तो दोनो पकड़ाई में न आते ।

हीरा ने मूक-भाषा में कहा - भागना व्यर्थ हैं । मोती ने उत्तर दिया -- तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी ।

'अबकी बार बड़ी मार पड़ेगी ।'

'पड़ने दो, बैल का जन्म लिया हैं तो मार से कहाँ तक बचेंगे?'

'गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा हैं। दोनों के हाथ में लाठियाँ हैं ।'

मोती बोला -- कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा मैं भी । लाठी लेकर आ रहा हैं ।

हीरा ने समझाया -- नहीं भाई ! खड़े हो जाओ ।

'मुझे मारेगा तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगी ।'

'नहीं । हमारी जाति का यह धर्म नहीं हैं'

मोती दिल में ऐंठकर रह गया । गया आ पहुँचा और दोनो को पकड़कर ले गया । कुशल हुई कि उसने इस वक्त मारपीट न की, नहीं तो मोती भी पलट पड़ता । उसके तेवर देख कर गया और उसके सहायक समझ गये कि इस वक्त टाल जाना ही मसलहत हैं ।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया । दोनों चुपचाप खड़े रहे। धर के लोग भोजन करने लगे । उस वक्त छोटी-सी लड़की दो रोटियाँ लिये निकली और दोनों के मुँह में देकर चली गयी । उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शान्त होती, पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया । यहाँ भी किसी सज्जन का वास हैं । लड़की भैरो की थी । उसकी माँ मर चुकी थी । सौतेली माँ उसे मारती रहती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गयी थी ।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डंडे खाते, अड़ते । शाम को थान में बाँध दिये जाते और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती । प्रेम के इस प्रसाद की यह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते, मगर दोनों की आँखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था ।

एक दिन मोती ने मुक-भाषा में कहा -- अब तो नहीं सहा जाता, हीरा ।

'क्या करना चाहते हो ?'

'एकाध को सींगो पर उठाकर फेंक दूँगा ।'

'लेकिन जानते हो, वह प्यारी लड़की, जो हमे रोटियाँ हैं, उसी की लड़की हैं, जो घर का मालिक है । यह बेचारी अनाथ हो जायगी?'

'मालकिन को न फेंक दूँ । वही तो उस लड़की मारती हैं।'

'लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो ।'

'तुम तो किसी तरह निकलने नही देते हो । बताओ, तुड़ा कर भाग चले ।'

'हाँ, यह मैं स्वीकार करता, लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे ?'

'इसका एक उपाय हैं। पहले रस्सी को थोड़ा सा चबा दो । फिर एक झटके में जाती हैं। '

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गयी, दोनों रस्सियाँ चबाने लगे, पर रस्सी मुँह में न आती थी । बेचारे बार-बार जोर लगाकर रह जाते थे ।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली । दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे । दोनों की पूँछे खड़ी हों गयी । उसने उनके माथे सहलाये और बोली -- खोले देती हूँ । चुपके से भाग जाओ , नहीं तो यहाँ के लोग मार डालेंगे । आज ही घर में सलाह हो रही हैं कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जायँ ।

उसने गराँव खोल दिया, पर दोनों चुपचाप खड़े रहे । मोती ने अपनी भाषा में पूछा -- अब चलते क्यों नही। हीरा ने कहा -- चलें तो लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आयेगी । सब इसी पर संदेह करेंगे । सहसा बालिका चिल्लायी -- दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं । ओ दादा ! दोनों बैल भागे जा रहे हैं, जल्दी दौड़ो ।

गया हड़बड़ाकर बाहर निकला और बैलों को पकड़ने चला । वे दोनों भागे । गया ने पीछा किया । और भी तेज हुए । गया ने शोर मचाया । फिर गाँव के कुछ आदमियों को भी साथ लेने के लिए लौटा । दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया । सीधे दौड़ते चले गये । यहाँ तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा । जिस परिचित मार्ग से आये थे, उसका यहाँ पता न था । नये-नये गाँव मिलने लगे । तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे , अब क्या करना चाहिए ।

हीरा ने कहा -- मालूम होता हैं, राह भूल गये ।

'तुम भी तो बेताहाशा भागे । वहीं मार गिराना था।'

'उसे मार गिराते तो, दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दे, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़े ?'

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे । खेत में मटर खड़ी थी । चरने लगे । रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता जाता तो नहीं हैं ।

जब पेट भर गया, दोनों ने आजादी का अनुभव किया तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली । फिर सींग मिलाये और एक दूसरे को ठेलने लगे । मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया । तब उसे भी क्रोध आया । सभलकर उठा और फिर मोती से मिल गया । मोती ने देखा -- खेल में झगड़ा हुआ चाहता हैं तो किनारे हट गया ।

3

अरे ! यह क्या ? कौई साँड़ डौकता चला आ रहा हैं । हाँ, साँड ही हैं । वह सामने आ पहुँचा । दोनो मित्र बगलें झाँक रहे हैं । साँड पूरा हाथी हैं । उससे भिडना जान से हाथ धोना हैं , लेकिन न भिडने पर भी जान बचती नहीं नजर आती । इन्हीं की तरफ आ भी रहा हैं । कितनी भयंकर सूरत हैं ।

मोती ने मूक भाषा में कहा -- बुरे फँसे । जान बचेगी ? कोई उपाय सोचो।

हीरा मे चिन्तित स्वर में कहा -- अपने घमंड में भूला हुआ हैं । आरजू-विनती न सुनेगा ।

'भाग क्यों न चले?'

'भागना कायरता हैं ।'

'तो फिर यहीं मरो । बन्दा तो नौ-दो-ग्यारह होता हैं ।'

'और जो दौड़ाये ?'

'तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द ।'

'उपाय यही हैं कि उस पर दोनो जने एक साथ चोट करे ? मै आगे से रगेदता हूँ तुम पीछे से रगेदो , दोहरी मार पड़ेगी तो भाग खड़ा होगा । मेरी ओर झपटे, तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड देना । जान जोशिम हैं , पर दूसरा उपाय नहीं है ।'

दोनों मित्र जान हथेली पर लेकर लपके । साँड को भी संगठित शत्रुओ से लडने का तजरबा न था । वह तो एक शत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था । ज्योही हीरा पर झपटा , मोती ने पीछे से दौड़ाया । साँड उसकी तरउ मुडा, तो हीरा ने रगेदा। साँड चाहता थि कि एक एक करके दोनो को गिरा ले, पर ये दोनो भी उस्ताद थे ।उसे अवसर न देते थे । एक बार साँड झल्लाकर हीरा का अन्त कर देने ले लिए चला कि मोती ने बगल से आकर पेट मे सींग भोक दी । साँड क्रोध मे आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया । आखिर बेचारा जख्मी होकर भागा और दोनो मित्रो ने दूर तक उसका पीछा किया । यहाँ तक की साँड बेदम होकर गिर पड़ा । तब दोनो ने उसे छोड़ दिया ।

दोनो मित्र विजय के नशे में झूमते चले जाते थे ।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा मे कहा -- मेरा जी तो चाहता था कि बच्चा को मार ही डालूँ ।

हीरा ने तिरस्कार किया -- गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिये ।

'यह सब ढोग हैं । बैरी को ऐसा मारना चाहिये कि फिर न उठे ।'

'अब घर कैसे पहुँचेंगे , वह सोचो ।'

'पहले कुछ खा ले, तो सोचे ।'

सामने मटर का खेत था ही । मोती उसमे घुस गया । हीरा मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी । अभी चार ही ग्रास खाये थे दो आदमी लाठियाँ लिये दौड़ पडे , और दोनो मित्रो के घेर लिया । हीरा तो मेड पर था , निकल गया । मोती सीचे हुए खेत मे था । उसके खुर कीचड़ मे धँसने लगे । न भाग सका । पकड़ लिया । हीरा ने देखा , संगी संकट मे हैं , तो लौट पड़ा फँसेगे तो दोनो फँसेगे । रखवालो ने उसे भी पकड़ लिया ।

प्रातःकाल दोनो काँजीहौस में बन्द कर दिये गये ।

4

दोनो मित्रो को जीवन में पहली बार ऐसा साबिका पड़ा कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला । समझ ही में न आता था , यह कैसा स्वामी हैं । इससे तो गया फिर भी अच्छा था । यहाँ कई भैसे थी, बकरियाँ , कई घोड़े, कई गधे; पर किसी से सामने चारा न था , सब जमीन पर मुरदो की करह पड़े थे । कई तो इतने कमजार हो गये थे कि खड़े भी न हो सकते थे । सारा दिन दोनो मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाये ताकते रहे, पर कोई चारा लेकर न

आता न दिखायी दिया ।तब दोनो ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरु की, पर इससे क्या तृप्ति होती ?

रात को भी जब कुछ भोजन न मिला तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला -- अब तो नही रहा जाता मोती !

मोती ने सिर लटकाये हुए जवाब दिया -- मुझे तो मालूम होतो हैं प्राण निकल रहे हैं ।

'इतनी जल्दी हिम्मत न हारो भाई ! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकलना चाहिये ।'

'आओ दीवार तोड डालें।'

'मुझसे तो अब कुछ नही होगा ।'

'बस इसी बूते अकड़ते थे !'

'सारी अकड़ निकल गयी।'

बाडे की दीवार कच्ची थी । हीरा मजबूत तो था ही , अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिये और जोर मारा, तो मिट्टी का एक चिप्पड निकल आया । फिर तो उसका साहस बढा । इसने दौड-दौडकर दीवार पर कई चोटे की और हर चोट मे थोडी थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय काँजीहौस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरो की हाजिरी लेने आ निकला ।हीरा का उजड्डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किये और मोटी सी रस्सी से बाँध दिया ।

मोती ने पड़े पड़े कहा -- आखिर मार खायी, क्या मिला ?

'अपने बूते भर जोर तो मार दिया।'

'ऐसा जोर मारना किस काम का कि औप बंधन मे पड़ गये ।'

'जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने वंधन पड़ जाये ।'

'जान से हाथ धोना पड़ेगा ।'

'कुछ परवाह नहीं । यो भी तो मरना ही हैं । सोचो, दीवार खुद जाती तो कितनी जाने बच जाती । इतने भाई यहाँ बन्द हैं । किसी के देह में जान नहीं हैं । दो चार दिन और यही हाल रहा तो सब मर जायेगे ।'

'हाँ, यह बात तो हैं। अच्छा, तो लो, फिर में भी जोर लगाता हूँ ।'

मोती ने भी दीवार मे उसी जगह सींग मारा । थोडी सी मिट्टी गिरी और हिम्मत बढी । फिर तो दीवार में सींग लगा कर इस तरह जोर करने लगा , मानो किसी प्रतिद्वन्द्वी से लड रहा हैं । आखिर कोई दो घंटे की जोर आजमाई के बाद , दीवार का ऊपर से एक हाथ गि गयी । उसने दूनी शक्ति से दूसरा घक्का मारा, तो आधी दीवार गिर गयी ।

दीवार का गिरना था कि अधमरे से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे । तीनो घोड़ियाँ सरपट भाग निकली । फिर बकरियाँ निकली । उसके बाद भैंसे भी खिसक गयी ; पर गधे अभी तक ज्यो के त्या खड़े थे ।

हीरा ने पूछा -- तुम दोनो भाग क्यो नहीं जाते ?

एक गधे ने कहा -- जो कही फिर पकड़ लिये जायँ ।

'तो क्या हरज हैं । अभी तो भागने का अवसर हैं ।'

'हमे तो डर लगता हैं। हम यही पड़े रहेंगे ।'

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी । दोनो गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे कि भागे या न भागे , और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने मे लगा हुआ था । जब वह हार गया तो हीरा ने कहा -- तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो । शायद कहीम भेट हो जाये ।

मोती ने आँखो मे आँसू लाकर कहा -- सुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हैं हीरा । हम और तुम इतने दिनो एक साथ रहे हैं । आज तुम विपत्ति मे पड़ गये तो मैं तुम्हें छोडकर अलग हो जाऊँ ।

हीरा ने कहा -- बहुत मार पड़ेगी । लोग समझ जायेगे, यह तुम्हारी शरारत हैं ।

मोती गर्व से बोला -- जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बन्धन पड़ा, उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े तो क्या चिन्ता । इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियो की जान बच गयी । वे सब तो आशीर्वाद देगे ।

यह कहते हुए मोती ने दोनो गधों को सींगो से मार मारकर बाड़े के बाहर निकाला और तब बन्धु के पास आकर सो रहा ।

भोर होते ही मुंशी और चौकीदार तथा अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची , इसके लिखने की जरुरत नही । बस, इतना ही काफी हैं कि मोती की खूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी से बाँध दिया गया ।

5

एक सप्ताह तक दोनो मित्र वहाँ बँधे रहे । किसी ने चारे का एक तृण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था । यहीं उनका आधार था । दोनों इतने दुबले हो गये थे कि उठा तक न जाता था ; ठठरियाँ निकल आयी थी ।

एक दिन बाडे के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते होते वहाँ पचास-साठ

आदमी जमा हो गये । तब दोनो मित्र निकाले गये और उनकी देख भाल होने लगी ।लोग आ आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते । ऐसे मृतक बैलो का कौन खरीदार होता ?

सहसा एक दढियल आदमी, जिसकी आँखे लाल थी और मुद्रा अत्यन्त कठोर , आया और दोनो मित्रो के कूल्हों में उँगली गोदकर मुंशीजी से बात करने लगा । उसका चेहरा देखकर अन्तर्ज्ञान सं दोनो मित्रों के दिल काँप उठे । वह कौन है और उन्हें क्यो टटोल रहा हैं, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न हुआ । दोनो ने एक दूसरे को भीत नेत्रों स देखा और सिर झुका लिया ।

हीरा ने कहा -- गया के घर से नाहक भागे । अब जान न बचेगी ।

मोती ने अश्रद्धा के भाव से उत्तर दिया -- कहते हैं, भगवान सबके ऊपर दया करते हैं । उन्हें हमारे ऊपर क्यो दया नही आती?

'भगवान् के लिए हमारा मरना-जीना दोनो बराबर हैं । चलो, अच्छा ही है, कुछ दिन उसके पास तो रहेंगे । एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था क्या अब न बचायेंगे ।'

'यह आदमी छुरी चलायेगा । देख लेना ।'

'तो क्या चिन्ता हैं? माँस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी न किसी काम आ जायेंगी।'

नीलाम हो जाने के बाद दोनो मित्र दढियल के साथ चले । दोनो की बोटी-बोटी काँप रही थी । बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे , पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे ; क्योकि बह जरा भी चाल धीमी हो जाने पर जोर से डंडा जमा देता था ।

राह में गाय-बैलो का एक रेवड हरे-हरे हार मे चरता नजर आया । सभी जानवर प्रसन्न थे , चिकने , चपल । कोई उछलतास कोई आनन्द से बैठा पागुर करता

था ।कितना सुखी जीवन था इनका; पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई बधिक के हाथ पड़े कैसे दुःखी है ।

यहसा दोनो को ऐसा मालूम हुआ कि यह परिचित राह हैं । हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हे ले गया था । वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे । सारी थकान, सारी दुर्बलता गायब हो गयी । आह ? यह लो ! अपना ही हार आ गया । इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे ; यही कुआँ हैं ।

मोती ने कहा -- हमारा घर नगीच आ गया ।

हीरा बोला -- भगवान् की दया हैं ।

'मै तो अब घर भागता हूँ ।'

'यह जाने देगा ?'

'इसे मार गिराता हूँ ।'

'नहीं-नहीं, दौड़कर थान पर चलो। वहाँ से आगे न जायेंगे ।'

दोनो उन्मत होकर बछड़ो की भाँति कुलेलें करते हुए घर की ओर दौड़े ।

वह हमारा थान हैं । दोनो दौड़कर अपने थान पर आये और खड़े हो गये । दढियल भी पीछे पीछे दौड़ा चला आता था ।

धूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था । बैलों को देखते ही दौडा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे ।एक झूरी के हाथ चाट रहा था ।

दढियल ने जाकर बैलो की रस्सी पकड़ ली ।

झूरी ने कहा -- मेरे बैल हैं ।

'तुम्हारे बैल कैसे ? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिये आता हूँ ।'

'मैं समझता हूँ कि चुराये लिये आते हो ! चुपके से चले जाओ । मेरे बैल हैं। मैं बेचूँगा तो बिकेंगे । किसी को मेरे बैल नीलाम करने का क्या अख्तियार हैं ?'

'जाकर थाने मे रपट कर दूँगा ।'

'मेरे बैल हैं। इसका सबूत हैं कि मेरे द्वार पर खड़े हैं ।'

दढियल झल्लाकर बैलो को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढा । उसी वक्त मोती ने सींग चलाया । दढियल पीछे हटा । मोती ने पीछा किया । दढियल भागा। मोती पीछे दौड़ा । गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका ; पर खड़ा दढियल का रास्ता देख रहा था । दढियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था , पत्थर फेंक रहा था । और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था । गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे और हँसते थे ।

जब दढियल हारकर चला गया , तो मोती अकड़ता हुआ लौटा ।

हीरा मे कहा -- मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से मे आकर मार न बैठो ।

'अगर वह मुझे पकड़ता , तो बे-मारे न छोड़ता ।'

'अब न आयेगा ।'

'आयेगा तो दूर ही से खबर लूँगा । देखूँ कैसे ले जाता हैं ।'

'जो गोली मरवा दे ?'

'मर जाऊँगा ; पर उसके काम तो न आऊँगा ।'

'हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता ।'

'इसीलिए कि हम इतने सीधे हैं ।'

जरा देर मे नादों में खली , भूसा, चोकर और दाना भर दिया गया और दोनो मित्र खाने लगे । झूरी खड़ा दोनो को सहला रहा था और बीसो लड़के तमाशा देख रहे थे । सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था ।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनो के माथे चूम लिये ।

***

रियासत का दीवान

महाशय मेहता उन अभागों में थे, जो अपने स्वामी को प्रसन्न नहीं रख सकते थे। वह दिल से अपना काम करते थे और चाहते थे कि उनकी प्रशंसा हो। वह यह भूल जाते थे कि वह काम के नौकर तो हैं ही, अपने स्वामी के सेवक भी हैं। जब उनके अन्य सहकारी स्वामी के दरबार में हाजिरी देते थे, तो वह बेचारे दफ्तर में बैठे कागजों से सिर मारा करते थे। इसका फल यह था कि स्वामी के सेवक तो तरक्कियाँ पाते थे, पुरस्कार और पारितोषिक उड़ाते थे। और काम के सेवक किसी-न-किसी अपराध में निकाल दिये जाते थे। ऐसे कटु अनुभव उन्हें अपने जीवन में कई बार हो चुके थे, इसलिए अबकी जब राजा साहब सतिया ने उन्हें एक अच्छा पद प्रदान किया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब वह स्वामी का रुख देखकर काम करेंगे और उनके स्तुति-गान में ही भाग्य की परीक्षा करेंगे। और इस प्रतिज्ञा को उन्होंने कुछ इस तरह निभाया कि दो साल भी न गुजरे थे कि राजा साहब ने उन्हें अपना दीवान बना लिया। एक स्वाधीन राज्य की दीवानी के क्या कहना! वेतन तो 500) मासिक ही था, मगर अख्तियार बड़े लम्बे। राई का पर्वत करो, या पर्वत से राई , कोई पूछने वाला न था। राजा साहब भोग-विलास में पड़े रहते थे, राज्य संचालन का सारा भार मि. मेहता पर था। रियासत के सभी अमले और कर्मचारी दंडवत् करते, बड़े-बड़े रईस नजराने देते, यहाँ तक कि रानियाँ भी उनकी खुशामद करतीं। राजा साहब उग्र प्रकृति के मनुष्य थे, जैसे प्रायः राजे होते हैं। दुर्बलों के सामने शेर , सबलों के सामने भीगी बिल्ली। कभी मि. मेहता को डाँट-फटकार भी बताते; पर मेहता अपनी सफाई में एक शब्द भी मुँह से निकालने की कसम खा ली थी। सिर झुकाकर सुन लेते। राजा साहब की क्रोधाग्नि ईधन न पाकर शान्त हो जाती।

गर्मियों के दिन थे। पोलिटिकल एजेंट का दौरा था। राज्य में उनके स्वागत की तैयारियाँ चल रही थीं। राजा साहब ने मेहता को बुलाकर कहा- मैं चाहता हूँ,

साहब बहादुर यहाँ से मेरा कलमा पढ़ते हुए जायँ.

मेहता ने सिर झुकाकर विनीत भाव से कहा- चेष्टा तो ऐसी ही कर रहा हुँ, अन्नदाता!

'चेष्टा तो सभी करते हैं; मगर वह चेष्टा कभी सफल नहीं होती। मैं चाहता हूँ, तुम दृढता के साथ कहो- ऐसा ही होगा।'

'ऐसा ही होगा।'

'रुपयें की परवाह मत करो।'

'जो हुक्म।'

'कोई शिकायत न आये; वरना तुम जानोगे।'

'वह हुजूर को धन्यवाद देते जायँ तो सही।'

'हाँ, मैं यहीं चाहता हूँ।'

'जान लड़ा दूगा, दीनबन्धु!'

'अब मुझे सन्तोष हैं!'

इधर तो पोलिटिकल एजेंट का आगमन था, उधर मेहता का लड़का जयकृष्ण गर्मियों की छुट्टियाँ मनाने माता-पिता के पास आया। किसी विश्वविद्यालय में पढ़ता था। एक बार 1932 में कोई उग्र भाषण करने के जुर्म में 6 महीने की सजा काट चुका था। मि. मेहता की नियुक्ति के बाद जब वह पहली बार आया तो राजा ने उसे खासतौर पर बुलाया और उससे जी खोलकर बातें की थी, उसे अपने साथ शिकार खेलने के गये और नित्य उसके साथ टेनिस खेला करते थे। जयकृष्ण पर राजा साहब के साम्यवादी विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उसे

ज्ञात हुआ कि राजा साहब केवल देख-भक्त ही नहीं, क्रांति के समर्थक भी हैं। रूस और फ्रांस की क्रांति पर दोनों पर खूब बहस हुई थी। लेकिन अबकी यहाँ उसने कुछ और ही रंग देखा। रियासत के हर एक किसान और जमींदार से जबरन चन्दा वसूल किया जा रहा हैं। पुलिस गाँव-गाँव चन्दा उगाहती फिरती थी। रकम दीवान साहब तय करते थे। वसूल करना पुलिस का काम था। फरियाद की कहीं सुनवाई न थी। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। हजारों मजदूर सरकारी इमारतों की सफाई, सजावट और सड़कों की मरम्मत में बेगार कर रहे हैं। बनियों से डंडों की जोर पर रसद जमा की जा रही थी। जयकृष्ण को आश्चर्य हो रहा था कि यह क्या हो रहा हैं। राजा साहब के विचार और व्यवहार में इतना अन्तर कैसे हो गया। कहीं ऐसा तो नहीं कि महाराज को इन अत्याचारों की खबर ही न हो, या उन्होंने जिन तैयारियों की हुक्म दिया हो, उसकी तामील में कर्मचारियों ने अपनी कारगुजारी की धुन में यह अनर्थ कर डाला हो। रात भर तो उसने किसी तरह जब्त किया। प्रातःकाल उसने मेहताजी से पूछा- आपने राजा साहब के इन अत्याचारों की सूचना नही दी?

मेहताजी को स्वयं इस अनीति से ग्लानि हो रही थी। स्वभावतः दयालु मनुष्य थे; लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें अशक्त कर रखा था। दुःखित स्वर में बोले- राजा साहब का यही हुक्म हैं, तो क्या किया जाय?

'तो आपको ऐसी दशा में अलग हो जाना चाहिए था। आप जानते हैं, यह जो कुछ हो रहा हैं, उसकी सारी जिम्मेदारी आपके सिर लादी जा रही हैं, प्रजा आप ही को अपराधी समझती हैं।'

'मैं मजबूर हूँ। मैंने कर्मचारियों से बार-बार संकेत किया कि यथासाध्य किसी पर सख्ती न की जाय; लेकिन हरेक स्थान पर मैं मौजूद तो नहीं रह सकता। अगर प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करूँ, तो शायद कर्मचारी लोग महाराज से मेरी शिकायत कर दें। ये लोग ऐसे ही अवसरों का ताक में तो रहते हैं। इन्हें तो जनता को लूटने का कोई बहाना चाहिए। जितना सरकारी कोष में जमा करते हैं; उससे

ज्यादा अपने घर में रख लेते हैं। मैं कुछ नही कर सकता।'

जयकृष्ण ने उत्तेजित होकर कहा- तो आप इस्तीफा क्यों नही दे देते?

मेहता लज्जित होकर बोले- बेशक, मेरे लिए मुनासिब तो यहीं था; लेकिन जीवन में इतने धक्के खा चुका हूँ कि अब और सहने की शक्ति नहीं रही। यह निश्चय हैं कि नौकरी करके मैं अपने को बेदाग नही रख सकता। धर्म और अधर्म, सेवा और परमार्थ के झमेलों में पड़कर मैने बहुत ठोकरें खायी। मैने देख लिया कि दुनिया दुनियादारों के लिए हैं, जो अवसर और काल देखकर काम करते हैं। सिद्धान्तवादियों के लिए यह अनुकूल स्थान नहीं हैं।

जयकृष्ण ने तिरस्कार-भरे स्वर में पूछा- मैं राजा साहब के पास जाऊँ।

'क्या तुम समझते हो, राजा साहब से ये बातें छिपी हैं?'

'संभव हैं, प्रजा की दुःख-कथा सुनकर उन्हें कुछ दया आये।'

मि. मेहता को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी? वह तो खुद चाहते थे किसी तरह अन्याय का बोझ उनके सिर से उतर जाय। हाँ, यह भय अवश्य था कि कहीं जयकृष्ण सी सत्प्रेरणा उनके लिए हानिकर न हो और कहीं उन्हें इस सम्मान और अधिकार से हाथ न धोना पड़े। बोले- यह ख्याल रखना कि तुम्हारे मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय; जो महाराज को अप्रसन्न कर दे।

जयकृष्ण ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह ऐसी कोई बात न करेगा। क्या वह इतना नादान हैं? मगर उसे क्या खबर थी कि आज के महाराजा साहब वह नहीं हैं, जो एक साल पहले थे, या सम्भव हैं, पोलिटिकल एजेंट के चले जाने के बाद वह फिर हो जायँ। वह न जानता था कि उनके लिए क्रांति और आतंक की चर्चा भी उसी तरह विनोद की वस्तु थी, जैसी हत्या, बलात्कार या जाल की वारदातें, या रूप के बाजार के आकर्षक समाचार । जब उसने ड्योढ़ी पर पहुँचकर अपनी

इत्तला करायी, तो मालूम हुआ कि महाराज अस्वस्थ हैं, लेकिन वह लौट ही रहा था कि महाराज नें उसे बुला भेजा। शायद उससे सिनेमा-संसार के ताजे समाचार पूछना चाहते थे। उसने सलाम पर मुसकराकर बोले- तुम खूब आये भई, कहो एम. सी. सी. का मैच देखा या नहीं? मैं तो इन बखेड़ों में ऐसा फँसा कि जाने की नौबत नहीं आयी। अब तो यही दुआ कर रहा हूँ किसी तरह एजेंट साहब खुश-खुश रुखसत हो जायँ। मैने जो भाषण लिखवाया हैं, वह जरा तुम भी देख लो। मैंने इन राष्ट्रीय आन्दोलनों की खूब खबर ली हैं और हरिजनोद्धार पर भी छींटे उड़ा दिये हैं।

जयकृष्ण ने अपने आवेश को दबाकर कहा- राष्ट्रीय आन्दोलनों की आपने खबर ली, यह अच्छा किया; लेकिन हरिजनोद्धार को तो सरकार भी पसन्द करती हैं, इसीलिए महात्मा गाँधी को रिहा कर दिया और जेल में भी उन्हें इस आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखने-पढ़ने और मिलने-जुलने की पूरी स्वाधीनता दे रखी थी।

राजा साहब ने तात्विक मुस्कान के साथ कहा- तुम जानते नहीं हो, यह सब प्रदर्शन-मात्र हैं। दिल से सरकार समझती हैं कि यह भी राजनैतिक आन्दोलन हैं। वह इस रहस्य को बड़े ध्यान से देख रही हैं। लॉयलटी में जितना प्रदर्शन करो, चाहे वह औचित्य की सीमा के पार ही क्यों न हो जाय, उसका रंग चोखा ही होता हैं- उसी तरह जैसे कवियों की विरुदावली से हम फूल उठते हैं, चाहे वह हास्यास्पद ही क्यों न हो। हम ऐसे कवि को खुशामदी समझें, अहमक भी समझ सकते हैं; पर उससे अप्रसन्न नहीं हो सकते। वह हमें जिनता ही ऊँचा उठाता हैं, उतना ही वह हमारी दृष्टि में ऊँचा उठता जाता हैं।

राजा साहब ने अपने भाषण की एक प्रति मेज की दराज से निकालकर जयकृष्ण के सामने रख दी, पर जयकृष्ण के लिए इस भाषण में अब कोई आकर्षण न था। अगर वह सभा-चतुर होता, तो जाहिरदारी के लिए ही इस भाषण को बड़े ध्यान से पढ़ता , उनके शब्द-विन्यास और भावोत्कर्ष की प्रशंसा करता और उसकी तुलना महाराजा बीकानेर या पटियाला के भाषणों से करता; पर अभी

दरबारी दुनिया की रीति-नीति से अनभिज्ञ था। जिस चीज को बुरा समझता था, उसे बुरा कहता था और जिस चीज को अच्छा समझता था, उसे अच्छा कहता था। बुरे को अच्छा और अच्छे को बुरा कहना अभी उसे न आया था। उसने भाषण पर सरसरी नजर डालकर उसे मेज पर रख दिया और अपनी स्पष्टवादिता का बिगुल फूँकता हूआ बोला- मैं राजनीति के रहस्यों का भला क्या समझ सकता हूँ लेकिन मेरा ख्याल हैं कि चाणक्य के वशंज इन चालों को खूब समझते हैं और कृमित्र भावों का उनपर कोई असर नहीं होता, बल्कि इससे आदमी उनकी नजरों में और भी गिर जाता हैं। अगर एजेंट को मालूम हो जाय कि उसके स्वागत के लिए प्रजा पर कितने जुल्म ढाये जा रहे हैं, तो शायद वह यहाँ से प्रसन्न होकर न जाय। फिर, मैं तो प्रजा की दृष्टि देखता हूँ। एजेंट की प्रसन्नता आपके लिए लाभप्रद हो सकती हैं, प्रजा को तो उससे हानि ही होगी।

राजा साहब अपने किसी काम की आलोचना नहीं सह सकते थे। उनका क्रोध पहले जिरहों के रूप में निकलता, फिर तर्क का आकार धारण कर लेता और अन्त में भूकम्प के आवेश से उबल पड़ता था, जिससे उनका स्थूल शरीर, कुर्सी, मेज, दीवारे और छत सभी भीषण कम्पन होने लगता था। तिरछी आँखों से देखकर बोले- क्या हानि होगी, जरा सुनूँ?

जयकृष्ण समझ गया कि क्रोध की मशीनगन चक्कर में हैं और घातक स्फोट होने वाला है। सँभलकर बोला- इसे आप मुझसे ज्यादा समझ सकते हैं।

'नहीं मेरी बुद्धि इतनी प्रखर नही हैं।'

'आप बुरा मान जायँगे।'

'क्या तुम समझते हो, मैं बारूद का ढेर हूँ?'

'बेहतर हैं, आप इसे न पूछे।'

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा।'

और आप-ही-आप उनकी मुट्ठियाँ बँध गयीं।

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा, इसी वक़्त।'

जयकृष्ण यह धौंस क्यों सहने लगा? क्रिकेट में मैदान में राजकुमारों पर रोब जमाया करता था, बड़े-बड़े हुक्काम की चुटकियाँ लेता था। बोला- अभी आपके दिल में पोलिटिकल एजेंट का कुछ भय हैं, आप प्रजा पर जुल्म करते डरते हैं। जब वह आपके एहसानों से दब जायगा, आप स्वच्छन्द हो जायँगे और प्रजा की फरियाद सुननेवाला कोई न रहेगा।

राजा साहब प्रज्जलित नेत्रों से ताकते हुए बोले- मैं एजेंट का गुलाम नहीं हूँ कि उससे डरूँ, कोई कारण नहीं हैं कि मैं उससे डरूँ, बिल्कुल कारण नहीं हैं। मैं पोलिटिकल एजेंट की इसलिए खातिर करता हँ कि वह हिज़ मैजेस्टी का प्रतिनिधि हैं। मेरे और हिज़ मैजेस्टी के बीच भाई-चारा हैं, एजेंट केवल उनका दूत हैं। मैम केवल नीति का पालन कर रहा हूँ। मैं विलायत जाऊँ तो हिज़ मैजेस्टी भी इसी तरह मेरा सत्कार करेंगे। मैं डरू क्यों? मैं अपने राज्य का स्वतन्त्र राजा हूँ। जिसे चाहूँ, फाँसी दे सकता हूँ। मैं किसी से क्यों डरने लगा? डरना नामर्दों का काम हैं, मैं ईश्वर से भी नहीं डरता। डर क्या वस्तु हैं, यह मैंने आज तक नहीं जाना। मैं तुम्हारी तरह कॉलेज का मुँहफट छात्र नहीं हूँ कि क्रांति और आजादी की हाँक लगाता फिरूँ। तुम क्या जानो, क्रांति क्या चीज हैं? तुमने केवल उसका नाम सुन लिया। उसके लाल दृश्य आँखों से नहीं देखे। बन्दूक की आवाज सुनकर तुम्हारा दिल काँप उठेगा। क्या तुम चाहते हो, मैं एजेंट से कहूँ - प्रजा तबाह है, आपके आने की जरूरत नहीं। मैं इतना आतिथ्य-शून्य नहीं हूँ। मैं अन्धा नही हूँ, अहमक नहीं हूँ, प्रजा की दशा का मुझे तुमसे कहीं अधिक ज्ञान हैं, तुमने उसे बाहर से देखा हैं, मैं उसे नित्य भीतर से देखता हूँ। तुम मेरी प्रजा को क्रांति का स्वप्न दिखाकर उसे गुमराह नहीं कर सकते। तुम मेरे राज्य में विद्रोह और असंतोष के बीज नहीं बो सकते। तुम्हें अपने मुँह पर ताला लगाना होगा, तुम मेरे

विरुद्ध एक शब्द मुँह से नहीं निकाल सकते, चूँ भी नहीं कर सकते...

डूबते हुए सूरज की किरणें महराबी दीवानखाने के रंगीन शीशों से होकर राजा साहब के क्रोधोन्मत्त मुख-मंडल को और भी रंजित कर रहीं थी। उनके बाल नीले हो गये थे, आँखें पीली, चेहरा लाल और देह हरी। मालूम होता था, प्रेतलोक का कोई पिशाच हैं। जयकृष्ण की सारी उद्दंडता हवा हो गयी। राजा साहब को इस उन्माद की दशा में उसने कभी न देखा था, लेकिन इसके साथ ही उसका आत्म-गौरव इस ललकार का जवाब देने के लिए व्याकुल हो रहा था। जैसे विनय का जवाब विनय हैं, वैसे ही क्रोध का जवाब क्रोध हैं, जब वह आतंक और भय, अदब और लिहाज के बन्धनों को तोड़कर निकल पड़ता हैं।

उसने भी राजा साहब को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा- मैं अपनी आँखों से यह अत्याचार देखकर मौन नहीं रह सकता।

राजा साहब ने आवेश से खड़े होकर, मानो उसकी गरदन पर सवार होते हुए कहा- तुम्हें यहाँ जबान खोलने का कोई हक नहीं हैं।

'प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का हक हैं। आप वह हक मुझसे नहीं छीन सकते।'

'मैं सब कुछ कर सकता हूँ।'

'आप कुछ नहीं कर सकते।'

'मैं तुम्हें अभी जेल में बन्द कर सकता हूँ।'

'आप मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते।'

इसी वक़्त मि. मेहता बदहबास-से कमरे में आये और जयकृष्ण की ओर कोप-भरी आँखें उठाकर बोले- कृष्णा, निकल जा यहाँ से, अभी मेरी आँखों से दूर हो जा

और खबरदार! फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाना। मैं तुझ-जैसे कपूत का मुँह नहीं देखना चाहता। जिस थाल में खाता हैं, उसी में छेद करता हैं, बेअदब कहीं का! अब अगर जबान खोली, तो मैं तेरा खून पी जाऊँगा।

जयकृष्ण ने हिंसा-विक्षिप्त पिता को घृणा की आँखों से देखा और अकड़ता हुआ, गर्व के सिर उठाये, दीवानखाने के बाहर निकल गया।

राजा साहब ने कोच पर लेटकर कहा- बदमाश आदमी हैं, पल्ले सिर का बदमाश! मैं नहीं चाहता कि ऐसा खतरनाक आदमी एक क्षण भी रियासत में रहे। तुम उससे जाकर कहो, इसी वक़्त यहाँ से चला जाय वरना उसके हक में अच्छा न होगा। मैं केवल आपकी मुरौवत से गम खा गया; नहीं तो इसी वक़्त इसका मजा चखा सकता था। केवल आपकी मुरौवत ने हाथ पकड़ लिया। आपको तुरन्त निर्णय करना पड़ेगा, इस रियासत की दीवानी या लड़का। अगर दीवानी चाहते हो, तो तुरन्त उसे रियासत से निकाल दो और कह दो फिर मेरी रियासत में पाँव न रखे। लड़के से प्रेम है, तो आज ही रियासत से निकल जाइए। आप यहाँ से कोई चीज नहीं ले जा सकते, एक पाई की भी नहीं। जो कुछ हैं, वह रियासत की हैं, बोलिए, क्या मंजूर हैं?

मि. मेहता ने क्रोध के आवेश में जयकृष्ण को डाँट तो बतलायी थी पर यह न समझते थे कि मामला इतना तूल खींचेगा। एक क्षण के लिए वह सन्नाटे में आ गये। सिर झुकाकर परिस्थिति पर विचार करने लेगे- राजा उन्हें मिट्टी में मिला सकता हैं। वह यहाँ बिल्कुल बेबस हैं, कोई उनका साथी नहीं, कोई उनकी फरियाद सुननेवाला नही। राजा उन्हें भिखारी बनाकर छोड़ देगा। इस अपमान के साथ निकाले जाने की कल्पना करके वह काँप उठे। रियासत में उनके बैरियों की कमी न थी। सब-के-सब मूसलों ढोल बजायेंगे। जो आज उसके सामने भीगी बिल्ली बने हुए हैं, कल शेरों की तरह गुर्रायेगे। फिर इस उमर में अब उन्हें नौकर ही कौन रखेगा। निर्दयी संसार के सामने क्या फिर उन्हें हाथ फैलाना पड़ेगा? नहीं, इससे तो यह कहीं अच्छा हैं कि वह यहीं पड़े रहें। कम्पित स्वर में बोले- मैं

आज ही उसे घर से निकाल देता हूँ, अन्नदाता!

'आज नहीं, इसी वक़्त!'

'इसी वक़्त निकाल दूँगा!'

'हमेशा के लिए?'

'हमेशा के लिए।'

'अच्छी बात है, जाइए औऱ आधे घंटे के अन्दर मुझे सूचना दीजिए।'

मि. मेहता घर चले, तो मारे क्रोध के उनके पाँव काँप रहे थे। देह में आग-सी लगी हुई थी। इस लौंड़े के कारण आज उन्हें कितना अपमान सहना पड़ा। गधा चला हैं यहाँ अपने साम्यवाद का राग अलापने। अब बच्चा को मालूम होगा, जबान पर लगाम न रखने का क्या नतीजा होता हैं। मैं क्यों उसके पीछे गली-गली ठोकरें खाऊँ। हाँ, यह पद और सम्मान प्यारा हैं। क्यों न प्यारा न हो? इसके लिए बरसों एड़ियाँ रगड़ी हैं, अपना खून और पसीना एक किया हैं। यह अन्याय बुरा जरूर लगता हैं; लेकिन बुरी लगने की एक यही बात तो नहीं हैं! और हजारों बातें तो बुरी लगती हैं। जब किसी बात का उपाय मेरे पास नहीं, तो इस मुआमले के पीछे क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूँ?

उन्होंने घर आते-ही-आते पुकारा- जयकृष्ण!

सुनीता ने कहा- जयकृष्ण तो तुमसे पहिले ही राजा साहब के पास गया था। तब से यहाँ कब आया?

'अब तक यहाँ नहीं आया। वह तो मुझसे पहले ही चल चुका था।'

वह फिर बाहर आये और नौकरों से पूछना शुरू किया। अब भी उसका पता न

था। मारे डर के कहीं छिप रहा होगा और राजा ने आध घंटे में इत्तला देने का हुक्म दिया हैं। यह लौंडा न जाने क्या करने पर लगा हुआ है। आप तो जायगा ही मुझे भी अपने साथ ले डूबेगा।

सहसा एक सिपाही ने एक पुरजा लाकर उनके हाथ में रख दिया। अच्छा, यह तो जयकृष्ण की लिखावट हैं। क्या कहता हैं- इस दुर्दशा के बाद मैं इस रियासत में एक क्षण भी नहीं रह सकता। मैं जाता हूँ। आपको आपका पद और मान अपनी आत्मा से ज्यादा प्रिय हैं, आप खुशी से उसका उपभोग कीजिए। मैं फिर आपको तकलीफ देने न आऊँगा। अम्माँ से मेरा प्रणाम कहिएगा।

मेहता ने पुरजा लाकर सुनीता को दिखाया और खिन्न होकर बोले- इसे न जाने कब समझ आयेगी, लेकिन बहुत अच्छा हुआ। जब लाला को मालूम होगा, दुनिया में किस तरह रहना चाहिए। बिना ठोकरें खायें, आदमी की आँखें नहीं खुलती। मैं ऐसे तमाशे बहुत खेल चुका, अब इस खुराफात के पीछे अपना शेष जीवन नहीं बरबाद करना चाहता - और तुरन्त राजा साहब को सूचना देने चले।

2

दम-से-दम में सारी रियासत में यह समाचार फैल गया। जयकृष्ण अपने शील-स्वभाव के कारण जनता में बड़ा प्रिय था। लोग बाजारों औऱ चौरस्तों पर खड़े हो-होकर इस कांड पर आलोचना करने लगे- अजी, वह आदमी नही था, भाई, उसे किसी देवता का अवतार समझो। महाराज के पास जाकर बेधड़क बोला- अभी बेगार बन्द कीजिए वरना शहर में हंमागा हो जायगा। राजा साहब की तो जबान बन्द हो गयी। बगलें झाँकने लगे। शेर-हैं-शेर! उम्र तो कुछ नहीं; पर आफत का परकाला हैं। और वह बेगार बन्द कराके रहता, हमेशा के लिए। राजा साहब को भागने की राह न मिलती। सुना, घिघियाने लगे। मुदा इसी बीच में दीवान साहब पहुँच गये औऱ उसे देश-निकाला का हुक़्म दे दिया। यह हुक़्म सुनकर उसकी आँखों में खून उतर आया था, लेकिन बाप का अपमान न किया।

'ऐसे बाप को तो गोली मार देनी चाहिए। बाप हैं या दुश्मन!'

'वह कुछ भी हो, हैं तो बाप ही।'

सुनीता सारे दिन बैठी रोती रही। जैसे कोई उसके कलेजे पर बर्छियाँ चुभो रहा था। बेचारा न जाने कहाँ चला गया। अभी जलपान तक न किया था। चूल्हें में जाय ऐसा भोग-विलास, जिसके पीछं उसे बेटे को त्यागना पड़े। हृदय में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी दम पति और घर को छोड़कर रियासत से निकल जाय, जहाँ ऐसे नर-पिशाचों का राज्य हैं। इन्हें अपनी दीवानी प्यारी हैं, उसे लेकर रहे। वह अपने पुत्र के साथ उपवास करेगी, पर उसे आँखों से देखती तो रहेगी।

एकाएक वह उठकर महारानी के पास चली गयी! वह उनसे फरियाद करेगी, उन्हें भी ईश्वर ने बालक दिया हैं। उन्हें क्या एक अभिमानी माता पर दया न आवेगी? इससे पहले भी वह कई बार महारानी के दर्शन कर चुकी थी। उसका मुरझाया हुआ मन आशा से लहलहा उठा।

लेकिन रनिवास में पहुँची तो देखा कि महारानी के तेवर भी बदले हुए हैं। उसे देखते ही बोली- तुम्हारा लड़का बड़ा उजड्ड हैं। जरा भी अदब नहीं। किससे किस तरह बात करनी चाहिए, इसका जरा भी सलीका नहीं। न-जाने विश्वविद्यालय में क्या पढ़ा करता हैं। आज महाराज से उलझ बैठा। कहता था कि बेगार बन्द कर दीजिए और एजेंट साहब के स्वागत-सत्कार की कोई तैयारी न कीजिए। इतनी समज भी उसे नहीं हैं कि इस तरह राजा कै घंटे गद्दी पर रह सकता हैं। एजेंट बहुत बड़ा अफसर न सही; लेकिन है तो बादशाह का प्रतिनिधि। उसका आदर-सत्कार करना तो हमारा धर्म हैं। फिर ये बेगार किस दिन काम आयेंगे। उन्हें रियासत से जागींरे मिली हुई हैं। किस दिन के लिए? प्रजा में विद्रोह की आग भड़काना कोई भले आदमी का काम हैं? जिस पत्तल में खाओ, उसी में छेद करो। महाराज ने दीवान साहब का मुलाहजा किया, नहीं तो हिरासत में डलवा देते! अब बच्चा नहीं हैं। खासा पाँच हाथ का जवान हैं। सब कुछ देखता है और समझता

हैं। हम हाकिमों से बैर करें, तो कै दिन का निबाह हो। उसका क्या बिगड़ता हैं। कहीं सौ-पचास की चाकरी पा जायगा। यहाँ तो करोड़ो की रियासत बरबाद हो जायगी।

सुनीता ने आँचल फैलाकर कहा- महारानी बहुत सत्य कहती हैं; पर अब तो उसका अपराध क्षमा कीजिए। बेचारा लज्जा और भय के मारे घर नहीं गया। न जाने किधर चला गया। हमारे जीवन का यहीं एक अवलम्ब हैं, महारानी! हम दोनों रो-रोकर मर जायँगे। आँचल फैला कर भीख माँगती हूँ, उसको क्षमा-दान दीजिए। माता के हृदय को आपसे ज्यादा और कौन समझेगा; आप महाराज से सिफारिश कर दें...

महारानी अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसकी ओर देखा मानो वह कोई बड़ी अनोखी बात कह रही हैं और अपने रंगे हुए होठो पर अंगूठियों से जगमगाती हुई उँगली रख कर बोली- क्या कहती हो, सुनीता देवी! उस युवक की महाराज से सिफारिस करूँ जो हमारी जड़ खोदने पर तुला हुआ हैं? आस्तीन में साँप पालूँ? तुम किस मुँह से ऐसी बातें करती हो? और महाराज मुझे क्या कहेंगे? ना मैं इसके बीच में न पड़ूँगी। उसने जो बीज बोये हैं; उसका वह फल खाये। मेरा लड़का ऐसा नालायक होता, तो उसका मुँह न देखती। और तुम ऐसे बेटे की सिफारिश करती हो?

सुनीता ने आँखों में आँसू भर कर कहा- महारानी, ऐसी बातें आपके मुँह में शोभा नहीं देती।

महारानी मसनद टेककर उठ बैठी और तिरस्कार-भरे स्वर में बोली- अगर तुमने सोचा था कि मैं तुम्हारे आँसू पोछूँगी, तो तुमने भूल की। हमारे द्रोही की सिफारिश लेकर हमारे पास आना, इसके सिवा और क्या हैं कि तुम उसके अपराध को बाल-क्रीड़ा समझ रही हो। अगर तुमने अपराध की भीषणता का ठीक अनुमान किया होता, तो मेरे पास कभी न आती। जिसने इस रियासत का नमक खाया हो, वह रियासत के द्रोही की पीठ सहलाये! वह स्वयं राजद्रोही हैं! इसके सिवा और क्या

कहूँ?

सुनीता भी गर्म हो गयी। पुत्र-स्नेह म्यान से बाहर निकल आय़ा। बोली- राजा का कर्त्तव्य केवल अपने अफसरों को प्रसन्न करना नहीं हैं। प्रजा को पालने की जिम्मेदारी इससे कहीं बढ़कर हैं।

उसी समय महाराज ने कमरे में कदम रक्खा! रानी ने उठकर स्वागत किया और सुनीता सिर झुकाये निस्पंद खड़ी रही।

राजा ने व्यंग्यपूर्ण मुसकान के साथ पूछा- यह कौन महिला तुम्हें राजा के कर्त्तव्य का उपदेश दे रही थी?

रानी ने सुनीता की ओर आँख मार कर कहा- यह दीवान साहब की धर्मपत्नी हैं। राजा साहब की त्योरियाँ चढ़ गयी। ओठ चबाकर बोले- जब माँ ऐसी पैनी छुरी हैं, तो लड़का क्यों न जहर बुझाया हुआ हो। देवीजी, मैं तुमसे यह शिक्षा नहीं लेना चाहता कि राजा का अपनी प्रजा के साथ क्या धर्म हैं। यह शिक्षा मुझे कई पीढ़ियों से मिलती चली आयी हैं। बेहतर हो कि तुम किसी से यह शिक्षा प्राप्त कर लो कि स्वामी के प्रति उसके सेवक का क्या धर्म है और जो नमकहराम हैं, उसके साथ स्वामी को कैसा व्यवहार करना चाहिए।

यह कहते हुए राजा साहब उसी उन्माद की दशा में बाहर चले गये।

मि. मेहता घर जा रहे थे, राजा साहब ने कठोर स्वर में पुकारा- सुनिए मि. मेहता! आपके सपूत तो विदा हो गये लेकिन मुझे अभी मालूम हुआ कि आपकी देवीजी राजद्रोह के मैदान में उनसे भी दो कदम आगे हैं; बल्कि मैं तो कहूँगा, वह केवल रेकर्ड हैं, जिसमे देवीजी की आवाज ही बोल रही हैं। मैं नहीं चाहता कि जो व्यक्ति रियासत का संचालक हो, उसके साये में रियासत के विद्रोहियों को आश्रय मिले। आप खुद इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते। यह हरगिज मेरा अन्याय न होगा, यदि मैं अनुमान कर लूँ कि आप ही ने यह मंत्र फूँका हैं।

मि. मेहता अपनी स्वामिभक्ति पर यह आक्षेप न सह सके। व्यथित कंठ से बोले- यह तो मैं किस जबान से कहूँ कि दीनबन्धु इस विषय में मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं, लेकिन मैं सर्वथा निर्दोष हूँ और मुझे यह देखकर दुःख होता है कि मेरी वफादारी पर यों सन्देह किया जा रहा हैं।

'वफादारी केवल शब्दों से नही होती।'

'मेरा ख्याल हैं कि मैं उसका प्रमाण दे चुका।'

'नयी-नयी दलीलों के लिए नये-नये प्रमाणों की जरूरत हैं। आपके पुत्र के लिए जो दंड-विधान था, वही आपकी स्त्री के लिए भी हैं। मैं इसमें किसी भी तरह का उज्र नहीं चाहता। और इसी वक़्त इस हुक्म की तामील होनी चाहिए।'

'लेकिन दीनानाथ...'

'मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

'मुझे कुछ निवेदन करने का आज्ञा न मिलेगी?'

'बिलकुल नहीं, यह मेरा आखिर हुक्म हैं।'

मि. मेहता यहाँ से चले, तो उन्हें सुनीता पर बेदह गुस्सा आ रहा था। इन सभी को न जाने क्या सनक सवार हो गयी हैं। जयकृष्ण तो खैर बालक हैं, बेसमझ हैं, इस बुढ़िआ को क्या सूझी। न-जाने रानी साहब से जाकर क्या कह आयी । किसी को मुझसे हमदर्दी नहीं, सब अपनी अपनी धुन में मस्त हैं। किस मुसीबत से मैं अपनी जिन्दगी के दिन काट रहा हूँ यह कोई नहीं समझता। कितनी निराशा और विपत्ति के बाद जहाँ जरा निश्चित हुआ था कि इन सभी ने यह नया तूफान खड़ा कर दिया। न्याय और सत्य का ठीका क्या हमीं ने लिया हैं? यहाँ भी वही हो रहा हैं, जो सारी दुनिया में हो रहा हैं! कोई नयी बात नहीं हैं।

संसार में दुर्बल और द्ररिद्र होना पाप हैं। इसकी सजा से कोई बच नहीं सकता। बाज कबूतर पर कभी दया नहीं करता। सत्य और न्याय का समर्थन मनुष्य की सज्जनता और सभ्यता का एक अंग हैं। बेशक इससे इनकार नहीं कर सकता;लेकिन जिस तरह और सभी प्राणी केवल मुख से इसका समर्थन करते हैं, क्या उसी तरह हम भी नहीं कर सकते। और जिन लोगों का पक्ष लिया जाय, वे भी तो कुछ इसका महत्त्व समझे। आज राजा साहब इन्हीं बेगारों से जरा हँसकर बातें करें, तो वे अपने सारे दुखड़े भूल जायँगें और उल्टे हमारे शत्रु बन जायँगे। शायद सुनीता महारानी के पास जाकर अपने दिल का बुखार निकाल आयी हैं। गधी यह नहीं समझती कि दुनिया में किसी तरह मान-मर्यादा का निर्वाह करते हुए जिन्दगी काट लेना ही हमारा धर्म हैं। अगर भाग्य में यश और कीर्ति बदी होती, तो इस तरह दूसरों की गुलामी क्यो करता? लेकिन समस्या यह हैं कि इसे भेजू कहाँ! मैके में कोई हैं नहीं, घर में कोई हैं नहीं! उह! अब मैं इस चिंता में कहाँ तक मरूँ। जहाँ जी चाहे जाय, जैसा किया वैसा भोगे।

वह इसी क्षोम और ग्लानि की दशा में घर गये और सुनीता से बोले- आखिर तुम्हें भी वही पागलपन सूझा, जो उस लौड़े को सूझा था। मैं कहता हूँ, आखिर तुम्हें कभी समझ आयेगी या नहीं? क्या सारे संसार के सुधार का बीड़ा हमीं ने उठाया हैं? कौन राजा ऐसा हैं, जो अपनी प्रजा पर जुल्म न करता हो, उनके स्वत्वों का अपहरण न करता हो। राजा ही क्यों, हम तुम सभी तो दूसरों पर अन्याय कर रहे हैं। तुम्हें क्या हक हैं कि तुम दर्जन खिदमतगार रखो और उन्हें जरा-जरा-सी बात पर सजा दो? न्याय और सत्य निरर्थक शब्द हैं, जिनकी उपयोगिता इसके सिवा और कुछ नहीं कि बुद्धूओं की गर्दन मारी जाय और समझदारों की वाह-वाह हो। तुम और तुम्हारा लड़का उन्हीं बुद्धूओं में हैं। और इसका दंड तुम्हें भोगना पड़ेगा। महाराज का हुक्म हैं कि तुम तीन घंटे के अन्दर सियासत से निकल जाओ नहीं तो पुलिस आकर तुम्हें निकाल देगी। मैंने तो तय कर लिया हैं कि राजा साहब की इच्छा के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से न निकालूँगा। न्याय का पक्ष लेकर देख लिया हैं। हैरानी और अपमान के सिवा और कुछ हाथ न आया। जिनकी हिमायत की थी, वे आज भी उसी में हैं; बल्कि उससे भी और

बदतर। मैं साफ कहता हूँ कि मैं तुम्हारी उद्दंडताओं का तावान देने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं गुप्त रूप से तुम्हारी सहायता करता रहूँगा। इसके सिवा मैं और कुछ नहीं कर सकता।

सुनीता ने गर्व के साथ कहा- मुझे तुम्हारे सहायता की जरूरत नहीं। कहीं भेद खुल जाय, तो दीन-बन्धु तुम्हारे ऊपर कोप का बज्र गिरा दे। तुम्हें अपना पद और सम्मान प्यारा हैं, उसका आनन्द से उपभोग करो। मेरा लड़का और कुछ न कर सकेगा, तो पाव-भर आटा तो कमा ही लायेगा। मैं भी देखूँगी कि तुम्हारी स्वामी भक्ति कब तक निभती हैं औऱ कब तक तुम अपनी आत्मा की हत्या करते हो।

मेहता ने तिलमिलाकर कहा- क्या तुम चाहती हो कि फिर उसी तरह चारों तरफ ठोकरें खाता फिरूँ?

सुनीता ने घाव पर नमक छिड़का- नहीं, कदापि नहीं। अब तक तो मैं समझती थी, तुम्हें ठोकरें खाने में मजा आता हैं तथा पद और अधिकार से भी मूल्यवान कोई वस्तु तुम्हारे पास हैं, जिसकी रक्षा के लिए तुम ठोकरें खाना अच्छा समझते हो। अब मालूम हुआ; तुम्हें अपना पद अपनी आत्मा से भी प्रिय हैं। फिर क्यों ठोकरें खाओ; मगर कभी-कभी अपना कुशल-समाचार भेजते रहोगे, या राजा साहब की आज्ञा लेनी पडेगी?

'राजा साहब इतने न्याय-शून्य हैं कि मेरे पत्र-व्यवहार में रोक-टोक करें?'

'अच्छा! राजा साहब में इतनी आदमीयत हैं? मुझे तो विश्वास नहीं आता।'

'तुम अब भी अपनी गलती पर लज्जित नहीं हो?'

'मैंने कोई गलती नहीं की। मैं तो ईश्वर से चाहती हूँ कि जो मैने आज किया वह बार-बार करने का मुझे अवसर मिले'

मेहता ने अरुचि से पूछा- 'तुमने कहाँ जाने का इरादा किया हैं?'

'जहन्नुम में!'

'गलती आप करती हो, गुस्सा मुझ पर उतारती हो?'

'मैं तुम्हें इतनी निर्लज्ज न समझती थी!'

'मैं भी इसी शब्द का तुम्हारे लिए प्रयोग कर सकता हूँ।'

'केवल मुख से, मन से नही'

मि. मेहता लज्जित हो गये।

3

जब सुनीता का विदाई का समय आया, तो स्त्री-पुरुष दोनों खूब रोये और एक तरह से सुनीता ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। वास्तव में इस बेकारी के दिनों में मेहता ने जो कुछ किया; वही उचित था, बेचारे कहाँ मारे-मारे फिरते।

पोलिटिकल एजेंट साहब पधारे और कई दिनों तक दावतें खायी और खूब शिकार खेला। राजा साहब ने उनकी तारीफ थी। उन्होंने राजा साहब की तारीफ की। राजा साहब ने उन्हें लायलटी की विश्वास दिलाया, उन्होंने सतिया राज्य को आदर्श कहा और राजा साहब को न्याय और सेवा का अवतार स्वीकार किया और तीन दिन में रियासत को ढ़ाई लाख की चपत देकर विदा हो गये।

मि. मेहता का दिमाग आसमान पर था। सभी उनकी कारगुजारी की प्रशंसा कर रहे थे। एजेंट साहब तो उनकी दक्षता पर मुग्ध हो गये। उन्हें 'राय साहब' की उपाधि मिली और उनके अधिकारों में भी वृद्धि हुई। उन्होंने अपनी आत्मा को उठाकर ताक पर रख दिया था। उनकी यह साधना कि महाराज और एजेंट दोनों

प्रसन्न रहे, सम्पूर्ण रीति से पूरी हो गयी। रियासत में ऐसा स्वामि-भक्त सेवक दूसरा न था।

राजा साहब अब कम-से-कम तीन साल के लिए निश्चिन्त थे। एजेंट खुश हैं, तो फिर किसका भय! कामुकता, लम्पटता और भाँति-भाँति के दुर्व्यसनों की लहर प्रचंड हो उठी। सुन्दरियों की टोह लगाने के लिए सुरागरसानों का एक विभाग खुल गया, जिसका सम्बन्ध सीधे राजा साहब से था। एक बूढ़ा खुर्राट, जिसका पेशा हिमालय की परियों को फँसाकर राजाओं को लूटना था और जो इस पेशे की बदौलत राज-दरवारों में पूजा जाता था, इस विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। नयी-नयी चिड़ियाँ आने लगी। भय, लोभ और सम्मान सभी अस्त्रों से शिकार खेला जाने लगा; लेकिन एक ऐसा अवसर भी पड़ा, जहाँ इस तिकड़म की सारी सामूहिक औऱ वैयक्तिक चेष्टाएँ निष्फल हो गयी और गुप्त विभाग ने निश्चय किया कि इस बालिका को किसी तरह उड़ा लाया जाय। और इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन का भार मि. मेहता पर रखा गया, जिनसे ज्यादा स्वामि-भक्त सेवक रियासत में दूसरा न था। उनके ऊपर महाराजा साहब को पूरा विश्वास था। दूसरों के विषय में सन्देह था कि कहीं रिश्वत लेकर शिकार बहका दें या भंडाफोड़ कर दें, या अमानत में खयानत कर बैठें। मेहता की और से उन बातों की शंका न थी। रात को नौ बजे उनकी तलबी हुई- अन्नदात ने हुजूर को याद किया हैं।

मेहता साहब ड्योढ़ी पर पहुँचे, तो राजा साहब पाईबाग में टहल रहे थे। मेहता को देखते ही बोले- आइए मि. मेहता, आपसे एक खास बात में सलाह लेनी हैं। यहाँ कुछ लोगों की राय हैं कि सिंहद्वार के सामने आपकी एक प्रतिमा स्थापित की जाय, जिससे चिरकाल तक आपकी यादगार कायम रहे। आपको तो शायद इसमें कोई आपत्ति न होगी। और यदि हो भी तो लोग इस विषय में आपकी अवज्ञा करने पर भी तैयार हैं। सतिया की आपने जो अमूल्य सेवा की हैं, उसका पुरस्कार तो कोई क्या दे सकता हैं, लेकिन जनता के हृदय में आपसे जो श्रद्धा हैं, उसे तो वह किसी-न-किसी रूप में प्रकट ही करेगी।

मेहता ने बड़ी नम्रता से कहा- यह अन्नदाता की गुण-माहकता हैं, मैं तो एक तुच्छ सेवक हूँ। मैने जो कुछ किया, यह इतना ही हैं कि नमक का हक अदा करने का सदैव प्रयत्न किया, मगर मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूँ।

राजा साहब ने कृपालु भाव से हँसकर कहा- आप योग्य है, या नहीं इसका निर्णय आपके हाथ में नहीं हैं मि. मेहता, आपकी दीवानी यहाँ न चलेगी। हम आपका सम्मान नहीं कर रहें हैं, अपनी भक्ति का परिचय दे रहे हैं। थोड़े दिनों में न हम रहेंगे, न आप रहेंगे, उस वक़्त भी यह प्रतिमा अपनी मूक वाणी से कहती रहेगी कि पिछले लोग अपने उद्धारकों का आदर करना जानते थे। मैंने लोगों से कह दिया हैं कि चन्दा जमा करें। एजेंट ने अबकी जो पत्र लिखा हैं, उसमें आपको खास तौर से सलाम लिखा हैं।

मेहता ने जमीन में गड़कर कहा- यह उनकी उदारता हैं, मैं तो जैसा आपका सेवक हूँ, वैसा ही उनका सेवक हूँ।

राजा साहब कई मिनट तक फूलों की बहार देखते रहे। फिर इस तरह बोले मानो कोई भूली हुए बात याद आ गई हो- तहसील खास में एक गाँव लगनपुर हैं, आप कभी वहाँ गये हैं?

'हाँ अन्नदाता! एक बार गया हूँ, वहाँ एक धनी साहूकार है। उसी के दीवानखाने मे ठहरा था। अच्छा आदमी हैं।'

'हाँ, ऊपर से बहुत अच्छा आदमी हैं; लेकिन अन्दर से पक्का पिशाच। आपको शायद मालूम न हो, इधर कुछ दिनों से महारानी का स्वास्थ्य बहुत बिगड गया हैं और मैं सोच रहा हूँ कि उन्हें किसी सैनेचोरियम भेज दूँ। वहाँ सब तरह की चिन्ताओं एवं झंझटो से मुक्त होकर वह आराम से रह सकेंगी, लेकिन रनिवास में एक रानी का रहना लाजिम हैं। अफसरों के साथ उनकी लेडियाँ भी आती हैं, और भी कितने अंग्रेज मित्र अपनी लेडियों के साथ मेरे मेहमान होते हैं। कभी राजे-महाराजे भी रानियों के साथ आ जाते हैं। रानी के बगैर लेड़ियों का आदर-

सत्कार कौन करेगा? मेरे लिए यह वैयक्तिक प्रश्न नहीं, राजनैतिक समस्या हैं, और शायद आप भी मुझसे सहमत होगे, इसलिए मैने दूसरी शादी करने का इरादा कर लिया हैं। उस साहुकार की एक लड़की हैं, जो कुछ दिनों अजमेर में शिक्षा पा चुकी हैं। मैं एक बार उस गाँव से होकर निकला, तो मैने उसे अपने घर की छत पर खड़ी देखा । मेरे मन में तुरन्त भावना उठी की अगर यह रमणी रनिवास में आ जाय, तो रनिवास की शोभा बढ़ जाय। मैने महारानी से अनुमति लेकर साहूकार के पास सन्देशा भेजा, लेकिन मेरे द्रोहियों ने उसे कुछ ऐसी पट्टी पढ़ा दी कि उसने मेरा सन्देशा स्वीकार न किया। कहता हैं, कन्या का विवाह हो चुका हैं। मैने कहला भेजा, इसमें कोई हानि नहीं, मैं तावान देने को तैयार हूँ, लेकिन दुष्ट बराबर इनकार किये जाता हैं। आप जानते है; प्रेम असाध्य रोग हैं। आपको भी शायद इसका कुछ-न-कुछ अनुभव हो। बस; यह समझ लीजिए कि जीवन निरानन्द हो रहा हैं। नींद और आराम हराम हैं। भोजन से अरुचि हो गयी हैं। अगर कुछ दिन यही हाल रहा, तो समझ लीजिए कि मेरी जान पर बन आयेगी। सोते-जागते वही मूर्ति आँखों के सामने नाचती रहती हैं। मन को समझाकर हार गया और अब विवश होकर मैने कूटनीति से काम लेने का निश्चय किया हैं। प्रेम और समर में सब कुछ क्षम्य हैं। मैं चाहता हूँ , आप थोड़े-से मताबर आदमियों को लेकर जायँ और उस रमणी को किसी तरह ले लायँ। खुशी से आये खुशी से, बल से आये बल से, इसकी चिन्ता नहीं। मैं अपने राज्य का मालिक हूँ। इसमें जिस वस्तु पर मेरी इच्छा हो, उस पर किसा दूसरे क्यक्ति का नैतिक या सामाजिक स्वत्व नहीं हो सकता। यह समझ लीजिए कि आप ही मेरे प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। कोई दूसरा ऐसा आदमी नहीं हैं, जो इस काम को इतने सुचारू रूप से पूरा कर दिखाये। आपने राज्य की बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं! यह उस यज्ञ की पूर्णाहूति होगी और आप जन्म-जन्मान्तर तक राजवंश के इष्टदेव समझे जायँगे।'

मि. मेहता का मरा हुआ आत्म-गौरव एकाएक सचेत हो गया। जो रक्त चिरकाल से प्रवाह शून्य हो गया था, उसमें सहसा उद्रेक हो उठा। त्योरियाँ चढ़ाकर बोले- तो आप चाहते हैं, मैं उसे किडनैप करूँ?

राजा साहब ने उनके तेवर देखकर आग पर पानी डालते हुए कहा- कदापि नहीं मि. मेहता, आप मेरे साथ घोर अन्याय कर रहे हैं! मैं आपको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज रहा हूँ। कार्य-सिद्धि के लिए आप जिस नीति से चाहे, काम ले सकते हैं। आपको पूरा अधिकार हैं।

मि. मेहता ने और भी उत्तेजित होकर कहा- मुझसे ऐसा पाजीपन नहीं हो सकता।

राजा साहब की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी।

'अपने स्वामी की आज्ञा-पालन करना पाजीपन हैं?'

'जो आज्ञा नीति और धर्म के विरुद्ध हो उसका पालन करना बेशक पाजीपन हैं।'

'किसी स्त्री से विवाह का प्रस्ताव करना नीति और धर्म के विरुद्ध हैं?'

'इसे आप विवाह कहकर विवाह शब्द को कलंकित करते हैं। यह बलात्कार हैं।'

'आप-अपने होश में हैं?'

'खूब अच्छी तरह?'

'मैं आपको धूल में मिटा सकता हूँ?'

'तो आपकी गद्दी भी सलामत न रहेगी।'

'मेरी नेकियों का यही बदला हैं, नमकहराम?'

'आप अब शिष्टता की सीमा से आगे बढ़े जा रहे हैं; राजा साहब! मैने अब तक अपनी आत्मा की हत्या की हैं और आपके हर एक जा और बेजा हुक्म की

तामील की हैं; लेकिन आत्मसेवा की भी एक हद होती हैं, जिसके आगे कोई भला आदमी नहीं जा सकता। आपका यह कृत्य जघन्य हैं और इसमें जो व्यक्ति आपका सहायक हो, वह इसी योग्य हैं कि उसकी गर्दन काट ली जाय। मैं ऐसी नौकरी पर लागन भेजता हूँ।'

यह कहकर वह घर आये और रातों-रात बोरिया-बकचा समेटकर रियासत से निकल गये; मगर इसके पहले सारा वृत्तान्त लिखकर उन्होंने एजेंट के पास भेज दिया।

***

मुफ्त का यश

उन दिनों संयोग से हाकिम-जिला एक रसिक सज्जन थे। इतिहास और पुराने सिक्कों की खोज में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। ईश्वर जाने दफ्तर के सूखे कामों से उन्हें ऐतिहासिक छान-बीन के लिए कैसे समय मिल जाता था। वहाँ तो जब किसी अफसर से पूछिए , तो वह यही कहता है - 'मारे काम के मरा जाता हूँ, सिर उठाने की फुरसत नही मिलती।' शायद शिकार और सैर भी उनके काम में शामिल है ? उन सज्जन की कीर्तियाँ मैने देखी थी और मन में उनका आदर करता था; लेकिन उनकी अफसरी किसी प्रकार की घनिष्ठता में बाधक थी। मुझे यह संकोच था कि अगर मेरी ओर से पहल हुई तो लोग यहीं कहेंगे कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ है और मैं किसी दशा में भी यह इलजाम अपने सिर नही लेना चाहता। मैं तो हुक्काम की दावतों और सार्वजनिक उत्सवों में नेवता देने का भी विरोधी हूँ और जब कभी सुनता हूँ कि किसी अफसर को किसी आम जलसे का सभापति बनाया गया या किसी स्कूल, औषधालय या विधवाश्रम किसी गवर्नर के नाम से खोला गया, तो अपने देश-बन्धुओं की दास-मनोवृत्ति पर घंटो अफसोस करता हूँ; मगर जब एक दिन हाकिम-जिला ने खुद मेरे नाम एक रुक्का भेजा कि मै आपसे मिलना चाहता हूँ; क्या आप मेरे बँगले पर आने का कष्ट करेगे, तो मै दुविधे में पड़ गया। क्या जवाब दूँ ? अपने दो-एक मित्रों से सलाह ली। उन्होंने कहा - 'साफ लिख दीजिए, मुझे फुरसत नही। वह हाकिम-जिला होगें, तो अपने घर के होंगे, कोई सरकारी वा जाब्ते का काम होता, तो आपका जाना अनिवार्य था; लेकिन निजी मुलाकात के लिए जाना आपकी शान के खिलाफ है। आखिर वह खुद आपके मकान पर क्यों नही आये ? इससे क्या उनकी शान में बट्टा लगा जाता था? इसीलिए तो खुद नही आये कि वह हाकिम-जिला है। इन अहमक हिन्दुस्तानियों को कब समझ आयेगी कि दफ्तर के बाहर वे भी वैसे ही साधारण मनुष्य है, जैसे हम या आप। शायद ये लोग अपनी घरवालियों से भी

अफसरी जताते होंगे। अपना पद उन्हें कभी नही भूलता ।'

एक मित्र ने, जो लतीफों के चलते-फिरते तिजोरी है, हिन्दुस्तानी अफसरों के विषय में कई मनोरंजक घटनाएँ सुनायीं। एक अफसर साहब ससुराल गये। शायद स्त्री को विदा कराना था। जैसा आम रिवाज हैं, ससुर जी ने पहले ही वादे पर लड़की को विदा करना उचित न समझा। कहने लगे- बेटा, इतने दिनों के बाद आयी हैं, अभी विदा कर दूँ? भला, छः महीनें तो रहने दो। उधर धर्मपत्नीजी ने भी नाइन से सन्देश कहला भेजा- अभी मैं नही जाना चाहती। आखिर माता-पिता से भी तो मेरा कोई नाता हैं। कुछ तुम्हारें हाथ बिक थोड़े ही गयी हूँ? दामाद साहब अफसर थे, जामे से बाहर हो गये। तुरन्त घोड़े पर बैठे और सदर की राह ली। दूसरे ही दिन ससुरजी पर सम्मन जारी कर दिया। बेचारा बूढ़ा आदमी तुरन्त लड़की को साथ लेकर दामाद की सेवा में जा पहुँचा। तब जाके उसकी जान बची। ये लोग ऐसे मिथ्याभिमानी होते हैं और फिर तुम्हें हाकीम-जिला से लेना ही क्या हैं? अगर तुम कोई विरोधात्मक गल्प या लेख लिखोगे, तो फौरन गिरफ्तार कर लिये जाओगे। हाकिम-जिला जरा भी मुरौवत न करेंगे। कह देंगे- यह गवर्नमेंट का हुक्म हैं, मैं क्या करूँ? अपने लड़के के लिए कानूनगोई या नायब तहसीलदारी का लालसा तुम्हें हैं नहीं। व्यर्थ क्यों दौड़े जाओ।

लेकिन, मुझे मित्रों की यह सलाह पसन्द न आयी। एक भला आदमी जब निमंत्रण देता हैं, तो केवल इसलिए अस्वीकार कर देना कि हाकिम-जिला हैं ने भेजा हैं, मुटमर्दी हैं। बेशक हाकिम-जिला मेरे घर आ जाते, तो उनकी शान कम न होती। उदार हृदय वाला आदमी बेतकल्लुफ चला आता; लेकिन भाई जिले की अफसरी बड़ी चीज हैं। और एक उपन्यासकार की हस्ती ही क्या हैं। इंगलैंड या अमेरिका में गल्प लेखकों और उपन्यासकारों की मेज पर निमंत्रण होने में प्रधानमंत्री भी अपना गौरव समझेगा, हाकिम-जिला की तो गिनती ही क्या हैं? लेकिन यह भारतवर्ष हैं, जहाँ हर रईस के दरबार में कवि-सम्राटों का जत्था रईस के कीर्तिमान के लिए जमा रहता था और आज भी ताजपोशी में हमारे लेखक-

वृन्द बिना बुलाये राजाओं की खिदमत में हाजिर होते हैं, कसीदे पढ़ते हैं और इनाम के लिए हाथ पसारते हैं। तुम ऐसे कहाँ के बड़े हो कि हाकिम-जिला तुम्हारे घर चला आये। जब तुममें इतनी अकड़ और तुनकमिजाजी हैं, तो वह तो जिले का बादशाह हैं। अगर उसे कुछ अभिमान भी हो, तो उचित हैं। इसे उसकी कमजोरी कहो, बेहूदगी कहो, मूर्खता कहो, फिर भी उचित हैं। देवता होना गर्व की बात हैं; लेकिन मनुष्य होना भी अपराध नहीं।

और मैं तो कहता हूँ- ईश्वर को धन्यवाद दो कि हाकिम-जिला तुम्हारे घर नहीं आये; वरना तुम्हारी कितनी भद होती। उनके आदर-सत्कार का सामान तुम्हारे पास कहाँ था? गत की एक कुर्सी भी नही हैं। उन्हें क्या तीन टाँगोंवाले सिहासन पर बैठाते या मटमैले जाजिम पर? तीन पैसे की चौबिस बीड़ियाँ पीकर दिल खुश कर लेते हो। है सामर्थ्य रुपये के दो सिगार खरीदने की? तुम तो इतनी भी नहीं जानते कि वह सिगार मिलता कहाँ हैं; उसका नाम क्या हैं। अपना भाग्य सराहो कि अफसर साहब तुम्हारे घर नहीं आये और तुम्हे बुला लिया। चार-पाँच रुपये बिगड़ भी जाते और लज्जित भी होना पड़ता। और कहीं तुम्हारे परम दुर्भाग्य और पापों के दंड स्वरूप उनकी धर्मपत्नी भी उनके साथ होती, तब तो तुम्हें धरती में समा जाने के सिवा और कोई ठिकाना न था। तुम या तुम्हारी धर्मपत्नी उस महिला का सत्कार कर सकती थी? तुम्हारी तो घिग्घी बँध जाती साहब, बदहवास हो जाते! वह तुम्हारे दीवानेखाने तक ही न रहती जिसे तुमने गरीबामऊ ढंग से सजा रखा हैं। वहाँ गरीबी अवश्य हैं, पर फूहड़पन नहीं। अन्दर तो पग-पग पर फूहड़पन के दृश्य नजर आते । तुम अपने फटे पुराने पहनकर औ़र अपनी विपन्नता में मगन रह कर जिन्दगी बसर कर सकते हो; लेकिन कोई भी आत्माभिमानी आदमी यह पसन्द नहीं कर सकता कि उसकी दुरावस्था दूसरों के लिए विनोद की वस्तु बने। इन लेडी साहबा के सामने तो तुम्हारी जबान बंद हो जाती।

चुनाँचे मैंने हाकिम-जिला का निमंत्रण स्वीकार कर लिया और यद्यपि उनके

स्वभाव में कुछ अनावश्यक अफसरी की शान थी; लेकिन उनके स्नेह और उदारता ने उसे यथासाध्य प्रकट न होने दिया। कम-से-कम उन्होंने मुझे शिकायत का कोई मौका न दिया। अफसराना प्रकृति को तब्दील करना उनकी शक्ति के बाहर था।

मुझे इस प्रंसंग को कोई महत्व देने की कोई बात भी न थी, महत्व न दिया । उन्होंने मुझे बुलाया, मैं चला गया। कुछ गप-शप किया और लौट आया। किसी से इसकी जिक्र करने की जरूरत ही क्या? मानो भाजी खरीदने बाजार गया था।

लेकिन टोहियों ने जाने कैसे टोह लगा लिया। विशेष समुदायों में यह चर्चा होने लगी कि हाकिम-जिला और मेरी बड़ी गहरी मैत्री हैं। और वह मेरा बड़ा सम्मान करते हैं। अतिशयोक्ति ने मेरा सम्मान और भी बड़ा दिया। यहाँ तक मशहुर हुआ कि वह मुझसे सलाह लिये बगैर कोई फैसला या रिपोर्ट नहीं लिखते।

कोई भी समझदार आदमी इस ख्याति से लाभ उठा सकता था। स्वार्थ में आदमी बावला हो जाता हैं। तिनके का सहारा ढूँढता फिरता हैं। ऐसों को विश्वास दिलाना कुछ मुश्किल न था कि मेरे द्वारा उनका काम निकल सकता हैं, लेकिन मैं ऐसी बातों से घृणा करता हूँ? सैकड़ो व्यक्ति अपनी कथाएँ लेकर मेरे पास आये। किसी के साश पुलिस ने बेजा ज्यादती की। कोई इन्कम टैक्स वालों की सख्तियों से दुःखी था, किसी की यह शिकायत थी कि दफ्तर में उसकी हकतलफी हो रही हैं। और उसके पीछे के आदमियों को दनादन तरक्कियाँ मिल रही हैं। उसका नम्बर आता हैं, तो कोई परवाह नही करता। इस तरह का कोई-न-कोई प्रसंग नित्य ही मेरे पास आने लगा, लेकिन मेरे पास उन सबके लिए एक ही जवाब था- मुझसे मतलब नहीं।

एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा था, कि मेरे बचपन के एक सहपाठी मित्र आ टपके। हम दोनों एक ही मकतब में पढ़ने जाया करते थे। कोई 45 साल की पुरानी बात हैं। मेरी उम्र 19 साल से अधिक न थी। वह भी लगभग इसी उम्र के रहे होगें; लेकिन मुझसे कहीं बलवान और हृष्ट-पुष्ट । मै जहीन था, वह निरे

कौदन। मौलवी साहब उनसे हार गये थे। और उन्हें सबक पढ़ाने का भार मुझ पर डाल दिया था। अपने से दुगने व्यक्ति को पढ़ाना मैं अपने लिए गौरव की बात समझता था और खूब मन लगा कर पढ़ाता था। फल यह हुआ कि मौलवी साहब की छड़ी जहाँ असफल रही, वहाँ मेरा प्रेम सफल हो गया। बलदेव चल निकला, खालिकबारी तक जा पहुँचा, मगर इस बीच में मौलवी साहब का स्वर्गवास हो गया और शाखा टूट गयी। उनके छात्र भी इधर-उधर हो गये। तब से बलदेव को केवल मैंने दो-तीन बार रास्ते में देखा, (मैं अब भी वहीं सीकिया पहलवान हूँ और वह अब भी वही भीमकाय) राम-राम हुई, क्षेम-कुशल पूछा और अपनी-अपनी राह चले गये।

मैने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा- आओ भाई बलदेव, मजे में तो हो? कैसे याद किया, क्या करते हो आजकल?

बलदेव ने व्यथित कंठ से कहा- जिन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं भाई, और क्या। तुमसे मिलने को बहुत दिनों से इच्छा थी। याद करो वह मकतबवाली बात, जब तुम मुझे पढ़ाया करते थे। तुम्हारी बदौलत चार अक्षर पढ़ गया औऱ अपनी जमींदारी का काम सँभाल लेता हूँ, नहीं तो मूर्ख ही बना रहता। तुम मेरे गुरु हो भाई, सच कहता हूँ; मुझ जैसे गधे को पढ़ाना तुम्हारा ही काम था। न जाने क्या बात थी कि मौलवी साहब से सबक पढ़कर अपनी जगह पर आया नहीं कि बिल्कुल साफ। तुम पढ़ाते थे, वह बिना याद किये ही याद हो जाता था । तुम तब भी बड़े जहीन थे।

यह कहकर उन्होंने मुझे सगर्व-नेत्रों से देखा।

मैं बचपन के साथियों को देखकर फूल उठता हूँ। सजल नेत्र होकर बोला- मैं तो जब तुम्हें देखता हूँ, तो यहीं जी में आता हैं कि दौड़कर तुम्हारे गले लिपट जाऊँ। 45 वर्ष का युग मानो बिल्कुल गायब हो जाता हैं। वह मकतब आँखों के सामने फिरने लगता हैं। औऱ बचपन सारी मनोहरता के साथ ताजा हो जाता हैं।

बलदेव ने भी द्रवित कंठ से उत्तर दिया- मैंने तो भाई, तुम्हें सदैव अपना इष्टदेव समझा हैं। जब तुम्हें देखता हूँ, तो छाती गज-भर की हो जाती हैं कि मेरा बचपन का संगी जा रहा हैं, जो समय आ पड़ने पर कभी दगा न देगा। तुम्हारी बड़ाई सुन-सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो जाता हूँ, लेकिन यह बताओ, क्या तुम्हें खाना नही मिलता? कुछ खाते-पीते क्यों नहीं? सूखते क्यों जाते हो? घी न मिलता हो, तो दो-चार कनस्तर भिजवा दूँ। जब तुम भी बूढे हुए, खूब डटकर खाया करो। अब तो देह में जो कुछ तेज और बल हैं, वह केवल खाने के अधीन हैं। मै तो अब भी सेर-भर दूध और पाव-भर घी उड़ाये जाता हूँ। इधर थोड़ा मक्खन भी खाने लगा हूँ । जिन्दगी-भर बाल-बच्चों के लिए मर मिटे। अब कोई यह भी नहीं पूछता कि तुम्हारी तबीयत कैसी हैं। अगर आज कंधा डाल दूँ, तो कोई एक लोटे पानी को न पूछें। इसलिए खूब खाता हूँ और सबसे ज्यादा काम करता हूँ। घर पर अपना रोब बना हुआ हैं। वही जो तुम्हारा जेठा लड़का हैं, उस पर पुलिस ने एक झूठा मुकदमा चला दिया हैं। जवानी के मद में किसी को कुछ समझता नहीं। तब से घात में लगे हुए थे। इधऱ गाँव में एक डाका पड़ गया। दारोगाजीन ने तहकीकात में उसे फाँस लिया। आज एक सप्ताह से हिरासत में हैं। मुकदमा मुहम्मद खलीफ, डिप्टी के इलजास में हैं और मुहम्मद खलीफ और दारोगाजी में दाँत-काटी रोटी हैं। अवश्य सजा हो जायेगी। अब तुम्हीं बचाओ, तो उसकी जान बच सकती हैं। और कोई आशा नहीं हैं। सजा तो जो होगी वह होगी; इज्जत भी खाक में मिल जायगी। तुम जाकर हाकिम-जिला से इतना कह दो कि मुकदमा झूठा हैं, आप खुद चलकर तहकीकात कर ले! बस, देखो भाई, बचपन के साथी हो, 'नहीं' न करना। जानता हूँ, तुम इन मुआमलों में नही पड़ते औऱ तुम्हारे-जैसे आदमी को पड़ना भी न चाहिए। तुम प्रजा की लड़ाई लड़ने वाले जीव हो, तुम्हे सरकार के आदमियों से मेल-जोल बढ़ाना उचित नहीं; नहीं तो जनता की नजरों से गिर जाओगे। लेकिन यह घर का मुआमला हैं। इतना समझ लो कि मुआमला बिल्कुल झूठा न होता, तो मैं कभी तुम्हारे पास न आता। लड़के की माँ रो-रोकर जान दिये डालती हैं, बहू ने दाना-पानी छोड़ रखा हैं। सात दिन से घर में चूल्हा नही जला। मैं तो थोड़ा-सा दूध पी लेता हूँ, लेकिन सास-बहू तो निराहार पड़ी हुई हैं, अगर बच्चा को सजा हो गयी, तो दोनों मर जाएगी। मैने यहीं कहकर ढाढस दिया हैं

कि जब तक हमारा छोटा भाई सलामत हैं, कोई हमारा बाल बाँका नही कर सकता । तुम्हारी भाभी ने तुम्हारी एक पुस्तक पढ़ी हैं। वह तो तुम्हें देव तुल्य समझती हैं और जब कोई बात होती हैं, तुम्हारी नजीर देकर मुझे लज्जित करती हैं। मैं भी साफ कह देता हूँ- मैं उस छोकरे की-सी बुद्धि कहाँ से लाऊँ? तुम्हें उसकी नजरों से गिराने के लिए तुम्हें छोकरा, मरियल सभी कुछ कहता हूँ, पर तुम्हारे सामने मेरा रंग नहीं जमता।

मैं बड़े संकट में पड़ गया। मेरी ओर से जिनती आपत्तियाँ हो सकती थी, उस सबका जवाब बलदेवसिंह ने पहले ही से दे दिया था। इनको फिर दुहराना व्यर्थ था। इसके सिवा कोई जवाब न सूझा कि मैं जाकर साहब से कहूँगा। हाँ, इतना मैंने अपनी तरफ से और बढ़ा दिया कि मुझे आशा नहीं कि मेरे कहने का विशेष खयाल किया जाय, क्योंकि सरकारी मुआमलों में हुक्काम हमेशा अपने मातहतों का पक्ष लिया करते हैं।

बलदेवसिंह ने प्रसन्न होकर कहा- इसकी चिन्ता नहीं, तकदीर में जो लिखा हैं, वह तो होगा ही। बस तुम जाकर कह भर दो।

'अच्छी बात हैं।'

'तो कल जाओगे?'

'हाँ अवश्य जाऊँगा?'

'यह जरूर कहना कि आप चलकर तहकीकात कर लें।'

'हाँ, जरूर कहूँगा।'

'और यह भी कह देना कि बलदेवसिंह मेरा भाई हैं।'

'झूठ बोलने के लिए मजबूर न करो।'

'तुम मेरे भाई नहीं हों? मैंने तो हमेशा तुम्हें अपना भाई समझा हैं।'

'अच्छा, यह भी कह दूँगा।'

बलदेवसिंह को विदा करके मैंने अपना खेल समाप्त किया और आराम से भोजन करके लेटा। मैंने उससे गला छुड़ाने के लिए झूठा वादा कर दिया। मेरा इरादा हाकिम-जिला के कुछ कहने का नही था। मैंने पेशबन्दी के तौर पर पहले ही जता दिया था कि हुक्काम आमतौर पर पुलिस के मुआमलों में दखल नहीं देते; इसलिए सजा हो भी गयी, तो मुझे यह कहने की काफी गुंजाइश थी कि साहब ने मेरी बात स्वीकार नहीं की।

कई दिन गुजर गये थे। मैं इस वाकिये को बिल्कुल भूल गया था। सहसा एक दिन बलदेवसिंह अपने पहलवान बेटे के साथ मेरे कमरे मे दाखिल हुए। बेटे नें मेरे चरणों पर सिर रख दिया औऱ अदब से एक किनारे खड़ा हो गया। बलदेवसिंह बोले- बिल्कुल बरी हो गया भैया! साहब ने दारोगा को बुलाकर खूब डाँटा कि तुम भले आदमियों को सताते और बदनाम करते हो। अगर फिर ऐसा झूठा मुकदमा लाये, तो बर्खास्त कर दिये जाओगे। दारोगाजी बहुत झेंपे। मैने झुककर सलाम किया। बचा पर घड़ो पानी पड़ गया। यह तुम्हारी सिफारिश का चमत्कार हैं, भाईजान! अगर तुमने मदद न की होती, तो हम तबाह हो गये थे। यह समझ लो कि तुमने चार प्राणियों की जान बचा ली। मैं तुम्हारे पास बहुत डरते-डरते आया था। लोगो ने कहा- उसके पास नाहक जाते हो, वह बड़ा बेमुरौवत आदमी हैं, उसकी जात से किसी का उपकार नहीं हो सकता। आदमी वह हैं; जो दूसरों का हित करे। वह क्या आदमी हैं, जो किसी की बात सुने ही नहीं। लेकिन भाईजान, मैने किसी की बात न मानी। मेरे दिल में मेरा राम बैठा कह रहा था- तुम चाहे कितने ही रूखे और बेलाग हो; लेकिन मुझ पर अवश्य दया करोगे।

यह कह कर बलदेवसिंह ने अपने बेटे को इशारा किया। वह बाहर गया औऱ एक बड़ा-सा गट्ठर उठा लाया, जिसमें भाँति-भाँति की देहाती सौगातें बँधी हुई थी।

हालाँकि मै बराबर कहे जाता था- तुम ये चीजें नाहक लाये, इनकी क्या जरूरत थी, कितने गँवार हो, आखिर तो ठहरे देहाती, मैने कुछ नही कहा, मैं तो साहब के पास गया भी नहीं, लेकिन कौन सुनता हैं। खोया, दही, मटर की फलियाँ, अमावट, ताजा गुड़ और जाने क्या-क्या आ गया।

मैने कहने को तो एक तरह से कह दिया- मैं साहब के पास गया ही नहीं, जो कुछ हुआ, खुद हुआ, मेरा कोई एहसान नहीं हैं, लेकिन मतलब यह निकाला गया कि मैं केवल नम्रता से और सौगातों को लौटा देने के लिए कोई बहाना ढूँढने के लिए ऐसा कह रहा हूँ। मुझे इतनी हिम्मत न हुई कि मै इस बात का विश्वास दिलाता। इसका जो अर्थ निकाला गया, वहीं मैं चाहता था। मुफ्त का एहसान छोड़ने का जी न चाहता, अन्त में जब मैने जोर देकर कहा कि किसी से इस बात का जिक्र न करना, नहीं तो मेरे पास फरियादों का मेला लग जायगा, तो मानो मैंने स्वीकार कर लिया कि मैं सिफारिश की - और जोरो से की।

***

बासी भात में खुदा का साझा

शाम को जब दीनानाथ ने घर आकर गौरी से कहा कि मुझे एक कार्यालय में पचास रुपये की नौकरी मिल गई हैं, तो गौरी खिल उठी। देवताओं में उसकी आस्था और भी दृढ़ हो गयी। इधर एक साल से बुरा हाल था। न कोई रोजी न रोजगार। घर में जो थोड़े-बहुत गहने थे, वह बिक चुके थे। मकान का किराया सिर पर चढ़ा हुआ था। जिन मित्रों से कर्ज मिल सकता था, सबसे ले चुके थे। साल-भर का बच्चा दूध के लिए बिलख रहा था। एक वक़्त का भोजन मिलता, तो दूसरे जून की चिन्ता होती। तकाजों के मारे बेचारे दीनानाथ को घर से निकलना मुश्किल था। घर से बाहर निकला नहीं, कि चारों ओर से चिथाड़ मच जाती- वाह बाबूजी वाह! दो दिन का वादा करके ले गये थे और आज दो महीने से सूरत नहीं दिखायी! भाई साहब, यह तो अच्छी बात नहीं, आपको अपनी जरूरत का ख्याल हैं, मगर दूसरों की जरूरत का जरा भी ख्याल नहीं? इसी से कहा हैं, दुश्मन को चाहे कर्ज दे दो, दोस्त को कभी न दो। दीनानाथ को ये वाक्य तीरो-से लगते थे और उसका जी चाहता था कि जीवन का अन्त कर डाले. मगर बेजबान स्त्री और अबोध बच्चे का मुँह देखकर कलेजा थाम के रह जाते। बारे, आज भगवान् ने उस पर दया की और संकट के दिन कट गये।

गौरी नें प्रसन्नमुख होकर कहा- मैं कहती थी कि नहीं, ईश्वर सबकी सुधि लेते हैं और कभी-कभी हमारी भी सुधि लेंगे, मगर तुमको विश्वास ही न आया । बोलो, अब तो ईश्वर की दयालुता के कायल हुए?

दीनानाथ ने हठधर्मी करते हुए कहा- यह मेरी दौड़-धूप का नतीजा हैं, ईश्वर की क्या दयालुता? ईश्वर को तो तब जानता, जब कहीं से छप्पर फाड़ कर भेज देते।

लेकिन मुँह से चाहे कुछ करे, ईश्वर के प्रति उसके मन में श्रद्धा उदय हो गये थी।

2

दीनानाथ का स्वामी बड़ा ही रूखा आदमी था और काम में बड़ा चुस्त। उसकी उम्र पचास के लगभग थी और स्वास्थ्य भी अच्छा न था, फिर भी वह कार्यालय में सबसे ज्यादा काम करता। मजाल न थी कि कोई आदमी एक मिनट की देर करे, या एक मिनट भी समय से पहले चला जाय। बीच में 15 मिनट की छुट्टी मिलती थी, उसमें जिसका जी चाहे पान खा ले, या सिगरेट पी ले या जलपान कर ले। इसके अलावा एक मिनट का अवकाश न मिलता था। वेतन पहली तारीख को मिल जाता था। उत्सवों में भी दफ्तर बन्द रहता था और नियत समय के बाद कभी काम न लिया जाता था। सभी कर्मचारियों को बोनस मिलता था और प्राविडेन्ट फंड की भी सुविधा थी। फिर भी कोई आदमी खुश न था। काम या समय की पाबन्दी की किसी को शिकायत न थी। शिकायत थी केवल स्वामी के शुष्क व्यवहार की । कितना ही जी लगाकर काम करो, कितना ही प्राण दे दो, पर उसके बदले धन्यवाद का एक शब्द भी न मिलता था।

कर्मचारियों में और कोई सन्तुष्ट हो या न हो, दीनानाथ को स्वामी से कोई शिकायत न थी। वह घुड़कियाँ और फटकार पाकर भी शायद उतने ही परिश्रम से काम करता था। साल-भर में उसने कर्ज चुका दिये और कुछ संचय भी कर लिया। वह उन लोगों में था, जो थोड़े में भी संतुष्ट रह सकते हैं- अगर नियमित रूप से मिलता जाय। एक रुपया भी किसी खास काम में खर्च करना पड़ता, तो दम्पत्ति में घंटों सलाह होती औऱ बड़े झाँव-झाँव के बाद मंजूरी मिलती थी। बिल गौरी की तरफ से पेश होती, तो दीनानाथ विरोध में खड़ा होता। दीनानाथ की तरफ से पेश होता, तो गौरी उसकी कड़ी आलोचना करती। बिल को पास करा लेना प्रस्तावक की जोरदार वकालत पर मुनसहर था। सर्टिफाई करने वाली कोई तीसरी शक्ति वहाँ न थी।

और दीनानाथ अब पक्का आस्तिक हो गया था। ईश्वर की दया या न्याय में अब उसे कोई शंका न थी। नित्य संध्या करता और नियमित रूप से गीता का

पाठ करता। एक दिन उसके एक नास्तिक मित्र ने जब ईश्वर की निन्दा की, तो उसने कहा- भाई, इसका तो आज तक निश्चय नहीं हो सका ईश्वर हैं या नहीं। दोनो पक्षों के पास इस्पात की-सी दलीले मौजूद हैं; लेकिन मेरे विचार में नास्तिक रहने से आस्तिक रहना कही अच्छा हैं। अगर ईश्वर की सत्ता हैं, तब तो नास्तिकों को नरक के सिवा कहीं ठिकाना नहीं। आस्तिक के दोनों हाथों में लड्डू हैं। ईश्वर है तो पूछना ही क्या , नहीं है, तब भी क्या बिगड़ता हैं। दो-चार मिनट का समय ही तो जाता हैं।

नास्तिक मित्र इस दोरुखी बात पर मुँह बिचकाकर चल दिये।

3

एक दिन जब दीनानाथ शाम को दफ्तर से चलने लगा, तो स्वामी ने उसे अपने कमरे में बुला भेजा और बड़ी खातिर से उसे कुर्सी पर बैठाकर बोला- तुम्हें यहाँ काम करते कितने दिन हुए ? साल-भर तो हुआ ही होगा?

दीनानाथ ने नम्रता से कहा- जी हाँ, तेरहवाँ महीना चल रहा हैं।

'आराम से बैठो, इस वक़्त घर जाकर जलपान करते हो?'

'जी नहीं, मैं जलपान का आदी नही।'

'पान-वान तो खाते ही होगे? जवान आदमी होकर अभी से इतना संयम।'

यह कहकर उसने उसने घंटी बजायी और अर्दली से पान और कुछ मिठाइयाँ लाने को कहा

दीनानाथ को शंका हो रही थी- आज इतनी खातिरदारी क्यों हो रही हैं। कहाँ तो सलाम भी नहीं लेते थे, कहाँ आज मिठाई और पान सभी कुछ मँगाया जा रहा हैं! मालूम होता हैं मेरे काम से खुश हो गये हैं। इस खयाल से उसे कुछ

आत्मविश्वास हुआ और ईश्वर की याद आ गयी। अवश्य परमात्मा सर्वदर्शी और न्यायकारी हैं; नहीं तो मुझे कौन पूछता?

अर्दली मिठाई और पान लाया। दीनानाथ आग्रह से विवश होकर मिठाई खाने लगा।

स्वामी ने मुसकराते हुए कहा- तुमने मुझे बहुत रूखा पाया होगा। बात यह हैं कि हमारे यहाँ अभी तक लोगों को अपनी जिम्मेदारी का इतना कम ज्ञान हैं कि अफसर जरा भी नर्म पड़ जाय और काम खराब होने लगता हैं। कुछ ऐसे भाग्यशाली हैं, जो नौकरों से हेल-मेल भी रखते हैं, उनसे हँसते-बोलते भी हैं, फिर भी नौकर नहीं बिगड़ते, बल्कि और भी दिल लगाकर काम करते हैं। मुझमें वह कला नहीं हैं, इसलिए मैं अपने आदमियों से कुछ अलग-अलग रहना ही अच्छा समझता हूँ और अब तक मुझे इस नीति से कोई हानि भी नहीं हुई; लेकिन मैं आदमियों का रंग-ढंग देखता हूँ और सब को परखता रहा हूँ। मैने तुम्हारे विषय में जो मत स्थिर किया हैं; वह यह हैं कि तुम वफादार हो और मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास कर सकता हूँ, जहाँ तुम्हें खुद बहुत कम काम करना पड़ेगा। केवल निगरानी करनी पड़ेगी। तुम्हारे वेतन में पचास रुपये की और तरक्की हो जायगी। मुझे विश्वास हैं, तुमने अब तक जितनी तनदेही से काम किया हैं, उससे भी ज्यादा तनदेही से आगे करोगे।

दीनानाथ की आँखों में आँसू भर आये और कंठ की मिठाई कुछ नमकीन हो गयी। जी में आया, स्वामी के चरणों पर सिर दें और कहे- आपकी सेवा के लिए मेरी जान हाजिर हैं। आपने मेरा जो सम्मान बढ़ाया हैं, मैं उसे निभाने में कोई कसर न उठा रखूँगा; लेकिन स्वर काँप रहा था और वह केवल कृतज्ञता-भरी आँखों से देखकर रह गया।

सेठजी ने एक मोटा-सा लेजर निकालते हुए कहा- मैं एक ऐसे काम में तुम्हारी मदद चाहता हूँ, जिस पर इस कार्यालय का सारा भविष्य टिका हुआ हैं। इतने आदमियों में मैने केवल तुम्हीं को विश्वास-योग्य समझा हैं। और मुझे आशा हैं

कि तुम मुझे निराश न करोगे। यह पिछले साल का लेजर है और इसमें कुछ ऐसी रकमें दर्ज हो गयी हैं; जिनके अनुसार कम्पनी को कई हजार का लाभ होता हैं, लेकिन तुम जानते हो, हम कई महीनों से घाटे पर काम कर रहे हैं। जिस क्लर्क ने यह लेजर लिखा था, उसकी लिखावट तुम्हारी लिखावट से बिल्कुल मिलती हैं। अगर दोनों लिखावटें आमने-सामने रख दी जायँ , तो किसी विशेषज्ञ को भी उसमें भेद करना कठिन हो जायगा। मैं चाहता हूँ, तुम लेजर में एक पृष्ठ फिर से लिख कर जोड़ दो और उसी नम्बर का पृष्ठ उसमें से निकाल दो। मैने पृष्ठ का नम्बर छपवा लिया हैं; एक दफतरी भी ठीक कर लिया हैं, जो रात भर में लेजर की जिल्दबन्दी कर देगा। किसी को पता तक न चलेगा। जरूरत सिर्फ यह हैं कि तुम अपनी कलम से उस पृष्ठ की नकल कर दो।

दीनानाथ ने शंका की- जब उस पृष्ठ की नकल ही करनी हैं, तो उसे निकालने की क्या जरूरत हैं?

सेठजी हँसे- तो क्या तुम समझते हो, उस पृष्ठ की हूबहू नकल करनी होगी। मैं कुछ रकमों में परिवर्तन कर दूँगा। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं केवल कार्यालय की भलाई के खयाल से यह कार्यवाई कर रहा हूँ। अगर रद्दोबदल न किया गया, तो कार्यालय के एक सौ आदमियों की जीविका में बाधा पड़ जायगी। इसमें कुछ सोच-विचार करने की जरूरत नहीं। केवल आध घंटे का काम हैं। तुम बहुत तेज लिखते हो।

कठिन समस्या थी। स्पष्ट थी कि उससे जाल बनाने को कहा जा रहा हैं। उसके पास इस रहस्य के पता लगाने का कोई साधन न था कि सेठजी जो कुछ कह रहे हैं, वह स्वार्थवश होकर या कार्यालय की रक्षा के लिए; लेकिन किसी दशा में भी हैं यह जाल, घोर जाल। क्या वह अपनी आत्मा की हत्या करेगा? नहीं; किसी तरह नहीं।

उसने डरते-डरते कहा- मुझे आप क्षमा करें, मैं यह काम न कर सकूँगा।

सेठजी ने उसी अविचलित मुसकान के साथ पूछा- क्यों?

'इसलिए कि यह सरासर जाल हैं।'

'जाल किसे कहते हैं?'

'किसी हिसाब में उलटफेर करना जाल हैं।'

'लेकिन उस उलटफेर से एक सौ आदमियों की जीविका बनी रहे, तो इस दशा में भी वह जाल हैं? कम्पनी की असली हालत कुछ और हैं, कागजी हालत कुछ और; अगर यह तब्दीली न की गयी, तो तुरन्त कई हजार रुपये नफे के देने पड़ जायेगे और नतीजा यह होगा कि कम्पनी का दिवाला हो जायगा। और सारे आदमियों को घर बैठना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि थोड़े से मालदार हिस्सेदारों के लिए इतने गरीबों का खून किया जाय। परोपकार के लिए कुछ जाल भी करना पड़े, तो वह आत्मा की हत्या नही हैं।'

दीनानाथ को कोई जवाब न सूझा। अगर सेठजी का कहना सच हैं और इस जाल से सौ आदमियों को रोजी बनी रहे तो वास्तव में वह जाल नहीं, कठोर कर्त्तव्य हैं; अगर आत्मा की हत्या होती भी हो, तो सौ आदमियों की रक्षा के लिए उसकी परवाह न करनी चाहिए, लेकिन नैतिक समाधान हो जाने पर अपनी रक्षा का विचार आया। बोला- लेकिन कहीं मुआमला खुल गया, तो मिट जाऊँगा। चौदह साल के लिए काले पानी भेज दिया जाऊँगा।

सेठ ने जोर से कहकहा मारा - अगर मुआमला खुल गया, तो तुम न फँसोंगे, मैं फँसूगा। तुम साफ इनकार कर सकते हो।

'लिखावट तो पकड़ी जायगी?'

'पता ही कैसे चलेगा कि कौन पृष्ठ बदला गया, लिखावट तो एक-सी हैं।'

दीनानाथ परास्त हो गया। उसी वक़्त उस पृष्ठ की नकल करने लगा।

4

फिर भी दीनानाथ के मन में चोर पैदा हुआ था। गौरी से इस विषय में वह एक शब्द भी न कह सका।

एक महीनें के बाद उसकी तरक्की हुई। सौ रुपये मिलने लगे। दो सौ बोनस के भी मिले।

यह सब कुछ था, घर में खुशहाली के चिह्न नजर आने लगे; लेकिन दीनानाथ का अपराधी मन एक बोझ से दबा रहता था। जिन दलीलों से सेठजी ने उसकी जबान बन्द कर दी, उस दलीलों से गौरी को सन्तुष्ट कर सकने का उसे विश्वास न था।

उसकी ईश्वर-निष्ठा उसे सदैव डराती रहती थी। इस अपराध का कोई भयंकर दंड अवश्य मिलेगा। किसी प्रायश्चित, किसी अनुष्ठान से उसे रोकना असम्भव हैं। अभी न मिले; साल-दो-साल में मिले, दस-पाँच साल न मिले; पर जितनी देर से मिलेगा, उतना ही भयंकर होगा, मूलधन ब्याज के साथ बढ़ता जायेगा। वह अक्सर पछताता, मैं क्यों सेठजी के प्रलोभन में आ गया। कार्यालय टूटता या रहता, मेरी बला से; आदमियों की रोजी जाती या रहती, मेरी बला से; मुझे तो यह प्राण-पीड़ा न होती, लेकिन अब तो जो कुछ होना था हो चुका और दंड अवश्य मिलेगा। इस शंका ने उसके जीवन का उत्साह, आनन्द और माधुर्य सब कुछ हर लिया।

मलेरिया फैला हुआ था। बच्चे को ज्वर आया। दीनानाथ के प्राण नहों में समा गये। दंड का विधान आ पहुँचा। कहाँ जाय, क्या करे, जैसे बुद्धि भ्रष्ट हो गयी।

गौरी ने कहा- जाकर कोई दवा लाओ, या किसी डॉक्टर को दिखा दो, तीन दिन तो हो गये।

दीनानाथ ने चिन्तित मन से कहा- हाँ, जाता हूँ लेकिन मुझे बड़ा भय लग रहा हैं।

'भय की कौन-सी बात हैं, बेबात की बात मुँह से निकालते हो। आजकल किसे ज्वर नहीं आती?'

'ईश्वर इतना निर्दयी क्यों हैं?'

'ईश्वर निर्दयी हैं पापियों के लिए। हमने किसका क्या हर लिया हैं?'

'ईश्वर पापियों को कभी क्षमा नहीं करता।'

'पापियों को दंड न मिले, तो संसार में अनर्थ हो जाय।'

'लेकिन आदमी ऐसे काम भी तो करता हैं, तो एक दृष्टि से पाप हो सकते हैं, दूसरी दृष्टि से पुण्य।'

'मैं नहीं समझी।'

'मान लो, मेरे झूठ बोलने से किसी की जान बचती हो, तो क्या वह पाप हैं?'

'मैं तो समझती हूँ, ऐसा झूठ पुण्य हैं।'

'तो जिस पाप से मनुष्य का कल्याण हो, वह पुण्य हैं?'

'और क्या'

दीनानाथ की अमंगल की शंका थोड़ी देर के लिए दूर हो गयी। डॉक्टर को बुला

लाया, इलाज शुरू किया, बालक एक सप्ताह में चंगा हो गया।

मगर थोड़े दिन बाद वह खुद बीमार पड़ा। वह अवश्य ही ईश्वरीय दंड हैं और वह बच नहीं सकता। साधारण मलेरिया ज्वर था; पर दीनानाथ की दंड-कल्पना ने उसे सन्निपात का रूप दे दिया। ज्वर में, नशे की हालत की तरह यों ही कल्पनाशक्ति तीव्र हो जाती हैं। पहले केवल मनोगत शंका थी, वह भीषण सत्य बन गयी। कल्पना ने यमदूत रच डाले, उनके भाले औऱ गदाएँ रच डाली। नरक का अग्निकुंड दहका दिया। डॉक्टर की एक घूँट दवा हजार मन की गदा के आवाज और आग के उबलते हुए समुद्र के दाह पर क्या असर करती? दीनानाथ मिथ्यावादी न था। पुराणों की रहस्यमय कल्पनाओं में उसे विश्वास न था। नहीं, वह बुद्धिवादी था और ईश्वर में भी तभी उसे विश्वास आया, जब उसकी तर्कबुद्धि कायल हो गयी। लेकिन ईश्वर के साथ उसकी दया उसकी दया भी आयी, उसका दंड भी आया। दया ने उसे रोजी दी, मान लिया। ईश्वर की दया न होती, तो शायद वह भूखों मर जाता, लेकिन भूखों मरना अग्निकुड में ढकेल दिये जाने से कहीं सरल था, खेल था। दंड-भावना जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार से ऐसी बद्धमूल हो गया थी, मानो उसकी बुद्धि का, उसकी आत्मा का, एक अंग हो गयी हो। उसका तर्कवाद और बुद्धिवाद इन मन्वन्तरों के जमे हुए संस्कार पर समुद्र की ऊँची लहरों की भाँति आता था, पर एक क्षण में उन्हें जल-मग्न करके फिर लौट जाता था और वह पर्वत ज्यों-का-त्यों खड़ा रह जाता था।

जिन्दगी बाकी थी, बच गया। ताकत आते ही दफ्तर जाने लगा। एक दिन गौरी बोली- जिन दिनों तुम बीमार थे औऱ एक दिन तुम्हारी हालत बहुत नाजुक हो गयी थी, तो मैने भगवान से कहा था कि वह अच्छे हो जायँगे, तो पचास ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी। दूसरे दिन से तुम्हारी हालत सुधरने लगी। ईश्वर ने मेरी विनती सुन ली। उसकी दया न हो जाती, तो मुझे कहीं माँगे भीख न मिलती। आज बाजार से सामान ले आओ, तो मनौती पूरी कर दूँ। पचास ब्राह्मण नेवेत जायँगे, तो सौ अवश्य आयेंगे। पचास कँगले समझ लो और मित्रों में बीस-पचीस निकल ही आयेंगे। दो सौ आदमियों का डौल हैं। मैं सामग्रियों की सूची लिखे देती

हूँ।

दीनानाथ ने माथा सिकोड़कर कहा- तुम समझती हो, मैं भगवान की दया से अच्छा हुआ?

'और कैसे अच्छे हुए?'

'अच्छा हुआ इसलिए कि जिन्दगी बाकी थी।'

'ऐसी बातें न करो। मनौती पूरी करनी होगी।'

'कभी नहीं। मैं भगवान को दयालु नहीं समझता।'

'और क्या भगवान निर्दयी हैं?'

'उनसे बड़ा निर्दयी कोई संसार में न होगा। जो अपने रचे हुए खिलौनों को उनकी भूलों और बेवकूफियों की सजा अग्निकुंड में ढकेलकर दे, वह भगवान दयालु नहीं हो सकता। भगवान जितना दयालु हैं, उससे असंख्य गुना निर्दयी हैं। और ऐसे भगवान की कल्पना से मुझे घृणा होती हैं। प्रेम सबसे बड़ी शक्ति कही गयी हैं। विचारवानों ने प्रेम को ही जीवन की और संसार की सबसे बड़ी विभूति मानी हैं। व्यवहारों में न सही, आदर्श में प्रेम ही हमारे जीवन का सत्य हैं, मगर तुम्हारा ईश्वर दंड-भय से सृष्टि का संचालन करता हैं। फिर उसमें और मनुष्य मं क्या फर्क हुआ? ऐसे ईश्वर की उपासना मैं नही करना चाहता, नहीं कर सकता। जो मोटे हैं, उनके लिए ईश्वर दयालु होगा, क्योंकि वे दुनिया को लूटते हैं। हम जैसो को तो ईश्वर की दया कहीं नजर नहीं आती। हाँ, भय पग-पग पर खड़ा घूरा करता हैं। यह मत करो, ईश्वर दंड देना! वह मत करो, ईश्वर दंड देगा। प्रेम से शासन करना मानवता हैं, आतंक से शासन करना बर्बरता हैं। आतंकवादी ईश्वर से तो ईश्वर का न रहना ही अच्छा हैं। उसे हृदय से निकाल कर मैं उसकी दया और दंड दोनों से मुक्त हो जाना चाहता हूँ। एक कठोर दंड बरसों के प्रेम को

मिट्टी में मिला देता हैं। मै तुम्हारे ऊपर बराबर जान देता रहता हूँ; लेकिन किसी दिन डंडा लेकर पीट चलूँ, तो तुम मेरी सूरत न देखोगी। ऐसे आतंकमय, दंडमय जीवन के लिए मैं ईश्वर का एहसास नहीं लेना चाहता। बासी बात में खुदा के साझे के जरूरत नहीं हैं। अगर तुमने ओज-भोज पर जोर दिया, तो मैं जहर खा लूँगा।'

गौरी उसके मुँह की और भयातुर नेत्रों से ताकती रह गयी।

***

दूध का दाम

अब बड़े-बड़े शहरों में दाइयाँ, नर्सें और लेडी डॉक्टर, सभी पैदा हो गयी हैं; लेकिन देहातों में जच्चेखानों पर अभी तक भंगिनों का ही प्रभुत्व हैं और निकट भविष्य में इसमें तब्दीली होने की आशा नहीं। बाबू महेशनाथ अपने गाँव के जमींदार थे, शिक्षित थे और जच्चेखानों में सुधार की आवश्यकता को मानते थे, लेकिन इसमें जो बाधाएँ थी, उन पर विजय कैसे पाते? कोई नर्स देहात जाने पर राजी न हुई औऱ बहुत कहने-सुनने से राजी भी हुई, तो इतनी लम्बी-चौड़ी फीस माँगी कि बाबू साहब को सिर झुकाकर चले आने के सिवा और कुछ न सूझा। लेडी डॉक्टर के पास जाने की उन्हें हिम्मत पड़ी। उसकी फीस पूरी करने के लिए तो शायद बाबू साहब को अपनी आधी जायदाद बेचनी पड़ती; इसलिए जब तीन कन्याओं के बाद वह चौथा लड़का पैदा हुआ, तो फिर वहीं गूदड़ था और वहीं गूदड़ की बहू। बच्चे अक्सर रात ही को पैदा होते हैं। एक दिन आधीरात को चपरासी ने गूदड़ के द्वार पर ऐसी हाँक लगायी कि पास-पड़ोस में भी जाग पड़ गयी। लड़की न थी कि मरी आवाज से पुकारता।

गूदड़ के घर में इस शुभ अवसर के लिए महीनों से तैयारी हो रही थी। भय था तो यही कि फिर बेटी न हो जाय, नहीं तो वहीं बँधा हुआ एक रुपया और एक साड़ी मिलकर रह जायगी। इस विषय में स्त्री-पुरुष में कितने ही बार झगड़ा हो चुका था, शर्त लग चुकी थी। स्त्री कहती थी- अगर अबकी बेटा न हो तो मुँह न दिखाऊँ, हाँ-हाँ, मुँह न दिखाऊँ, सारे लच्छन बेटे के हैं। और गुदड़ कहता था- देख लेना, बेटी होगी और बीच खेत बेटी होगी। बेटा निकले तो मूँछें मुँड़ा लूँ, हाँ-हाँ, मूँछें मुँड़ा लूँ। शायद गूदड़ समझता था कि इस तरह अपनी स्त्री के पुत्र-कामना को बलवान करके वह बेटे की अवार्ड के लिए रास्ता साफ कर रहा हैं।

भूँगी बोली- अब मूँछ मुँड़ा ले दाढ़ीजार! कहती थी, बेटा होगा। सुनता ही न था।

अपनी रट लगाये जाता था। मैं आज तेरी मूँछें मूँडूँगी, खूँटी तक तो रखूँगी ही नहीं।

गूदड़ ने कहा- अच्छा मूँड़ लेना भलीमानस! मूँछें क्या फिर न निकलेगी ही नहीं? तीसरे दिन देख लेना, फिर ज्यों-की-त्यों हैं, मगर जो कुछ मिलेगा, उसमें आधा रखा लूँगा, कहे देता हूँ।

भूँगी ने अँगूठा दिखाया और अपने तीन महीने के बालक को गूदड़ के सुपुर्द कर सिपाही के साथ चल खड़ी हुई।

गूदड़ ने पुकारा- अरी! सुन तो, कहाँ भागी जाती हैं? मुझे भी बधाई बजाने जाना पड़ेगा। इसे कौन सँभालेगा?

भूँगी ने दूर ही से कहा- इसे वहीं धरती पर सुला लेना। मैं आके दूध पिला जाऊँगी।

2

महेशनाथ के यहाँ अब भूँगी की खूब खातिरदारियाँ होने लगीं। सबेरे हरीरा मिलता, दोपहर को पूरियाँ और हलवा, तीसरे पहर को फिर और रात को फिर और गूदड़ को भी भरपूर परोसा मिलता था। भूँगी अपने बच्चे को दिन-रात में एक-दो बार से ज्यादा न पिला सकती थी। उसके लिए ऊपर के दूध का प्रबन्ध था। भूँगी का दूध बाबूसाहब का भाग्यवान बालक पीता था। और यह सिलसिला बारहवें दिन भी न बन्द हुआ। मालकिन मोटी-ताजी देवी थी; पर अब की कुछ ऐसा संयोग था कि उन्हें दूध हुआ ही नहीं। तीनों लड़कियों की बार इतने इफरात से दूध होता था कि लड़कियों को बदहजमी हो जाती थी। अब की बार एक बूँद नहीं, भूँगी दाई भी थी और दूध-पिलाई भी।

मालकिन कहती- भूँगी, हमारे बच्चे को पाल दे, फिर जब तक तू जिये, बैठी खाती रहना। पाँच बीघे माफी दिलवा दूँगी। नाती-पोते तक चैन करेंगे।

और भूंगी का लाड़ला ऊपर का दूध हजन न कर सकने के कारण बार-बार उलटी करता और दिन-दिन दुबला होता जाता था।

भूँगी कहती- बहुजी, मूँडन में चूड़े लूँगी, कहे देती हूँ।

बहूजी उत्तर देती- हाँ हाँ, चूड़े लेना भाई, धमकाती क्यों हैं? चाँदी के लेगी या सोने के।

'वाह बहूजी! चाँदी के पहन के किसे मूँह दिखाऊँगी और किसकी हँसी होगी?'

'अच्छा सोने के लेना भाई, कह तो दिया।'

'और ब्याह में कंठा लूँगी और चौधरी(गूदड़) के लिए हाथों के तोड़े।'

'वह भी लेना, भगवान् वह दिन तो दिखावे।'

घर की मालकिन के बाद भूँगी का राज्य था। महरियाँ, महराजिन, नौकर-चाकर सब उसका रोब मानते थे। यहाँ तक कि खुद बहूजी भी उससे दब जाती थी। एक बार तो उसने महेशनाथ को भी डाँटा था। हँसकर टाल गये। बात चली थी भंगियों की। महेशनाथ ने कहा था- दुनिया में और चाहे जो कुछ भी हो जाय, भंगी भंगी ही रहेंगे। इन्हें आदमी बनाना कठिन हैं।

इस पर भूँगी ने कहा था- मालिक, भंगी तो बड़ो-बड़ो को आदमी बनाते हैं, उन्हें कोई क्या आदमी बनाये।

यह गुस्ताखी करके किसी दूसरे अवसर पर भला भूँगी के सिर के बाल बच सकते थे? लेकिन आज बाबूसाहब उठाकर हँसे और बोले- भूँगी बात बड़े पते की

कहती हैं।

3

भूँगी का शासनकाल साल-भर से आगे न चल सका। देवताओं ने बालक के भंगिन का दूध पीने पर आपत्ति की, मोटेराम शास्त्री तो प्रायश्चित का प्रस्ताव कर बैठे। दूध तो छुड़ा दिया गया; लेकिन प्रायश्चित की बात हँसी में उड़ गयी महेशनाथ ने फटकारकर कहा- प्रायश्चित की खूब कहीं शास्त्रीजी, कल तक तो उसी भंगिन का दूध पीकर पला, अब उससे छूत घुस गयी। वाह रे आपका धर्म।

शास्त्रीजी शिखा फटकारकर बोले- यह सत्य हैं, वह कल तक भंगिन का रक्त पीकर पला। माँस खाकर पला, यह भी सत्य हैं; लेकिन कल की बात कल थी, आज की बात आज। जगन्नाथपुरी में छूत-अछूत सब एक पंगत में खाते हैं; पर यहाँ तो नहीं खा सकते। बीमारी में तो हम भी कपड़े पहने खा लेते हैं, खिचड़ी तक खा लेते हैं बाबूजी; लेकिन अच्छे हो जाने पर तो नेम का पालन करना ही पड़ता हैं। आपद्धर्म की बात न्यारी हैं।

'तो इसका यह अर्थ हैं कि धर्म बदलता रहता हैं- कभी कुछ, कभी कुछ?'

'और क्या! राजा का धर्म अलग, प्रजा का धर्म अलग, अमीर का धर्म अलग, गरीब का अलग, राजे-महाराजे जो चाहें खायँ, जिसके साथ चाहें खायँ, जिसके साथ चाहें शादी-ब्याह करें, उनके लिए कोई बन्धन नहीं। सर्मथ पुरुष हैं। बन्धन तो मध्यवालो के लिए हैं।'

प्रायश्चित को न हुआ; लेकिन भूँगी को गद्दी से उतरना पड़ा! हाँ, दान-दक्षिणा इतनी मिली कि वह अकेले ले न जा सकी और सोने के चूड़े भी मिले। एक की जगह दो नयी, सुन्दर साड़ियाँ- मामूली नैनसुख की नहीं, जैसी लड़कियों की बार मिली थीं।

4

इसी साल प्लेग ने जोर बाँधा और गूदड़ पहले ही चपेट मे आ गया। भूँगी अकेली रह गयी; पर गृहस्थी ज्यों-की-त्यों चलती रही। लोग ताक लगाये बैंठे थे कि भूँगी अब गयी। फलाँ भंगी से बातचीत हुई, फलाँ चौधरी आये, लेकिन भूँगी न कहीं आयी, न कहीं गयीं, यहाँ तक कि पाँच साल बीत गये और बालक मंगल, दुर्बल और सदा रोगी रहने पर भी, दौड़ने लगा। सुरेश के सामने पिद्दी-सा लगता था।

एक दिन भूँगी महेशनाथ के घर का परनाला साफ कर रही थी। महीनों से गलीज जमा हो रहा था। आँगन में पानी भरा रहने लगा था। परनाले में एक लम्बा मोटा बाँस डालकर जोर से हिला रही थी। पूरा दाहिना हाथ परनाले के अन्दर था कि एकाएक उसने चिल्लाकर हाथ बाहर निकल लिया और उसी वक़्त एक काला साँप परनाले से निकलकर भागा। लोगों ने दौड़कर उसे मार तो डाला; लेकिन भूँगी को न बचा सके। समझे; पानी का साँप हैं, विषैला न होगा, इसलिए पहले कुछ गफलत की गयी। जब विष देह में फैल गया और लहरें आने लगीं, तब पता चला कि वह पानी का साँप नहीं, गेहुँवन था।

मंगल अब अनाथ था। दिन-भर महेशबाबू के द्वार पर मँडराया करता । घर में जूठन इतना बचता था कि ऐसे-ऐसे दस बालक पल सकते थे। खाने की कोई कमी न थी। हाँ, उसे बुरा जरूर लगता था, जब उसे मिट्टी के कसोरों में ऊपर से खाना दिया जाता था। सब लोग अच्छे-अच्छे बरतनों मे खाते हैं, उसके लिए मिट्टी के कसोरे!

यों उसे इस भेद भाव का बिल्कुल ज्ञान न होता था; लेकिन गाँव के लड़के चिढ़ा-चिढ़ाकर उसका अपमान करते रहते थे। कोई उसे अपने साथ खेलाता भी न था। यहाँ तक कि जिस टाट पर वह सोता था, वह भी अछूत थी। मकान के सामने एक नीम का पेड़ था। इसी के नीचे मंगल का डेरा था। एक फटा-सा टाट का

टुकड़ा, दो मिट्टी के कसोरे और एक धोती, जो सुरेशबाबू की उतारन थी, जाड़ा, गरमी, बरसात हरेक मौसम में वह जगह एक-सी आरामदेह थी और भाग्य का बली मंगल झुलसती हुई लू, गलते हुए जाड़े और मूसलाधार वर्षा में भी जिन्दा और पहले से कहीं स्वस्थ था। बस, उसका कोई अपना था, तो गाँव को एक कुत्ता, जो अपने सहवर्गियों के जुल्म से दुखी होकर मंगल की शरण आ पड़ा था। दोनों एक ही खाना खाते, एक ही टाट पर सोते, तबीअत भी दोनों की एक-सी थी और दोनों एक दूसरे के स्वभाव को जान गये थे। कभी आपस में झगड़ा न होता।

गाँव के धर्मात्मा लोग बाबूसाहब की इस उदारता पर आश्चर्य करते। ठीक द्वार के सामने- पचास हाथ भी न होगा - मंगल का पड़ा रहना उन्हें सोलहों आने धर्म-विरुद्ध जान पड़ता। छिः ! यहीं हाल रहा, तो थोड़े ही दिनों में धर्म का अन्त ही समझों। भंगी को भी भगवान ने ही रचना हैं, यह हम भी जानते हैं। उसके साथ हमें किसी तरह का अन्याय न करना चाहिए, यह किसे नही मालूम? भगवान का तो नाम ही पतित-पावन हैं; लेकिन समाज की मर्यादा भी कोई वस्तु हैं! उस द्वार पर जाते हुए संकोच होता हैं। गाँव का मालिक हैं, जाना तो पड़ता ही हैं; लेकिन बस यहीं समझ लो कि घृणा होती हैं।

मंगल और टामी में गहरी बनती हैं। मंगल कहता - देखों भाई टामी, जरा और खिसककर सोओ। आखिर मैं कहा लेटूँ? सारा टाट तो तुमने घेर लिया।

टामी कूँ-कूँ करता, दुम हिलाता और खिसक जाने के बदले और ऊपर चढ़ आता एवं मंगल का मुँह चाटने लगता।

शाम को वह एक बार रोज अपना घर देखने और थोड़ी देर रोने जाता। पहले साल फूस का छप्पर गिर पड़ा, दूसरे साल एक दीवार गिरी और अब केवल आधी-आधी दीवारें खड़ी थी, जिनका ऊपर का भाग नोकदार हो गया था। यही उसके स्नेह की सम्पत्ति मिली। वही स्मृति, वही आकर्षण, वही प्यार उसे एक बार उस उजड़ में खिच ले जाती थी और टामी सदैव उसके साथ होता था। मंगल नोकदार

दीवार पर बैठ जाता और जीवन के बीते और आनेवाले स्वप्न देखने लगता और बार-बार उछल कर उसकी गोद में बैठने की असफल चेष्ठा करता।

5

एक दिन कई लड़के खेल रहे थे। मंगल भी पहुँच कर दूर खड़ा हो गया। या तो सुरेश को उस पर दया आयी, या खेलनेवालों की जोड़ी पूरी न पड़ती थी, कह नहीं सकते। जो कुछ भी हो, तजवीज की कि आज मंगल को भी खेल में शरीक कर लिया जाय। यहाँ कौन देखने आता हैं। क्यों रे मंगल, खेलेगा।

मंगल बोला- ना भैया, कहीं मालिक देख ले, तो मेरी चमड़ी उधेड़ दी जाय। तुम्हें क्या, तुम तो अलग हो जाओगे।

सुरेश ने कहा- तो यहाँ कौन आता हैं देखने बे? चल, हम लोग सवार-सवार खेलेगे। तू घोड़ा बनेगा, हम लोग तेरे ऊपर सवारी करके दौड़ायेंगे?

मंगल ने शंका की- मैं बराबर घोड़ा ही रहूँगी, कि सवारी भी करूँगा? यह बता दो।

यह प्रश्न टेढ़ा था। किसी ने इस पर विचार न किया था। सुरेश ने एक क्षण विचार करके कहा- तुझे कौन अपनी पीठ पर बिठायेगा, सोच? आखिर तू भंगी हैं कि नहीं?

मंगल भी कड़ा हो गया। बोला- मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ, लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिलाकर पाला हैं। जब तब मुझे भी सवारी करने को न मिलेगी, मैं घोड़ा न बनूँगा। तुम लोग बड़े चघड़ हो। आप तो मजे से सवारी करोगे और मैं घोड़ा ही बना रहूँ।

सुरेश ने डाँट कर कहा, तुझे घोड़ा बनना पड़ेगा और मंगल को पकड़ने दौड़ा। मंगल भागा। सुरेश ने दौड़ाया। मंगल ने कदम और तेज किया। सुरेश ने भी

जोर लगाया; मगर वह बहुत खा-खाकर थुल-थुल हो गया था और दौड़ने में उसकी साँस फूलने लगी।

आखिर उसने रूक कर कहा- आकर घोड़ा बनो मंगल, नहीं तो कभी पा जाऊँगा, तो बुरी तरह पीटूँगा।

'तुम्हें भी घोड़ा बनना पड़ेगा।'

'अच्छा हम भी बन जायँगे।'

'तुम पीछे से निकल जाओगे। पहले तुम घोड़ा बन जाओ। मैं सवारी कर लूँ, फिर मैं बनूँगा।'

सुरेश ने सचमुच चकमा देना चाहा था। मंगल का यह मुतालबा सुनकर साथियों से बोला- देखते हो इसकी बदमाशी, भंगी हैं न!

तीनों ने मंगल को घेर लिया और जबरदस्ती घोड़ा बना दिया। सुरेश ने चटपट उसकी पीठ पर आसन जमा दिया और टिकटिक करके बोला- चल घोड़े, चल!

मंगल कुछ देर तर तो चला, लेकिन बोझ से उसकी कमर टूटी जाती थी। उसने धीरे से पीठ सिकोड़ी और सुरेश की रान के नीचे से सरक गया। सुरेश महोदय लद से गिर पड़े और भोंपू बजाने लगे।

माँ ने सुना, सुरेश कहीं रो रहा हैं। सुरेश कहीं रोये, तो उनके तेज कानों में जरूर भनक पड़ जाती थी और उसका रोना भी बिल्कुल निराला होता था, जैसे छोटी लाइन के इंजन की आवाज।

महरी से बोली- देख तो, सुरेश कहीं रो रहा हैं, पूछ तो किसने मारा हैं।

इतने में सुरेश खुद आँख मलता हुआ आया। उसे जब रोने का अवसर मिलता

था, तो माँ के पास फरियाद लेकर जरूर आता था। माँ मिठाई या मेवे देकर आँसू पोंछ देती थी। आप थे तो आठ साल के, मगर थे बिल्कुल गावदी। हद से ज्यादा प्यार ने उसकी बुद्धि के साथ वहीं किया, जो हद से ज्यादा भोजन ने उसकी देह के साथ।

माँ ने पूछा- क्यो रोता हैं, किसने मारा?

सुरेश ने रोकर कहा- मंगल ने छू दिया।

माँ को विश्वास न आया। मंगल इतना निरीह थी कि उससे किसी तरह की शरारत की शंका न थी; लेकिन सुरेश कसमें खाने लगा, तो विश्वास करना लाजिम हो गया। मंगल को बुलाकर डाँटा- क्यों रे मंगल, अब तुझे बदमाशी सूझने लगी। मैने तुझसे कहा था, सुरेश को कभी मत छूना, याद हैं कि नहीं, बोल।

मंगल ने दबी आवाज से कहा- याद क्यों नहीं हैं।

'तो फिर तूने उसे क्यों छुआ?'

'मैने नहीं छुआ।'

'तून नहीं छुआ, तो वह रोता क्यो था?'

'गिर पड़े, इससे रोने लगे।'

चोरी और सीनाजोरी। देवीजी दाँत पीसकर रह गयी। मारती, तो उसी दम स्नान करना पड़ता। छड़ी तो हाथ में लेनी ही पड़ती और छूत का विद्युत-प्रवाह इस छड़ी के रास्ते उनकी देह में पैवस्त हो जाता, इसलिए जहाँ तक गालियाँ दे सकी, दी और हुक्म दिया कि अभी-अभी यहाँ से निकल जा। फिर जो इस द्वार पर तेरी सूरत नजर आयी, तो खून ही पी जाऊँगी। मुफ्त को रोटियाँ खा-खाकर शरारत सूझती हैं; आदि।

मंगल में गैरत तो क्या थी, हाँ, डर था। चुपके से अपने सकोरे उठाये, टाट का टुकड़ा बगल में दबाया, धोती कन्धे पर रखी और रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा। अब वह यहाँ कभी न आयेगा। यही तो होगा कि भूखों मर जायगा। क्या हरत हैं? इस तरह जीने से फायदा ही क्या? गाँ में उसके लिए और कहाँ ठिकाना था? भंगी को कौन पनाह देता? उसी खंडहर की ओर चला, जहाँ भले दिनों की स्मृतियाँ उसके आँसू पोंछ सकती थी और खूब फूट-फूटकर रोया।

उसी क्षण टामी भी उसे ढूँढता हुआ पहुँचा और दोनों फिर अपनी व्यथा भूल गये।

6

लेकिन ज्यों-ज्यों दिन का प्रकाश क्षीण होता जाता था, मंगल की ग्लानि भी क्षीण होती जाती थी। बचपन को बेचैन करने वाली भूख देह का रक्त पी-पीकर और भी बलवान होती जाती थी। आँखे बार-बार कसोंरों की ओर उठ जाती। कहाँ अब तक सुरेश की जूठी मिठाईयाँ मिल गयी होती। यहाँ क्या धूल फाँके?

उसने टामी से सलाह की- खाओगे क्या टामी? मैं तो भूखा लेट रहूँगा।

टामी ने कूँ-कूँ करके शायद कहा- इस तरह अपमान तो जिन्दगी भर सहना हैं। यों हिम्मत हारोगे, तो कैसे काम चलेगा? मुझे देखो न, कभी किसी ने डंडा मारा, चिल्ला उठा, फिर जरा देर बाद दुम हिलाता हुआ उसके पास जा पहुँचा। हम-तुम दोनो इसीलिए बने हैं भाई!

मंगल ने कहा- तो तुम जाओ, जो कुछ मिले खा लो, मेरी परवाह न करो।

टामी ने अपनी श्वास-भाषा में कहा- अकेला नहीं जाता, तुम्हें साथ लेकर चलूँगा।

'मैं नहीं जाता।'

'तो मैं भी नहीं जाता।'

'भूखों मर जाओगे।'

'तो क्या तुम जीते रहोगे?'

'मेरा कौन बैठा हैं, जो रोयगा?'

'यहाँ भी वही हाल हैं भाई, क्वार में जिस कुतिया से प्रेम किया था, उसने बेवफाई की और अब कल्लू के साथ हैं। खैरियत यही हुई कि अपने बच्चे लेती गयी, नहीं तो मेरी जान गाढ़े में पड़ जाती। पाँच-पाँच बच्चों को कौन पालता?'

एक क्षण के बाद भूख ने एक दूसरी युक्ति सोच निकाली।

'मालकिन हमें खोज रहीं होगी, क्या टामी?'

'और क्या? बाबूजी और सुरेश खा चुके होगे। कहार ने उनकी थाली से जूठन निकाल लिया होगा और हमे पुकार रहा होगा।'

'बाबूजी और सुरेश की थालियों में घी खूब रहता हैं और वह मीठी-मीठी चीज-हाँ मलाई।'

'सब-का-सब घूरे पर डाल दिया जायगा।'

'देखे, हमें खोजने कोई आता हैं?'

खोजने कौन आयेगा; क्या कोई पुरोहित हो? एक बार 'मंगल-मंगल' होगा और बस, थाली परनाले में उँडेल दी जायेगी।

'अच्छा, तो चलो चले। मगर मै छिपा रहूँगा, अगर किसी ने मेरा नाम लेकर न पुकारा; तो मैं लौट आऊँगा। यह समझ लो।'

दोनो वहाँ से निकले और आकर महेशनाथ के द्वार पर अँधेरे में दबकर खड़े हो गये; मगर टामी को सब्र कहाँ? वह धीरे से अन्दर घुस गया। देखा, महेशनाथ और सुरेश थाली पर बैठ गये। बरोठे में धीरे से बैठ गया, मगर डर रहा था कि कोई डंडा न मार दे।

नौकर में बातचीत हो रही था। एक ने कहा- आज मँगलवा नहीं दिखायी देता। मालकिन मे डाँटा, इससे भागा हैं साइत।

दूसरे ने जवाब दिया- अच्छा हुआ, निकाल दिया गया। सबेरे-सबेरे भंगी का मुँह देखना पड़ता था।

मंगल और अँधेरे में खिसक गया। आशा गहरे जल में डूब गयी।

महेशनाथ थाली से उठ गये। नौकर हाथ धुला रहा था। अब हुक्का पीयेंगे और सोयेंगे। सुरेश अपनी माँ के पास बैठा कोई कहानी सुनता-सुनता सो जायगा! गरीब मंगल की किसे चिन्ता? इतनी देर हो गयी, किसी ने भूल से भी न पुकारा।

कुछ देर तक वह निराश-सा खड़ा रहा, फिर एक लम्बी साँस खींचकर जाना ही चाहता था कि कहार पत्तल में थाली की जूठन ले जाता नजर आया।

मंगल अँधेरे से निकलकर प्रकाश में आ गया। अब मन को कैसे रोके?

कहार ने कहा- अरे, तू यहाँ था? हमने समझा कि कहीं चला गया। ले, खा ले; मै फेंकने जा रहा था।

मंगल ने दीनता से कहा- मैं तो बड़ी देर से यहाँ खड़ा था।

'तो बोला क्यो नहीं?'

'मारे डर के।'

'अच्छा, ले खा ले।'

उसने पत्तल को ऊपर उठाकर मंगल के फैले हुए हाथों में डाल दिया। मंगल ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जिसमें दीन कृतज्ञता भरी हुई थी।

टामी भी अन्दर से निकल आया था। दोनों वहीं नीम के नीचे पत्तल में खाने लगे।

मंगल ने एक हाथ से टामी का सिर सहलाकर कहा- देखा, पेट की आग ऐसी होती हैं! यह लात की मारी रोटियाँ भी न मिलती, तो क्या करते?

टामी ने दुम हिला दी।

'सुरेश को अम्माँ ने पाला था।'

टामी ने फिर दुम हिलायी।

'लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा हैं।'

टामी ने फिर दुम हिलायी।

***

बालक

गंगू को लोग ब्राह्मण कहते हैं औऱ वह अपने को ब्राह्मण समझता भी हैं। मेरे सईस और खिदमतगार मुझे दूर से सलाम करते हैं। गंगू मुझे कभी सलाम नहीं करता। वह शायद मुझसे पागलपन की आशा करता हैं। मेरा जूठा गिलास कभी हाथ से नहीं छूता और न मेरी हिम्मत हुई कि उससे पंखा झलने को कहूँ। जब पसीने से तर होता हुँ औ वहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं होता, तो गंगू आप-ही-आप पंखा उठा लेता हैं; लेकिन उसकी मुद्रा से यह भाव स्पष्ट प्रकट होता हैं कि मुझ पर कोई एहसान कर रहा हैं और मैं भी न-जाने क्यों फौरन ही उसके हाथ से पंखा छीन लेता हूँ। उग्र स्वभाव का मनुष्य हैं। किसी की बात नहीं सह सकता। ऐसे बहुत कम आदमी होंगे, जिनसे उसकी मित्रता हो; पर सईस और खिदमतगार के साथ बैठना शायद वह अपमानजनक समझता हैं। मैने उसे किसी से मिलते-जुलते नहीं देखा। आश्चर्य हैं कि उसे भंग-बूटी से प्रेम नहीं, जो इस श्रेणी के मनुष्यों में एक असाधारण गुण हैं। मैने उसे कभी पूजा-पाठ करते या नदी में स्नान करते नहीं देखा। बिल्कुल निरक्षर हैं; लेकिन ब्राह्मण हैं और चाहता हैं कि दुनिया उसकी प्रतिष्ठा और सेवा करे और क्यों न चाहे? जब पुरुखों की पैदा की हुई सम्पत्ति पर आज भी लोग जमाये हुए हैं औऱ उसी शान से, मानो खुद पैदा किये हो, तो वह क्यों उस प्रतिष्ठा औऱ सम्मान को त्याग दे, जो उसके पुरुखाओं ने संचय किया था? यह उसकी बपौती हैं।

मेरा स्वभाव कुछ इस तरह का हैं कि अपने नौकरों से बहुत कम बोलता हूँ। मैं चाहता हूँ, जब तक न बुलाऊँ, कोई मेरे पास न आये। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जरा-सी बातों के लिए नौकरों को आबाज देता फिरूँ। मुझे अपने हाथ से सुराही से पानी उँडेल लेना, अपना लैम्प जला लेना, अपने जूते पहन लेगा या आलमारी से कोई किताब निकाल लेना, इससे कहीं ज्यादा सरल मालूम होता हैं कि हींगन औऱ मैकू को पुकारूँ। इससे मुझे अपनी स्वेच्छा और आत्म विश्वास

का बोध होता हैं। नौकर मेरे स्वभाव से परिचित हो गये और बिना जरूरत के मेरे पास बहुत कम आते थे। इसलिए एक दिन जब प्रातःकाल गंगू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया तो मुझे बहुत बुरा लगा। ये लोग जब आते हैं, तो पेशगी हिसाब में कुछ माँगने के लिए या किसी दूसरे नौकर की शिकायत करने के लिए। मुझे ये दोनों ही बाते अत्यंत अप्रिय हैं। मैं पहली तारीख को हर एक का वेतन चुका देता हूँ और बीच में जब कोई कोई माँगता हैं, तो क्रोध आ जाता हैं; कौन दो-दो, चार-चार रुपये का हिसाब रखता फिरे। फिर जब किसी को महीने-भर की पूरी मजूरी मिल गयी, तो उसे क्या हक हैं कि उसे पन्द्रह दिन में खर्च कर दे और ऋण या पेशगी की शरण ले, और शिकायतों से तो मुझे घृणा हैं। मैं शिकायतों को दुर्बलता का प्रमाण समझता हूँ, या ठुकरसुहाती की क्षुद्र चेष्ठा।

मैने माथा सिकोड़ कर कहा- क्या बात हैं, मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं?

गंगू के तीखे अभिमानी मुख पर आज कुछ ऐसी नम्रता, कुछ ऐसी याचना, कुछ ऐसा संकोच था कि मैं चकित हो गया। ऐसा जान पड़ा, वह कुछ जवाब देना चाहता हैं; मगर शब्द नहीं मिल रहे हैं।

मैंने जरा नम्र होकर कहा- आखिर क्या बात हैं, कहते क्यों नहीं? तुम जानते हो, मेरे टहलने का समय हैं। मुझे देर हो रही हैं।

गंगू ने निराशा भरे स्वर में कहा- तो आप हवा खाने जायँ, मैं फिर आ जाऊँगा।

यह अवस्था और भी चिन्ताजनक थी। इस जल्दी में तो वह एक क्षण में अपना वृत्तान्त कह सुनायेगा। वह जानता हैं कि मुझे ज्यादा अवकाश नहीं हैं। दूसरे अवसर पर तो दुष्ट घंटों रोयेगा। मेरे कुछ लिखने-पढ़ने को तो वह शायद कुछ काम समझता हो; लेकिन विचार को, जो मेरे लिए सबसे कठिन साधना हैं, वह मेरे विश्राम का समय समझता हैं। वह उसी वक्त आकर मेरे सिर पर सवार हो जायगा।

मैंने निर्दयता से उत्तर दिया- क्या कुछ पेशगी माँगने आये हो? मैं पेशगी नहीं देता।

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी पेशगी नहीं माँगा।'

'तो किसी की शिकायत करना चाहते हो? मुझे शिकायतों से घृणा हैं?'

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी किसी की शिकायत नहीं की?'

गंगू ने अपना दिल मजबूत किया। उनकी आकृति से स्पष्ट झलक रहा था, मानो वह कोई छलाँग मारने के लिए अपनी सारी शक्तियों को एकत्र कर रहा था। और लड़खड़ाती हुई आवाज में बोला- मुझे आप छुट्टी दे दें। मैं आपकी नौकरी अब न कर सकूँगा।

यह इस तरह का पहला प्रस्ताव था, जो मेरे कानों में पड़ा। मेरे आत्माभिमान को चोट लगी। मैं जब अपने को मनुष्यता का पुतला समझता हूँ, अपने नौकरों को कभी कटु-वचन नहीं कहता, अपने स्वामित्व को यथासाध्य म्यान में रखने की चेष्ठा करता हूँ, तब मैं इस प्रस्ताव पर क्यों न विस्मित हो जाता! कठोर स्वर में बोला- क्यों, क्या शिकायत हैं?

आपने तो हुजूर, जैसा अच्छा स्वभाव पाया हैं, वैसा क्या कोई पायेगा; लेकिन बात ऐसी आ पड़ी हैं कि अब मैं आपके यहाँ नहीं रह सकता। ऐसा ने हो कि पीछे से कोई बात हो जाय, तो आपकी बदनामी हो। मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से आपकी आबरू में बट्टा लगे।

मेरे दिल में उलझन पैदा हुई। जिज्ञासा की अग्नि प्रचंड हो गयी। आत्म-समर्पण के भाव से बरामदे में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर बोला- तुम तो पहेलियाँ बुझवा रहे हो। साफ-साफ क्यों नही कहते, क्या मामला हैं।

गंगू ने बड़ी नम्रता से कहा- बात यह है कि वह स्त्री, जो अभी विधवा आश्रम से

निकाल दी गयी हैं, वह गोमती देवी...

वह चुप हो गया। मैंने अधीर होकर कहा- हाँ, निकाल दी गयी हैं, तो फिर? तुम्हारी नौकरी से उससे क्या सम्बन्ध?

गंगू ने जैसे अपने सिर का भारी बोझ जमीन पर पटक दिया-

'मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ बाबूजी!'

मैं विस्मय से उसका मुँह ताकने लगा। यह पुराने विचारों का पोंगा ब्राह्मण जिसे नयी सभ्यता की हवा तक न लगी, उस कुलटा से विवाह करने जा रहा हैं, जिसे कोई भला आदमी अपने घर में कदम भी न रखने देगा। गोमती ने इस मुहल्ले के शान्त वातावरण में थोड़ी-सी हलचल पैदा कर दी। कई साल पहले वह विधवाश्रम में आयी थी। तीन बार आश्रम के कर्मचारियों ने उसका विवाह कर दिया, पर हर बार वह महीने-पन्द्रह दिन के बाद भाग आयी थी। यहाँ तक कि आश्रम के मन्त्री ने अब की बार उसे आश्रम से निकाल दिया था। तब से वह इसी मुहल्ले में एक कोठरी लेकर रहती थी और सारे मुहल्ले के शोहदो के लिए मनोरंजन का केन्द्र बनी हुई थी।

मुझे गंगू की सरलता पर क्रोध भी आया और दया भी। इस गधे को सारी दुनिया में कोई स्त्री ही न मिलती थी, जो इससे ब्याह करने जा रहा हैं। जब वह तीन बार पतियों के पास से भाग आयी, तो इसके पास कितने दिन रहेगी? कोई गाँठ का पूरा आदमी होता, तो एक बात भी थी। शायद साल-छः महीने टिक जाती। यह तो निपट आँख का अन्धा हैं। एक सप्ताह भी तो निबाह न होगा।

मैंने चेतावनी के भाव से पूछा- तुम्हें इस स्त्री की जीवन-कथा मालूम हैं?

गंगू ने आँखो-देखी बात की तरह कहा- सब झूठ है सरकार, लोगों ने हकनाहक उसको बदनाम कर दिया हैं।

'क्या कहते हो, वह तीन बार अपने पतियों के पास से नहीं भाग आयी?'

'उन लोगों ने उसे निकाल दिया, तो क्या करती?'

'कैसे बुद्धू आदमी हो! कोई इतनी दूर से आकर विवाह करके ले जाता हैं, हजारों रुपये खर्च करता हैं, इसलिए कि औरत को निकाल दें?'

गंगू ने भावुकता से कहा- जहाँ प्रेम नहीं है हुजूर, वहाँ कोई स्त्री नहीं रह सकती। स्त्री केवल रोटी कपड़ा ही नहीं चाहती, कुछ प्रेम भी चाहती हैं। वे लोग समझते होंगे कि हमने एक विधवा से विवाह करके उसके ऊपर कोई बडा एहसान किया हैं। चाहते होंगे कि तन-मन से वह उसकी हो जाय, लेकिन दूसरे को अपना बनाने के लिए पहले आप उसका बन जाना पड़ता हैं हजूर। यह बात हैं। फिर उसे एक बीमारी भी हैं। उसे कोई भूत लगा हुआ हैं। यह कभी-कभी बक-झक करने लगती हैं और बेहोश हो जाती हैं।

'और तुम ऐसी स्त्री से विवाह करोगे?' - मैने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा- समझ लो, जीवन कड़वा हो जायगा।

गंगू ने शहीदों के-से आवेश से कहा- मैं तो समझता हूँ, मेरी जिन्दगी बन जायगी बाबूजी, आगे भगवान की मर्जी।

मैने जोर देकर पूछा- तो तुमने तय कर लिया हैं?

'हाँ, हजूर'

'तो मैं तुम्हारा इस्तीफा मंजूर करता हूँ।'

मैं निरर्थक रूढ़ियों औऱ व्यर्थ के बन्धनों का दास नही हूँ; लेकिन जो आदमी एख दुष्टा से विवाह करे, उसे अपने यहाँ रखना वास्तव में जटिल समस्या थी। आये-दिन टंट-बखड़े होगे, नयी-नयी उलझनें पैदा होगी, कभी पुलिस दौड़ लेकर आयेगी,

कभी मुकदमें खड़े होगे। सम्भव हैं, चोरी की वारदातें भी हों। इस दलदल से दूर रहना ही अच्छा। गंगू क्षूधा-पीड़ित प्राणी की भाँति रोटी का टुकड़ा देखकर उसकी ओर लपक रहा हैं। रोटी जूठी हैं, सूखी हैं, खाने योग्य नहीं हैं, इसकी उसे परवाह नहीं; उसको विचार-बुद्धि से काम लेना कठिन था। मैने उसे पृथक कर देने ही में अपनी कुशल समझी।

2

पाँच महीने गुजर गये। गंगू ने गोमती से विवाह कर लिया था और उसी मुहल्लें में एक खपरैल का मकान लेकर रहता था। वह अब चाट का खोंचा लगाकर गुजर-बसर करता था। मुझे जब कभी बाजार में मिल जाता , तो मैं उसका क्षेम-कुशल पूछता। मुझे उसके जीवन से विशेष अनुराग हो गया था। यह एक सामाजिक प्रश्न की परीक्षा थी- सामाजिक ही नहीं, मनोवैज्ञानिक भी। मैं देखना चाहता था, इसका परिणाम क्या होता हैं। मैं गंगू को सदैव प्रसन्न-मुख देखता। समृद्धि और निश्चिन्तता के मुख पर जो एक तेज और स्वभाव में जो एक आत्म-सम्मान पैदा हो जाता हैं, वह मुझे यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता था। रुपये बीस आने की रोज बिक्री हो जाती थी। इसमें से लागत निकालकर आठ-दस आने बच जाते थे। यही उसकी जीविका थी; किन्तु इसमें किसी देवता का वरदान था; क्योंकि इस वर्ग के मनुष्यों में जो निर्लज्जता और विपन्नता पायी जाती हैं, इसका वहाँ चिह्न तक न था। उसके मुख पर आत्म-विश्वास और आनन्द की झलक थी, जो चित्त की शान्ति से ही आ सकती हैं।

एक दिन मैंने सुना कि गोमती गंगू के घर से भाग गयी हैं! कह नहीं सकता क्यों! मुझे इस खबर से एक विचित्र आनन्द हुआ। मुझे गंगू के संतुष्ट और सुखी जीवन पर एक प्रकार की ईर्ष्या होती थी। मैं उसके विषय में किसी अनिष्ट की, किसी घातक अनर्थ की, किसी लज्जास्पद घटना की प्रतिक्षा करता था। इस खबर से इस ईर्ष्या को सान्त्वना मिली। आखिर वही बात हुई, जिसका मुझे विश्वास था। आखिर बचा को अपनी अदूरदर्शिता का दंड भोगना पड़ा। अब देखे,

बचा कैसे मुँह दिखाते हैं। अब आँखें खुलेगी और मालूम होगा कि लोग, जो उन्हें इस विवाह से रोक रहे थे, उनके कैसे शुभ-चिन्तक थे। उस वक़्त तो ऐसा मालूम होता था, मानो आपको कोई दुर्लभ पदार्थ मिला जा रहा हो। मानो मुक्ति का द्वार खुल गया हैं। लोगों ने कितना कहा कि यह स्त्री विश्वास के योग्य नहीं है, कितनों को दगा गे चुकी हैं, तुम्हारे साथ भी दगा करेगी, लेकिन कानों पर जूँ तक न रेंगी। अब मिले, तो जरा उसके मिजाज पूछूँ। कहूँ- क्यों महाराज, देवीजी का यह वरदान पाकर प्रसन्न हुए या नहीं? तुम तो कहते थे, वह ऐसी हैं और वैसी हैं, लोग केवल दुर्भावना के कारण दोष आरोपित करते हैं। अब बतलाओ, किसकी भूल थी?

उसी दिन संयोगवश गंगू से बाजार में भेट हो गयी। घबराया हुआ था, बदहवास था, बिल्कुल खोया हुआ। मुझे देखते ही उसकी आँखों में आँसू भर आये, लज्जा से नहीं व्यथा से। मेरे पास आकर बोला- बाबूजी, गोमती ने मेरे साथ विश्वासघात किया। मैने कुटिल आनन्द से, लेकिन कृमित्र सहानुभूति दिखाकर कहा- तुमसे तो मैने पहले ही कहा था; लेकिन तुम माने ही नहीं, अब सब्र करो। इसके सिवा और क्या उपाय हैं। रूपये पैसे ले गयी या कुछ छोड़ गयी?

गंगू ने छाती पर हाथ रखा। ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे इस प्रश्न ने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया।

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए, उसने धेले की भी चीज नहीं छूई। अपना जो कुछ था, वह भी छोड़ गयी। न-जाने मुझमें क्या बुराई देखी। मैं उसके योग्य न था और क्या कहूँ। वह पढ़ी-लिखी थी, मैं करिया अक्षर भैंस बराबर। मेरे साथ इतने दिन रही, यहीं बहुत हैं। कुछ दिन औऱ उसके साथ रह जाता, तो आदमी बन जाता। उसका आपसे कहाँ तक बखान करूँ हजूर। औरों के लिए चाहे जो कुछ रही हो, मेरे लिए तो किसी देवता का आशीर्वाद थी। न-जाने मुझेस क्या खता हो गयी। मगर कसम ले लीजिए, जो उसके मुख पर मैल तक आया हो। मेरी औकात ही क्या हैं बाबूजी! दस-बराबर आने का मजूर हूँ; पर इसी में उसके हाथो इतनी बरक्कत थी कि कभी कमी नहीं पड़ी।'

मुझे इन शब्दों से घोर निराशा हुई। मैने समझा था, वह उसकी वेवफाई की कथा कहेगा और मैं उसकी अन्ध-भक्ति पर कुछ सहानुभूति प्रकट करूँगा; मगर उस मूर्ख की आँखें अब तक नहीं खुली। अब भी उसी का मंत्र पढ़ रहा हैं। अवश्य ही इसका चित्त कुछ अव्यवस्थित हैं।

मैने कुटिल परिहास किया- तो तुम्हारे घर से कुछ नहीं ले गयी?

'कुछ भी नहीं बाबूजी, धेले की भी चीज नहीं।'

'और तुमसे प्रेम भी बहुत करती थी?'

'अब आपसे क्या कहूँ बाबूजी, वह प्रेम तो मरते दम तक याद रहेगा।'

'फिर भी तुम्हें छोड़कर चली गयी?'

'यहीं तो आश्चर्य हैं बाबूजी!'

'त्रिया-चरित का नाम कभी सुना हैं?'

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए। मेरी गर्दन पर कोई छुरी रख दे, तो भी मैं उसका यश ही गाऊँगा।'

'तो फिर ढूँढ निकालो!'

'हाँ, मालिक। जब तक उसे ढूँढ न लाऊँगा, मुझे चैन न आयेगा। मुझे इतना मालूम हो जाय कि वह कहाँ हैं, फिर तो मैं उसे ले ही आऊँगा; और बाबूजी, मेरा दिल कहता हैं कि वह आयेगी जरूर। देख लीजिएगा। वह मुझसे रूठकर नही गयी; लेकिन दिल नहीं मानता। जाता हूँ, महीने-दो-महीने जंगल, पहाड़ की धूल छानूँगा। जीता रहा तो फिर आपके दर्शन करूँगा।'

यह कह कह वह उन्माद की दशा में एक तरफ चल दिया।

3

इसके बाद मुझे एक जरूरत से नैनीताल जाना पड़ा। सैर करने के लिए नहीं।

एक महीने बाद लौटा, और अभी कपड़े भी न उतारने पाया था कि देखता हूँ, गंगू एक नवजात शिशु को गोद में लिये खड़ा हैं। शायद कृष्ण को पाकर नन्द भी इतने पुलकित न हुए होंगे। मालूम होता था, उसके रोम-रोम से आनन्द फूटा पड़ता हैं। चेहरे और आँखों से कृतज्ञता और श्रद्धा के राग से निकल रहे थे। कुछ वही भाव था, जो किसी क्षुधा-पीड़ित भिक्षुक के चेहरे पर भरपेट भोजन करने के बाद नजर आता हैं।

मैंने पूछा- कहो महाराज, गोमती देवी का कुछ पता लगा, तुम तो बाहर गये थे?

गंगू ने आपे में न समाते हुए जवाब दिया- हाँ बाबूजी, आपके आशीर्वाद से ढूँढ लाया। लखनऊ के जनाने अस्पताल में मिली। यहाँ एक सहेली से कह गयी थी अगर वह बहुत घबरायें तो बतला देना। मैं सुनते ही लखनऊ भागा औऱ उसे घसीट लाया। घाते में यह बच्चा भी मिल गया

उसने बच्चे को उठाकर मेरी तरफ बढ़ाया। मानो कोई खिलाड़ी तमगा पाकर दिखा रहा हो।

मैने उपहास के भाव से पूछा- अच्छा, यह लड़का भी मिल गया? शायद इसीलिए वह यहाँ से भागी थी। हैं तो तुम्हार ही लड़का?

'मेरा काहे को हैं बाबूजी, आपका हैं, भगवान का हैं।'

'तो लखनऊ में पैदा हुआ?'

'हाँ बाबूजी, अभी तो कुछ एक महीने का हैं।'

'तुम्हारे ब्याह हुए कितने दिन हुए?'

'यह सातवां महीना चल रहा हैं।'

'तो शादी के छठे महीने पैदा हुआ?'

'और क्या बाबूजी।'

'फिर भी तुम्हारा लड़का हैं?'

'हाँ, जी।'

'कैसी बे-सिर की बात कर रहे हो?'

मालूम नही, वह मेरा आशय समझ रहा था, या बन रहा था। उसी निष्कपट भाव से बोला- मरते-मरते बची, बाबूजी नया जनम हुआ। तीन दिन, तीन रात छटपटाती रही। कुछ न पूछिए।

मैने अब जरा व्यंग्य-भाव से कहा- लेकिन छः महीने में लड़का होते आज ही सुना।

यह चोट निशाने पर जा बैठी।

मुसकराकर बोला- अच्छा, वह बात! मुझे तो उसका ध्यान ही नही आया। इसी भय से तो गोमती भागी थी। मैने कहा- गोमती, अगर तुम्हारा मन मुझसे नहीं मिलता, तो तुम मुझे छोड़ दो। मैं अभी चला जाऊँगा और फिर कभी तुम्हारे पास न आऊँगा। तुमको जब कुछ काम पड़े तो मुझे लिखना, मैं भरसक तुम्हारी मदद करूँगा। मुझे तुमसे कोई मलाल नहीं हैं। मेरे आँखो में तुम अब भी उतनी ही भली हो। अब भी मैं तुम्हें उतना ही चाहता हूँ। नहीं, अब मैं तुम्हें और ज्यादा चाहता हूँ; लेकिन अगर तुम्हारा मन मुझसे फिर नहीं गया हैं, तो मेरे साथ चलो।

गंगू जीते-जी तुमसे बेवफाई नहीं करेगा। मैने तुमसे इसलिए विवाह नहीं किया कि तुम देवी हो; बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हें चाहता था औऱ सोचता था कि तुम भी मुझे चाहती हो। यह बच्चा मेरा बच्चा हैं, मेरा अपना बच्चा हैं। मैने एक बोया हुआ खेत लिया, तो क्या फसल को इसलिए छोड़ दूँगा, कि उसे दूसरे ने बोया था?

यह कहकर उसने जोर से ठट्ठा मारा।

मैं कपड़े उतारना भूल गया। कह नहीं सकता, क्यों मेरी आँखें सजल हो गयीं। न-जाने कौन-सी शक्ति थी, जिसने मेरी मनोगत घृणा को दबाकर मेरे हाथों को बढ़ा दिया। मैंने उस निष्कलंक बालक को गोद में ले लिया और इतने प्यार से उसका चुम्बन लिया कि शायद अपने बच्चों का भी न लिया होगा।

गंगू बोला- बाबूजी, आप बड़े सज्जन हैं। मै गोमती से बार-बार आपका बखान किया करता हूँ। कहता हूँ, चल, एक बार उनके दर्शन कर आ; लेकिन मारे लाज के आती ही नही।

मैं और सज्जन! अपनी सज्जनता का पर्दा आज मेरी आँखों से हटा। मैने भक्ति में डूबे हुए स्वर में कहा- नहीं जी, मेरे-जैसे कलुषित मनुष्य के पास वह क्या आयेगी। चलो, मैं उनके दर्शन करने चलता हूँ। तुम मुझे सज्जन समझते हो? मैं ऊपर से सज्जन हूँ; पर दिल का कमीना हूँ। असली सज्जनता तुममें है और यह बालक वह फूल हैं, जिससे तुम्हारी सज्जनता की महक निकल रही हैं।

मैं बच्चे को छाती से लगाये हुए गंगू के साथ चला।

***

जीवन का शाप

कावसजी ने पत्र निकाला और यश कमाने लगे। शापूरजी ने रूई की दलाली शुरू की और धन कमाने लगे? कमाई दोनों ही कर रहे थे, पर शापुरजी प्रसन्न थे; कावसजी विरक्त। शापुरजी को धन के साथ सम्मान और यश आप-ही-आप मिलता था। कावसजी को यश के साथ धन दूरबीन से देखने पर भी दिखायी न देता था; इसलिए शापुरजी के जीवन में शान्ति थी, सहृदयता थी, आशीर्वाद था, क्रीड़ा थी। कावसजी के जीवन में अशान्ति थी, कटुता थी निराशा थी, उदासीनता थी। धन को तुच्छ समझने की वह बहुत चेष्ठा करते थे; लेकिन प्रत्यक्ष को कैसे झुठला देते? शापूरजी के घर में विराजने वाले सौजन्य और शांति के सामने उन्हें अपने घर के कलह और फूहड़पन से घृणा होती थी। मृदुभाषणी मिसेज शापूर के सामने उन्हें अपनी गुलशन बानू संकीर्णता और ईर्ष्या का अवतार-सा लगती थी। शापूरजी के घर में आते, तो शीरी-बाई मृदु हास से उनका स्वागत करती। वह खुद दिन-भर के थके-माँदे घर आते तो गुलशन अपना दुखड़ा सुनाने बैठ जाती और उनको खूब फटकारें बताती- तुम भी अपने को आदमी कहते हो। मैं तो तुम्हें बैल समझती हूँ, बैल। बड़ा मेहनती हैं, गरीब हैं, सन्तोषी हैं, माना लेकिन उसे विवाह करने का क्या हक था?

कावसजी से एक लाख बार यह प्रश्न किया जा चुका हैं था कि जब तन्हें समाचार-पत्र निकालकर अपनी जीवन बरबाद करना था, तो तुमने विवाह क्यों किया? क्यों मेरी जिन्दगी तबाह कर दी? जब तुम्हारे घर में रोटियाँ न थी, तो मुझे क्यो लाये! इस प्रश्न का जवाब देने का कावसजी में शक्ति न थी। उन्हें कुछ सूझता ही न था। वह सचमुच अपनी गलती पर पछताते थे। एक बार बहुत तंग आकर उन्होंने कहा था- अच्छा भाई अब तो जो होना था; हो चुका; लेकिन मैं तुम्हें बाँधे तो नही हूँ, तुम्हें जो पुरुष ज्यादा सुखी रख सके, उसके साथ जाकर रहो, अब मैं क्या कहूँ? आमदनी नही बढ़ती, तो मैं क्या करूँ? क्या चाहती हो, जान

दे दूँ? इस पर गुलशन में उनके दोनों कान पकड़कर जोर से ऐंठे और गालों पर दो तमाचे लगाये और पैनी आँखों से काटती हुई बोली- अच्छा, अब चोंच सँभालो, नहीं तो अच्छा न होगा। ऐसी बात मुँह से निकालते तुम्हें लाज नही आती। हयादार होते, तो चिल्लू भर पानी में डूब मरते। उस दूसरे पुरूष के महल में आग लगा दूँगी, उसका मुँह झुलस दूँगी। तब से बेचारे कावसजी के पास इस प्रश्न का कोई जवाब न रहा। कहाँ तो यह असंतोष और विद्रोह की ज्वाला और कहाँ वह मधुरता औऱ भद्रता की देवी शींरी, जो कावसजी को देखते ही फूल की तरह खिल उठती, मीठी-मीठी बातें करती, चाय, मुरब्बे और फूलों से सत्कार करती और अक्सर उन्हें अपनी कार पर घर पहुँचा देती। कावसजी ने कभी मन में भी इसे स्वीकार करने का साहस नहीं किया; मगर उनके हृदय में यह लालसा छिपी हुई थी कि गुलशन की जगह शीरीं होती, तो उनका जीवन कितना गुलजार होता! कभी-कभी गुलशन की कटूक्तियों से वह इतने दुखी हो जाते कि यमराज का आवाहन करते। घर उनके लिए कैदखाने से कम जान-लेवा न था और उन्हें जब अवसक मिलता, सीधें शीरीं के घर जाकर अपने दिल की जलन बुझा आते।

2

एक दिन कावसजी सबेरे गुलशन से झल्लाकर शापूरजी के टेरेस में पहुँचे, तो देखा शीरी बानू की आँखें लाल हैं और चेहरा भभराया हुआ हैं, जैसे रोकर उठी हो। कावसजी ने चिन्तित होकर पूछा- आपका जी कैसा है, बुखार तो नहीं आ गया।

शीरीं ने दर्द-भरी आँखों से देखकर रोनी आवाज से कहा- नही, बुखार तो नहीं हैं, कम-से-कम देह का बुखार तो नहीं हैं।

कावसजी इस पहेली का कुछ मतलब न समझे।

शीरीं ने एक क्षण मौन रहकर फिर कहा- आपको मैं अपना मित्र समझती हूँ मि. कावसजी! आपसे क्या छिपाऊँ। मैं इस जीवन से तंग आ गयी हूँ। मैने अब तक

हृदय की आग हृदय में रखी; लेकिन ऐसा मालूम होता है कि अब उसे बाहर न निकालूँ , तो मेरी हड्डियाँ तक जल जायेंगी। एक वक़्त आठ बजे हैं, लेकिन मेरे रँगीले पिया का कही पता नहीं। रात को खाना खाकर एक मित्र से मिलने का बहाना करके घर से निकले थे और अभी तक लौटकर नहीं आये। यह आज कोई नई बात नहीं हैं, इधर कई महीनों से इनकी रोज का आदत है। मैने आज तक आपसे कभी अपना दर्द नहीं कहा, मगर उस समय भी, जब मैं हँस-हँसकर आपसे बाते करती थी, मेरी आत्मा रोती थी।

कावसजी ने निष्कपट भाव से कहा- तुमने पूछा नहीं, कहाँ रह जाते हो?

'पूछने से क्या लोग अपने दिल की बात बता दिया करते हैं?'

'तुमसे तो उन्हें कोई भेद न रखना चाहिए।'

'घर में जी न लगे तो आदमी क्या करे?'

'मुझे तो यह सुनकर आश्चर्य हो रहा हैं। तुम जैसी देवी जिस घर में हो, वह स्वर्ग हैं। शापूरजी को तो अपना भाग्य सराहना चाहिए!'

'आपका यह भाव तभी तक हैं, जब तक आपके पास धन नहीं हैं। आज तुम्हें कहीं से दो-चार लाख रुपये मिल जायँ, तो तुम यों न रहोगे और तुम्हारे ये भाव बदल जायँगे। यही धन का सबसे बड़ा अभिशाप हैं। ऊपरी सुख-शांति के नीचे कितनी आग हैं, यह तो उसी वक़्त खुलता हैं, तब ज्वालामुखी फट पड़ता हैं। वह समझते हैं, धन से घर भर कर उन्होंने मेरे लिए वह सब कुछ कर दिया जो उनका कर्त्तव्य था और अब मुझे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं। यह नही जानते कि ऐश के ये सामान उस मिश्री-तहखानों में गड़े हुए पदार्थों की तरह हैं, जो मृतात्मा के भोग के लिए रखे जाते थे।'

कावसजी आज एक नयी बात सुन रहे थे। उन्हें अब तक जीवन का जो अनुभव

हुआ था, वह यह था कि स्त्री अन्तःकरण से विलासिनी होती हैं। उस पर लाख प्राण वारो, उनके लिए मर ही क्यों न मिटो, लेकिन व्यर्थ । वह केवल खरहरा नहीं चाहती, उससे कहीं ज्यादा दाना और घास चाहती हैं। लेकिन एक यह देवी हैं, जो विलास की चीजों को तुच्छ समझती हैं और केवल मीठे स्नेह और सहवास से ही प्रसन्न रहना चाहती हैं। उनके मन में गुदगुदी सी उठी।

मिसेज शापूर ने फिर कहा- उनका यह व्यापार मेरी बर्दाश्त के बाहर हो गया हैं, मि. कावसजी! मेरे मन में विद्गोह की ज्वाला उठ रही हैं और मैं धर्मशास्त्र और मर्यादा इन सभी का आश्रय लेकर भी त्राण नही पाती ! मन को समझाती हूँ- क्या संसार में लाखों विधवाएँ नहीं पड़ी हुई हैं; लेकिन किसी तरह चित्त नहीं शान्त होता। मुझे विश्वास आता जाता हैं कि वह मुझे मैदान में आने के लिए चुनौती दे रहे हैं। मैने अब तक उनकी चुनौती नहीं ली हैं; लेकिन अब पानी सिर से ऊपर चढ़ गया हैं। और मैं किसी तिनके का सहारा ढूँढे बिना नहीं रह सकती। वह जो चाहते हैं, वह हो जायगा। आपके मित्र हैं, आपसे बन पड़े, तो उनको समझाइए। मैं इस मर्यादा की बेड़ी को अब और न पहन सकूँगी।

मि. कावसजी मन में भावी सुख का एक स्वर्ग का निर्माण कर रहे थे। बोले- हाँ-हाँ मैं अवश्य समझाऊँगा। यह तो मेरा धर्म हैं; लेकिन मुझे आशा नहीं कि मेरे समझाने का उन पर कोई असर हो। मैं तो दरिद्र हूँ, मेरे समझाने का उनकी दृष्टि में मूल्य ही क्या?

'यों वह मेरे ऊपर कृपा रखते हैं बस, उनकी यहीं आदत मुझे पसन्द नही!'

'तुमने इतने दिनों बर्दाश्त किया, यही आश्चर्य है। कोई दूसरी औरत तो एक दिन न सहती।'

'थोड़ी-बहुत तो यह आदत सभी पुरुषों में होती हैं; लेकिन ऐसे पुरुषों की स्त्रियाँ भी वैसी ही होती हैं। कर्म से नही, मन से ही सही। मैने तो सदैव इनको अपना इष्टदेव समझा!'

'किन्तु जब पुरुष इसका अर्थ ही न समझे, तो क्या हो? मुझे भय हैं, वह मन में कुछ और न सोच रहे हो।'

'और क्या सोच सकते हैं?'

'आप अनुमान कर सकती हैं?'

'अच्छा, वह बात! मगर मेरा अपराध?'

'शेर और मेमनेवाली कथा आपने नहीं सुनी?'

मिसेज शापूर एकाएक चुप हो गयी। सामने से शापूरजी की कार आती दिखायी दी। उन्होंने कावसजी को ताकीद की और विनय-भरी आँखों से देखा और दूसरे द्वार के कमरे से निकलकर अन्दर चली गयी। मि. शापूर लाल आँखे किये कार से उतरे और मुस्कराकर कावसजी से हाथ मिलाया। स्त्री की आँखें भी लाल थी, पति की आँखें भी लाल। एक रुदन से, दूसरी रात खुमारी से।

3

शापूरजी ने हैट उतारकर खूँटी पर लटकाते हुए कहा- क्षमा कीजिएगा, मैं रात को एक मित्र के घर सो गया। दावत थी। खाने में देर हुई, तो मैने सोचा अब कौन घर जाय।

कावसजी ने व्यंग्य मुसकान के साथ कहा- किसके यहाँ दावत थी। मेरे रिपोर्टर में तो कोई खबर नहीं दी। जरा मुझे नोट करा दीजिए।

उन्होंने जेब से नोटबुक निकाली।

शापुरजी ने सतर्क होकर कहा- ऐसी कोई बड़ी दावत नहीं थी जो, दो-चार मित्रों का

प्रीतिभोज था।

'फिर भी समाचार तो जानना चाहिए। जिस प्रीतिभोज में आप-जैसे प्रतिष्ठित लोग शरीक हो, वह साधारण बात नहीं हो सकती। क्या नाम हैं मेजवान साहब का?'

'आप चौकेंगे तो नहीं?'

'बताइए तो।'

'मिस गौहर!'

'मिस गौहर!!'

'जी हाँ, आप चौकें क्यों? क्या आप इसे तस्लीम नहीं करते कि दिन-भर रुपये-आने-पाई से सिर मारने के बाद मुझे कुछ मनोरंजन करने का भी अधिकार हैं, नही तो जीवन भार हो जाय।'

'मैं इसे नहीं मानता।'

'क्यों?'

'इसीलिए कि मैं इस मनोरंजन को अपनी ब्याहता स्त्री के प्रति अन्याय समझता हूँ। '

शापूरजी नकली हँसी हँसे- यही दकियानूसी बात। आपको मालूम होना चाहिए; आज का समय ऐसा कोई बन्धन स्वीकार नहीं करता।

'और मेरा ख्याल हैं कि कम-से-कम इस विषय में आज का समाज एक पीढ़ी पहले के समाज से कहीं परिष्कृत है। अब देवियों का यह अधिकार स्वीकार किया जाने लगा हैं।'

'यानी देवियाँ पुरुषों पर हुकूमत कर सकती हैं?'

'उसी तरह जैसे पुरुष देवियों पर हुकूमत कर सकते हैं।'

'मैं इसे नहीं मानता। पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं हैं, स्त्री पुरुष की मुहताज हैं।'

'आपका आशय यही तो है कि स्त्री अपने भरण-पोषण के लिए पुरुष पर अवलम्बित हैं?'

'अगर आप इन शब्दों में कहना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं; मगर अधिकार की बागडोर जैसे राजनीति में, वैसे ही समाज-नीति मे धनबल के हाथ रही हैं और रहेगी।'

'अगर दैबयोग से धनोपार्जन का काम स्त्री कर रही हो और पुरुष कोई काम न मिलने के कारण घर बैठा हो, तो स्त्री को अधिकार हो कि अपना मनोरंजन जिस तरह चाहे करे?'

'मैं स्त्री को अधिकार नहीं दे सकता।'

'यह आपका अन्याय हैं।'

'बिल्कुल नहीं। स्त्री पर प्रकृति मे ऐसे बन्धन लगा दिये हैं कि वह जितना भी चाहे, पुरुष की भाँति स्वच्छन्द नही रह सकती और न पशुबाल में पुरुष का मुकाबला ही कर सकती हैं। हाँ, गृहिणी का पदत्याग कर या अप्राकृतिक जीवन का आश्रय लेकर, वह सब कुछ कर सकती हैं।'

'आप लोग उसे मजबूर कर रहे हैं कि अप्राकृतिक जीवन का आश्रय ले।'

'मैं ऐसे समय की कल्पना ही नहीं कर सकता, जब पुरुषों का आधिपत्य स्वीकार करनेवाला औरतों का काल पड़ जाय। कानून और सभ्यता मैं नही जानता।

पुरुषों ने स्त्रियों पर हमेशा राज किया हैं और करेंगे।'

सहसा कावसजी ने पहलू बदला। इतनी थोड़ी सी देर में ही वह अच्छे खासे कूटनीति-चतुर हो गये थे। शापूरजी को प्रशंसा-सूचक आँखों से देखकर बोले- तो हम और आप दोनों एक विचार के हैं। मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। मैं भी स्त्री को गृहिणी, माता और स्वामिनी, सब कुछ मानने को तैयार हूँ, पर उसे स्वच्छन्द नहीं देख सकता। अगर कोई स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती हैं तो उसके लिए मेरे घर में स्थान नहीं हैं। अभी मिसेज शापूर की बातें सुनकर दंग रह गया। मुझे इसकी कल्पना भी न थी कि कोई नारी मन में इतने विद्रोहात्मक भावों को स्थान दे सकती हैं।

मि. शापूर की गर्दन की नसें तन गयी; नथूने फूल गये। कुर्सी से उठकर बोले- अच्छा, तो अब शीरीं ने यह ढंग निकाला! मैं अभी उससे पूछता हूँ- आपके सामने पूछता हूँ- अभी फैसला कर डालूँगा। मुझे उसकी परवाह नही हैं। किसी की परवाह नहीं हैं। बेवफा औरत? जिसके हृदय में जरा भी संवेदना नहीं, जो मेरे जीवन में जरा-सा आनन्द भी नहीं सह सकती। चाहती हैं, मैं उसके अंचल में बँधा-बँधा घूमूँ! शापूर से यह आशा रखती हैं? अभागिनी भूल जाती हैं कि आज मैं आँखों से इशारा कर दूँ, तो एक सौ एक शीरियाँ मेरी उपासना करने लगे; जी हाँ, मेरे इशारों पर नाचें। मैंने इसके लिए जो कुछ किया, बहुत कम पुरुष किसी स्त्री के लिए करते हैं। मैने... मैंने...

उन्हे ख्याल आ गया कि वह जरूरत से ज्यादा बहके जा रहे हैं। शीरी की प्रेममय सेवाएँ याद आयीं, रुककर बोले- लेकिन मेरा ख्याल हैं कि वह अब भी समझ से काम ले सकती हैं। मै उसका दिल नहीं दुखाना चाहता। मैं यह भी जानता हूँ कि वह ज्यादा-से-ज्यादा जो कर सकती हैं, वह शिकायत हैं। इसके आगे बढ़ने की हिमाकत वह नहीं कर सकती। औरतों को मना लेना बहुत मुश्किल नहीं हैं, कम-से-कम मुझे तो यही तजरबा हैं।

कावसजी ने खंडन किया- मेरा तजरबा तो कुछ और हैं।

'हो सकता हैं; मगर आपके पास खाली बाते हैं, मेरे पास लक्ष्मी का आशीर्वाद हैं।'

'जब मन में विद्रोह के भाव जम गये, तो लक्ष्मी के टाले भी नही टल सकते।'

शापूरजी ने विचारपूर्ण भाव से कहा- शायद आपका विचार ठीक हैं।

4

कई दिनों के बाद कावसजी की शीरीं से पार्क में मुलाकात हुई। वह इसी अवसर की खोज में थे। उसका स्वर्ग तैयार हो चुका था। केवल शीरीं को प्रतिष्ठित करने की कसर थी। उस शुभ-दिन की कल्पना में वह पागल-से हो रहे थे। गुलशन को उन्होंने उसके मैके भेज दिया था। भेज क्या दिया था, वह रूठकर चली गयी थी। जब शीरीं उनकी दरिद्रता का स्वागत कर रही हैं, तो गुलशन की खुशामद क्यो की जाय? लपककर शीरी से हाथ मिलाया और बोले- आप खूब मिलीं। मैं आज आनेवाला था।

शीरीं ने गिला करते हुए कहा- आपकी राह देखते-देखते आँखे थक गयी। आप भी जबानी हमदर्दी ही करना जानते हैं। आपको क्या खबर हुई, इन कई दिनों में मेरी आँखों से कितने आँसू बहे हैं।

कावसजी ने शीरीबानू की उत्कंठापूर्ण मुद्रा देखी, जो बहुमूल्य रेशमी साड़ी की आब से और भी दमक उठी थी, और उनका हृदय अंदर से बैठता हुआ जान पड़ा। उस छात्र की-सी दशा हुई, जो आज अन्तिम परीक्षा पास कर चुका हो औऱ जीवन का प्रश्न उसके सामने अपने भयंकर रूप में खड़ा हो । काश! वह कुछ दिन और परीक्षाओं की भूल-भुलैया में जीवन के स्वप्नों का आनन्द ले सकता! उस स्वप्न के सामने यह सत्य कितना डरावना था। अभी तक कावसजी ने मधुमक्खी का शहद ही चखा था। इस समय वह उनके मुख पर मँडरा रही थी और वह डर रहे थे कि डंक न मारे।

दबी हुई आवाज से बोले- मुझे यह सुनकर बड़ा दुख हुआ। मैने तो शापुर को बहुत समझाया था।

शीरीं ने उनका हाथ पकड़कर एक बेच पर बिठा दिया औऱ बोली- उन पर अब समझाने-बुझाने का कोई असर न होगा। और मुझे ही क्या गरज पड़ी हैं कि मैं उनके पाँव सहलाती रहूँ। आज मैने निश्चय कर लिया हैं, अब उस घर में लौटकर न जाऊँगी। अगर उन्हें अदालत में जलील होने का शौक हैं, तो मुझ पर दावा करे, मै तैयार हूँ। मैं जिसके साथ नहीं रहना चाहती, उसके साथ रहने के लिए ईश्वर भी मुझे मजबूर नहीं कर सकता, अदालत क्या कर सकती हैं? अगर तुम मुझे आश्रय दे सकते हो, तो मैं तुम्हारी बनकर रहूँगी, तब तक तुम मेरे पास रहोगे। अगर तुममे इतना आत्मबल नहीं है, तो मेरे लिए दूसरे द्वार खुल जायेगे। अब साफ-साफ बतालाओ, क्या वह सारी सहानुभूति जबानी थी।

कावसजी ने कलेजा मजबूत करके कहा- नहीं-नहीं शीरी खुदा जानता हैं, मुझे तुमसे कितना प्रेम हैं। तुम्हारे लिए मेरे हृदय में स्थान हैं।

'मगर गुलशन का क्या करोगो?'

'उसे तलाक दे दूँगा।'

'हाँ, यहीं मैं चाहती हूँ। तो मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, अभी इसी दम। शापूर से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं हैं।'

कावसजी को अपने दिन में कम्पन का अनुभव हुआ। बोले- लेकिन अभी तो वहाँ कोई तैयारी नहीं हैं।

'मेरे लिए किसी तैयारी की जरूरत नहीं। तुम सब कुछ हो। टैक्सी ले लो। मैं इसी वक़्त चलूँगी।'

कावसजी टैक्सी को खोज में पार्क से निकले। वह एकान्त में विचार करने के लिए थोड़ा-सा समय चाहते थे, इस बहाने से उन्हें समय मिल गया। उन पर अब जवानी का नशा न था, जो विवेक की आँखों पर छाकर बहुधा हमें गड्ढ़े में गिरा देता था। अगर कुछ नशा था, तो अब तक हिरन हो चुका था। वह किस फन्दे में गला डाल रहे हैं, वह खूब समझते थे। शापूरजी उन्हें मिट्टी में मिला देने के लिए पूरा जोर लगायेंगे, यह भी उन्हें मालूम था। गुलशन उन्हें सारी दुनिया में बदनाम कर देंगी, यह भी वह जानते थे। ये सब विपत्तियाँ झेलने के लिए वह तैयार थे। शापूर की जबान बन्द करने के लिए उनके पास काफी दलीले थीं। गुलशन को भी स्त्री-समाज में अपमानित करने का उनके पास काफी मसाला था। डर था, तो यह कि शीरीं का यह प्रेम टिक सकेगा या नहीं। अभी तक शीरीं ने केवल उसके सौजन्य का परिचय पाया हैं, केवल उनकी न्याय, सत्य और उदारता से भरी बातें सुनी हैं। इस क्षेत्र में शापूरजी से उन्होंने बाजी मारी हैं, लेकिन उनके सौजन्य और उनकी प्रतिभा का जादू उनके बेसरोसामान घर में कुछ दिन ही रहेगा, इसमें उन्हें सन्देह था। हलवे की जगह चुपड़ी रोटियाँ भी मिले तो आदमी सब्र कर सकता हैं। रूखी भी मिल जायँ, तो वह सन्तोष कर लेगा; लेकिन सूखी घास सामने देखकर तो ऋषि-मुनि भी जामें से बाहर हो जायेंगे। शीरीं उनसे प्रेम करती हैं; लेकिन प्रेम के त्याग की भी तो सीमा हैं। दो-चार दिन भावुकता के उन्माद में यह सब्र कर ले; लेकिन भावुकता कोई टिकाऊँ चीज तो नहीं हैं। वास्तविकता के आघातों के सामने यह भावुकता कै दिन टिकेगी। उस परिस्थिति की कल्पना करके कावसजी काँप उठे। अब तक वह रनिवास में रही हैं। अब उसे एक खपरैल का कॉटेज मिलेगा, जिसकी फर्श पर कालीन की जगह टाट भी नहीं हैं; कहाँ वरदीपोश नौकरों की पलटन, कहाँ एक बुढ़िया मामा की संदिग्ध सेवाएँ जो बात-बात पर भुनभुनाती हैं, धमकाती हैं, कोसती हैं। उनका आधा वेतन तो संगीत सिखाने वाला मास्टर ही खा जायगा औऱ शापूर जी ने कहीं ज्यादा कमीनापन से काम लिया, तो उनको बदमाशों से पिटवा भी सकते हैं? पिटने से वह नही डरते। यह तो उनका फतह होगी; लेकिन शीरीं की भोग-लालसा पर कैसे विजय पायें। बुढ़िया मामा जब मुँह लटकाये आकर उसके सामने रोटियाँ और सालन परोस देगी, तब शीरी के मुँह पर कैसी विदग्ध विरक्ति छा जायेगी। कहीं वह खड़ी होकर उनको और अपनी

किस्मत को कोसने न लगे। नहीं, अभाव की पूर्ति सौजन्य से नहीं हो सकती। शीरीं का वह रूप कितान‍ा विकराल होगा।

सहसा एक कार सामने से आती दिखायी दी। कावसजी ने देखा- शापूरजी बैठे हुए थे। उन्होंने हाथ उठाकर कार को रुकवा लिया औऱ पीछे दौड़ते हुए जाकर शापूरजी से बोले- आप कहाँ जा रहे हैं?

'यों ही जरा घूमने निकला था।'

'शीरींबानू पार्क में हैं, उन्हें भी लेते जाइए।'

'वह मुझसे लड़कर आयी हैं कि अब इस घर में कभी कदम न रखूँगी।'

'और आप सैर करने जा रहे हैं?'

'तो क्या आप चाहते हैं, बैठकर रोऊँ?'

'वह बहुत रो रही हैं।'

'सच!'

'हाँ बहुत रो रही हैं।'

'तो शायद उसकी बुद्धि जाग रही हैं।'

'तुम इस समय उन्हें मना लो, तो वह हर्ष से तुम्हारे साथ चली जायँ।'

'मै परीक्षा करना चाहता हूँ कि वह बिना मनाये मानती हैं या नहीं।'

'मैं बड़े असमंजस में पड़ा हुआ हूँ। मुझपर दया करो; तुम्हारे पैरो पड़ता हूँ।'

'जीवन में जो थोड़ा आनन्द हैं, उसे मनावन के नाट्य में नहीं छोड़ना चाहता।'

कार चल पड़ी और कावसजी कर्त्तव्य-भ्रष्ट से वहीं खड़े रह गये। देर हो रही थीं। सोचा- कहीं शीरीं यह न समझ ले कि मैने भी उसके साथ दगा की; लेकिन जाऊँ भी तो क्योंकर? अपने सम्पादकीय कुटीर में उस देवी को प्रतिष्ठित करने की कल्पना ही उन्हें हास्यास्पद लगी। वहाँ के लिए तो गुलशन ही उपर्युक्त हैं। कुढ़ती हैं. कठोर बाते कहती हैं, रोती हैं, लेकिन वक़्त से भोजन तो देती हैं। फटे हुए कपड़ों को रफू तो कर देती हैं, कोई मेहमान आ जाता हैं, तो कितने प्रसन्न-मुख से उसका आदर-सत्कार करती हैं, मानो उसके मन में आनन्द-ही-आनन्द हैं। कोई छोटी-सी चीज भी दे दी, तो कितना फूल उठती हैं। थोड़ी-सी तारीफ करके चाहे उससे गुलामी करवा लो। अब उन्हें जरा-जरा बात पर झुँझला पड़ना, उसकी सीधी सी बातों का टेढ़ा जवाब देना, विकल करने लगा। उस दिन उसने यही तो कहा था कि उसकी छोटी बहन के सालगिरह पर कोई उपहार भेजना चाहिए। इसमें बरसने की कौन-सी बात थी। माना वह अपना सम्पादकीय नोट लिख रहे थे, लेकिन उनके लिए सम्पादकीय नोट जितना महत्व रखता हैं, क्या गुलशन के लिए उपहार भेजना उतना ही या उससे ज्यादा महत्व नही रखता? बेशक, उनके पास उस समय रुपये न थे, तो क्या वह मीठे शब्दों में यह नहीं कह सकते थे कि डार्लिंग? मुझे खेद हैं, अभी हाथ खाली हैं, दो-चार रोज में मैं कोई प्रबन्ध कर दूँगा। यह जवाब सुनकर वह चुप हो जाती। और अगर कुछ भुनभुना ही लेती तो उनका क्या बिगड़ जाता था? अपने टिप्पणियों में वह कितनी शिष्टता का व्यवहार करते हैं। कलम जरा भी गर्म पड़ जाय, तो गर्दन नापी जाय। गुलशन पर वह क्यों बिगड़ जाते हैं? इसीलिए कि वह उसके अधीन है और उन्हें रूठ जाने के सिवा कोई दंड नहीं दे सकती। कितनी नीच कायरता हैं कि हम सबलों के सामने दुम हिलाये और जो हमारे लिए अपने जीवन का बलिदान कर रही हैं, उसे काटने दौड़े।

सहसा एक तांगा आता हुआ दिखायी दिया और सामने आते ही उस पर से एक स्त्री उतर कर उनकी ओर चली। अरे! यह तो गुलशन हैं। उन्होंने आतुरता से

आगे बढ़कर उसे गले लगा लिया और बोले- तुम इस वक़्त यहाँ कैसे आयीं? मैं अभी-अभी तुम्हारा ही ख्याल कर रहा था।

गुलशन ने गदगद् कंठ से कहा- तुम्हारे ही पास जा रहीं थी। शाम को बरामदे में बैठी तुम्हारा लेख पड़ रही थी- न जाने कब झपकी आ गयी और मैंने एक बुरा सपना देखा। मारे डर के मेरी नींद खुल गयी और तुमसे मिलने चल पड़ी। इस वक़्त यहाँ कैसे खड़े हो? कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी? रास्ते भर मेरा कलेजा धड़क रहा था।

कावसजी ने आश्वासन देते हुए कहा- मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ। तुमने क्या स्वप्न देखा?

'मैने देखा- जैसे तुमने एक रमणी को कुछ कहा हैं और वह तुम्हें बाँध कर घसीटे लिये जा रही हैं।'

'कितना बेहूदा स्वप्न हैं; और तुम्हें इस पर विश्वास भी आ गया? मैं तुमसे कितनी बार कह चुका कि स्वप्न केवल चिन्तित मन की क्रीड़ा हैं।'

'तुम मुझसे छिपा रहे हो। कोई न कोई बात हुई हैं जरूर। तुम्हारा चेहरा बोल रहा हैं। अच्छा, तुम इस वक़्त यहाँ क्यो खड़े हो? यह तो तुम्हारे पढ़ने का समय हैं।'

'यों ही, जरा घूमने आया था।'

'झूठ बोलते हो। खा जाओ मेरे सिर का कसम।'

'अब तुम्हें एतबार ही न आयें तो क्या करूँ?'

'कसम क्योम नहीं खाते?'

'कसम को मैं झूठ का अनुमोदन समझता हूँ।'

गुलशन ने फिर उनके मुख पर तीव्र दृष्टि डाली । फिर एक क्षण के बाद बोली- अच्छी बात हैं। चलो, घर चले।

कावसजी ने मुस्कराकर कहा- तुम फिर मुझसे लड़ाई करोगी।

'सरकार से लड़कर भी तुम सरकार की अमलदारी में रहते हो कि नहीं? मैं भी तुमसे लड़ूँगी; मगर तुम्हारे साथ रहूँगी।'

'हम इसे कब मानते हैं कि यह सरकार की अमलदारी हैं।'

'यह तो मुँह से कहते हो। तुम्हारा रोआँ-रोआँ इसे स्वीकार करता हैं। नहीं तो तुम इस वक़्त जेल में होते।'

'अच्छा, चलो, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।'

'मैं अकेली नही जाने की। आखिर सुनूँ, तुम यहाँ क्या कर रहे हो?'

कावसजी ने बहुत कोशिश की कि गुलशन वहाँ से किसी तरह चली जायँ; लेकिन वह जितना ही इस पर जोर देते थे, उतना ही गुलशन का आग्रह भी बढ़ता जाता था। आखिर मजबूर होकर कावसजी को शीरीं और शापूर को झगड़े का वृत्तान्त कहना ही पड़ा; यद्यपि इस नाटक में उनका अपना जो भाग था उसे उन्होंने बड़ी होशियारी से छिपा देने की चेष्टा की।

गुलशन ने विचार करके कहा- तो तुम्हें भी यह सनक सवार हुई!

कावसजी ने तुरन्त प्रतिवाद किया- कैसी सनक! मैने क्या किया? अब यह तो इन्सानियत नहीं हैं कि एक मित्र की स्त्री मेरी सहायता माँगे और मैं बगलें झाँकने लगूँ।

'झूठ बोलने के लिए बडी़ अक़्ल की जरूरत होती हैं प्यारे, और वह तुममें नहीं हैं;

समझे? चुपके से जाकर शीरींबानू को सलाम करो और कहो कि आराम से अपने घर में बैठे। सुख कभी सम्पूर्ण नहीं मिलता। विधि इतना घोर पक्षपात नहीं कर सकता। गुलाब में काँटे होते ही हैं। अगर सुख भोगना हो तो उसे उसके दोषों के साथ भोगना पड़ेगा। अभी विज्ञान ने कोई उपाय नहीं निकाला कि हम सुख के काँटो को अलग कर सके! मुफ्त का माल उड़ानेवाले को ऐयाशी के सिवा और सूझेगी क्या? अगर धन सारी दुनिया का विलास न मोल लेना चाहे तो वह धन ही कैसा? शीरीं के लिए भी क्या वे द्वार नहीं खुले हैं, शापूरजी के लिए खुले हैं? उससे कहो- शापूर के घर में रहें, उसके धन को भोगे और भूल जाय कि वह शापूर की स्त्री हैं, उसी तरह जैसे शापूर भूल गया हैं कि वह शीरीं का पति हैं। जलना और कुढ़ना छोडकर विलास का आनन्द लूटे। उसका धन, एक-से-एक रूपवान विद्वान् नवयुवकों को खींच लायेंगा। तुमने ही एक बार मुझसे कहा था कि एक जमाने में फ्रांस में धनवान् विलासिनी महिलाओं का समाज पर आधिपत्य था। उनके पति सब कुछ देखते थे और मुँह खोने का साहस न करते थे। और मुँह क्या खोलते ? वे खुद इसी धुन में मस्त थे। यह धन का प्रसाद हैं। तुमसे न बने, तो चलो, मैं शीरीं को समझा दूँ। ऐयाश मर्द की स्त्री अगर ऐयाश न हो तो यह उसकी कायरता हैं- लतखोरपन हैं!'

कावसजी ने चकित होकर कहा- लेकिन तुम भी तो धन की उपासक हो?

गुलशन ने शर्मिन्दा होकर कहा- यहीं तो जीवन का शाप हैं। हम उसी चीज पर लपकते हैं, जिसमें हमारा अमंगल हैं, सत्यानाश हैं। मैं बहुत दिन पापा के इलाके में रही हूँ। चारों तरफ किसान और मजदूर रहते थे। बेचारे दिन-भर पसीना बहाते थे, शाम को घर जाते। ऐयाशी और बदनामी का कहीं नाम न था। और यहाँ शहर में देखती हूँ कि सभी घरों में यहीं रोना हैं। सब-के-सब हथकंड़ो से पैसे कमाते हैं और अस्वाभाविक जीवन बिताते हैं। आज तुम्हें कहीं से धन मिल जाय, तो तुम भी शापूर बन जाओगे, निश्चय।

'तब शायद तुम भी अपने बताये हुए मार्ग पर चलोगी, क्यों?'

'शायद नहीं, अवश्य।'

***

डामुल का कैदी

दस बजे रात का समय, एक विशाल भवन में एक सजा हुआ कमरा, बिजली की अँगीठी, बिजली का प्रकाश। बड़ा दिन आ गया।

सेठ खूबचन्दजी अफसरों की डालियाँ भेजने का सामान कर रहे हैं। फलों, मिठाइयों. मेवों, खिलौनों की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ सामने खड़ी हैं। मुनीमजी अफसरों के नाम बोले जाते हैं और सेठजी अपने हाथों यथासामान डालियाँ लगाते जाते हैं।

खूबचन्दजी एक मिल के मालिक थे, बम्बई के बड़े ठीकेदार। एक बार नगर के मेयर भी रह चुके हैं। इस वक़्त भी व्यापारी-सभाओं के मन्त्री और व्यापार मंडल के सभापति हैं। इस धन, यश, मान की प्राप्ति में डालियों का कितना भाग हैं, यह कौन कह सकता हैं, पर इस अवसर पर सेठजी के दस-पाँच हजार बिगड़ जाते थे। अगर कुछ लोग तुम्हें खुशामदी, टोड़ी, जीहज़ूर कहते हैं, तो कहा करें। इससे सेठजी का क्या बिगड़ता हैं। सेठजी उन लोगों में नहीं हैं, जो नेकी करके दरिया में डाल दें।

पुजारीजी ने आकर कहा- सरकार, बड़ा विलम्ब हो गया । ठाकुरजी का भोग तैयार हैं।

अन्य धनिकों की भाँति सेठजी ने भी एक मन्दिर बनवाया था। ठाकुरजी की पूजा करने के लिए एक पुजारी नौकर रख लिया था।

पुजारी को रोष-भरी आँखों से देखकर कहा- देखते नहीं हो, क्या हो रहा हैं? यह भी एक काम हैं, खेल नहीं, तुम्हारे ठाकुरजी ही सब कुछ न देंगे। पेट भरने के पर ही पूजा सूझती हैं। घंटे-आध-घंटे की देर हो जाने से ठाकुर जी भूखों न मर जायँगें।

पुजारी अपना-सा मुँह लेकर चले गये और सेठजी फिर डालियाँ सजाने में मसरूक हो गये।

सेठजी के जीवन का मुख्य काम धन कमाना था और उसके साधनों की रक्षा करना उनका मुख्य कर्त्तव्य। उनके सारे व्यवहार इसी सिद्धान्त के अधीन थे। मित्रों से इसलिए मिलते थे कि उससे धनोपार्जन में मदद मिलेगी। मनोरंजन भी करते थे, तो व्यापार की दृष्टि से; दान बहुत देते थे, पर उसमें भी यही लक्ष्य सामने रहता था। सन्ध्या और वन्दना उनके लिए पुरानी लकीर थी; जिसे पीटते रहनें में स्वार्थ सिद्ध होता था; मानो कोई बेगार हो। सब कामों से छुट्टी मिली, तो जाकर ठाकुरद्वारे में खड़े हो गये, चरणामृत लिया और चले आये।

एक घंटे के बाद पुजारीजी फिर सिर पर सवार हो गये। खूबचन्द उनका मुँह देखते ही झुँझला उठे। जिस पूजा में तत्काल फायदा होता था, उसमें कोई बार-बार विध्न डाले तो क्यों न बुरा लगे? बोले- कह दिया, अभी मुझे फुरसत नहीं हैं। खोपड़ी पर सवार हो गये। मैं पूजा का गुलाम नहीं हूँ। जब घर में पैसे होते है, तभी ठाकुरजी की भी पूजा होती हैं। घर में पैसे न होगे. तो ठाकुरजी भी पूछने न आयेंगे।

पुजारी हताश होकर चला गया और सेठजी फिर अपने काम में लगे।

सहसा उनके मित्र केशवरामजी पधारे। सेठजी उठकर गले से लिपट गये और बोले- किधर से? मैं तो अभी तुम्हें बुलाने वाला था।

केशवराम ने मुस्कराकर कहा- इतनी रात गये तक डालियाँ ही लग रही हैं? कल का सारा दिन पड़ा हैं, लगा लेना। तुम कैसे इतना काम करते हो, मुझे तो यही आश्चर्य होता हैं। आज क्या प्रोग्राम था, याद हैं?

सेठजी ने गर्दन उठाकर स्मरण करने की चेष्टा करके कहा- क्या कोई विशेष प्रोग्राम था? मुझे तो याद नहीं आता (एकाएक स्मृति जाग उठती हैं) अच्छा, वह

बात! हाँ, याद आ गया। अभी देर तो नहीं हुई । इस झमेले में ऐसा भूला कि जरा भी याद न रही।

'तो चलो फिर। मैंने तो समझा था, तुम वहाँ पहुँच गये होगे।'

'मेरे न जाने से लैला नाराज तो नहीं हुई?'

'यह तो वहाँ चलने पर मालूम होगा।'

'तुम मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।'

'मुझे क्या गरज पड़ी हैं, जो आपकी ओर क्षमा माँगूँ! वह तो त्योरियाँ चढाये बैठी थी। कहने लगी- उन्हें मेरी परवाह नहीं तो मुझे भी उनकी परवाह नहीं। मुझे आने ही न देती थी। मैने शांत तो कर दिया, लेकिन कुछ बहाना करना पड़ेगा।'

खूबचन्द ने आँखें मारकर कहा- मैं कह दूँगा, गवर्नर साहब ने जरूरी काम से बुला भेजा था।

'जी नहीं, यह बहाना वहाँ न चलेगा। कहेंगी- तुम मुझसे पूछकर क्यों नहीं गये? वह अपने सामने गवर्नर को समझती ही क्या हैं? रूप और यौवन बड़ी चीज हैं भाई साहब ! आप नहीं जानते।'

'तो फिर तुम्हीं बताओं, कौन-सा बहाना करूँ?'

'अजी, बीस बहाने हैं। कहना, दोपहर से 106 डिग्री का ज्वर था। अभी उठा हूँ।'

दोनों मित्र हँसे और लैला का मुजरा सुनने चले।

सेठ खूबचन्द का स्वदेशी मिल देश के बहुत बड़े मिलों में हैं। जब से स्वदेशी-आन्दोलन चला हैं, मिल के माल की खपत दूनी हो गयी हैं। सेठजी ने कपड़े की दर में दो आने रुपया बढ़ा दिये हैं फिर भी बिक्री में कोई कमी नहीं हैं; लेकिन इधर अनाज कुछ सत्ता हो गया हैं, इसलिए सेठजी ने मजूरी घटाने की सूचना दे दी हैं। कई दिनों से मजरों के प्रतिनिधियों और सेठजी में बहस होती रही। सेठजी जौ-भर भी न दबना चाहते थे। जब उन्हें आधी मजूरी पर नये आदमी मिल सकते हैं; तब वह क्यों पुराने आदमियों को रखें। वास्तव में यह चाल पुराने आदमियों को भगाने ही के लिए चली गयी थी।

अंत में मजूरों ने यहीं निश्चय किया कि हड़ताल कर दी जाय।

प्रातःकाल का समय हैं। मिल के हाते में मजूरों की भीड़ लगी हुई हैं। कुछ लोग चारदीवारी पर बैठे हैं, कुछ जमीन पर; कुछ इधर-उधर मटरगश्त कर रहे हैं। मिल के द्वार पर कांस्टेबलों का पहरा हैं। मिल में पूरी हड़ताल हैं।

एक युवक को बाहर से आते देखकर सैकड़ो मजूर इधर-उधर से दौड़कर उसके चारों ओर जमा हो गये। हरेक पूछ रहा था- सेठजी ने क्या कहा?

यह लम्बा, दुबला, साँवला युवक मजूरों का प्रतिनिधि था। उसकी आकृति में कुछ ऐसी दृढता, कुछ ऐसी निष्ठा, कुछ ऐसी गम्भीरता थी कि सभी मजूरों ने उसे नेता मान लिया था।

युवक के स्वर में निराशा थी, क्रोध था, आहत सम्मान का रुदन था।

'कुछ नहीं हुआ। सेठजी कुछ नहीं सुनते।'

चारो ओर से आवाजें आयीं- तो हम भी उनकी खुशामद नहीं करते।

युवक ने फिर कहा- वह मजूरी घटाने पर तुले हुए हैं, चाहे कोई काम करे या न करे। इस मिल से इस साल दस लाख का फायदा हुआ हैं। यह हम लोगों ही की

मेहनत का फल हैं, लेकिन फिर भी हमारी मजूरी काटी जा रही हैं। धनवानों का पेट कभी नहीं भरता। हम निर्बल हैं, निस्सहाय हैं, हमारी कौन सुनेगा? व्यापार मंडल उनकी ओर हैं, सरकार उनकी ओर हैं, मिल के हिस्सेदार उनकी ओर हैं, हमारा कौन हैं? हमारा उद्धार तो भगवान ही करेंगे।

एक मजूर बोला- सेठजी भी तो भगवान के बड़े भगत हैं।

युवक ने मुस्कराकर कहा- हाँ, बहुत बड़े भक्त हैं। यहाँ किसी ठाकुरद्वारे में उनके ठाकुरद्वारे की-सी सजावट नहीं हैं, कहीं इतनी विधिपूर्वक भोग नहीं लगता, कहीं इतने उत्सव नहीं होते, कहीं ऐसी झाँकी नहीं बनती। उसी भक्ति का प्रताप हैं कि आज नगर में इतना सम्मान हैं, औरो का माल पड़ा सड़ता हैं, इनका माल गोदाम में नहीं जाने पाता। वही भक्तराज हमारी मजूरी घटा रहे हैं। मिल में अगर घाटा हो तो हम आधी मजूरी पर काम करेंगे, लेकिन जब लाखों का लाभ हो रहा हैं तो किस नीति से हमारी मजूरी घटायी जा रहीं हैं। हम अन्याय नहीं सह सकते। प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल में घुसने न देंगे, चाहे वह अपने साथ फौज लेकर ही क्यों न आये? कुछ परवाह नहीं, हमारे ऊपर लाठियाँ बरसे, गोलियाँ चलें...

एक तरफ से आवाज आयी- सेठजी।

सभी पीछे फिर-फिर कर सेठजी की तरफ देखने लगे। सभी के चेहरों पर हवाईयाँ उड़ने लगी। कितने ही तो डरकर कांस्टबलों से मिल के अन्दर जाने के लिए चिरौरी करने लगे, कुछ लोग रुई की गाँठों की आड़ में जा छिपे। थोड़े से आदमी कुछ सहमे हुए- पर जैसे जान हथेली पर लिए - युवक के साथ खड़े रहे।

सेठजी ने मोटर से उतरते हुए कांस्टेबलों को बुलाकर कहा- इन आदमियों को मारकर बाहर निकाल दो, इसी दम।

मजूरों पर डंडे पड़ने लगे। दस-पाँच तो गिर पड़े। बाकी अपनी-अपनी जान लेकर

भागे। वह युवक दो आदमियों के साथ अभी तक डटा खड़ा था।

प्रभुता असहिष्णु होती हैं। सेठजी खुद आ जायँ, फिर भी ये लोग सामने खड़े रहे, यह तो खुला हुआ विद्रोह हैं। यह बेअदबी कौन सह सकता हैं। जरा इस लौड़े को देखो। देह पर साबित कपड़े भी नहीं हैं; मगर जमा खड़ा हैं, मानों मैं कुछ हूँ ही नहीं। समझता होगा, यह मेरा कर ही क्या सकते हैं?

सेठजी ने रिवाल्कर निकाल लिया और इस समूह के निकट आकर उसे जाने का हुक्म दिया; पर वह समूह अचल खड़ा था। सेठजी उन्मत्त हो गये। यह हेकड़ी ! तुरन्त हेड कांस्टेबल को बुलाकर हुक्म दिया- इन आदमियों को गिरफ्तार कर लो।

कांस्टेबलों ने तीनो आदमियों को रस्सियों से जकड़ लिया और उन्हें फाटक की ओर ले चले। इनका गिरफ्तार होना था कि एक हजार आदमियों का दल रेला मारकर निकल आया और कैदियों की तरफ लपका। कांस्टेबलों ने देखा, बन्दूक चलाने पर भी जान न बचेगी, तो मुलजिमों को छोड़ दिया और भाग खड़े हुए। सेठजी को ऐसा क्रोघ आया कि इन सारे आदमियों को तोप से उड़वा दें। क्रोध में आत्म-रक्षा की भी उन्हें परवाह न थी। कैदियों को सिपाहियों से छुड़ाकर वह जन समूह सेठजी की ओर आ रहा था। सेठजी ने समझा- सब-के-सब मेरी जान लेने आ रहे हैं। अच्छा! यह लौड़ा गोपी सभी के आगे हैं! यहीं यहाँ भी इनका नेता बना हुआ है! मेरे सामने कैसा भीगी बिल्ली बना हुआ था; पर यहाँ सबके आगे-आगे आ रहा हैं।

सेठजी अब भी समझौता कर सकते थे; पर यों दबकर विद्रोहियों से दान माँगना उन्हें असह्य था।

इतने में क्या देखते हैं कि वह बढ़ता हुआ समूह बीच ही में रूक गया। युवक ने उन आदमियों से कुछ सलाह की और तब अकेला सेठजी की तरफ चला। सेठजी ने मन में कहा- शायद मुझसे प्राण-दान की शर्तें तय करने आ रहा हैं। सभी ने

आपस में यही सलाह की हैं। जरा देखो, कितने निश्शंक भाव से चला आता हैं, जैसे कोई विजयी सेनापति हो। ये कांस्टेबल कैसे दुम दबाकर भाग खड़े हुए; लेकिन तुम्हें तो नहीं छोड़ता बचा, जो कुछ होगा, देखा जायगा। जब तक मेरे पास यह रिवाल्वर हैं, तुम मेरा क्या कर सकते हो! तुम्हारे सामने तो घुटना न टेकूँगा?

युवक समीप आ गया और कुछ बोलना ही चाहता था कि सेठजी ने रिवाल्वर निकालकर फायर कर दिया। युवक भूमि पर गिर पड़ा और हाथ-पाँव फैकने लगा।

उसके गिरते ही मजूरों में उत्तेजना फैल गयी। अभी तक उनमें हिंसा-भाव न था। वे केवल सेठजी को यह दिखा देना चाहते थे कि तुम हमारी मजूरी काट कर शान्त नहीं बैठ सकते; किन्तु हिंसा ने हिंसा को उद्दीप्त कर दिया। सेठजी ने देखा, प्राण संकट में हैं और समतल भूमि पर रिवाल्वर से भी देर तक प्राणरक्षा नहीं कर सकते; पर भागने का कहीं स्थान न था! जब कुछ न सूझा, तो वह रुई के गाँठ पर चढ़ गये और रिवाल्वर दिखा-दिखाकर नीचे वालों को ऊपर चढ़ने से रोकने लगे। नीचे पाँच-छह सौ आदमियों का घेरा था। ऊपर सेठजी अकेले रिवाल्वर लेकर खड़े थे। कहीं से कोई मदद नहीं आ रही हैं और प्रतिक्षण प्राणों की आशा क्षीण होती जा रही हैं। कांस्टेबलों ने भी अफसरों को यहाँ की परिस्थिति नहीं बतलायी; नहीं तो क्या अब तक कोई न आता? केवल पाँच गोलियों से कब तक जान बचेगी? एक क्षण में ये सब समाप्त हो जायँगी। भूल हुई, मुझे बन्दूक और कारतूस लेकर आना चाहिए था। फिर देखता इनकी बहादुरी। एक-एक को भूनकर रख देता; मगर क्या जानता था कि यहाँ इतनी भयंकर परिस्थिति आ खड़ी होगी?

नीचे के एक आदमी ने कहा- लगा दो गाँठों में आग। निकालो तो एक माचिस। रुई से धन कमाया, रुई की चिता पर जले।

तुरन्त एक आदमी ने जेब से दियासलाई निकाली औऱ आग लगाना ही चाहता था कि सहसा वही जख्मी युवक पीछे से आकर सामने खड़ा हो गया। उसके पाँव

में पट्टी बँधी हुई थी, फिर भी रक्त बह रहा था। उसका मुख पीला पड़ गया था और उसके तनाव से मालूम होता था कि युवक को असह्य वेदना हो रही हैं। उसे देखते ही लोगों ने चारों तरफ से आकर घेर लिया। उस हिंसा का उन्माद में भी अपने नेता को जीता-जागता देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही। जयघोष से आकाश गूँज उठा- 'गोपीनाथ की जय।'

जख्मी गोपीनाथ ने हाथ उठाकर समूह को शान्त हो जाने का संकेत करके कहा- भाईयों मैं तुमसे एक शब्द कहने आना हूँ। कह नही सकता, बचूँगा या नही। सम्भव हैं, तुमसे यह मेरा अन्तिम निवेदन हो। तुम क्या करने जा रहे हो? दरिद्र में नारायण का निवास हैं, क्या इसे मिथ्या करना चाहते हो? धनी को अपने धन का मद हो सकता हैं। तुम्हें किस बात का अभिमान हैं? मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, सब लोग यहाँ से हट जाओ। अगर तुम्हें मुझसे कुछ स्नेह हैं, अगर मैने तुम्हारी कुछ सेवा की हैं, तो अपने घर जाओ और सेठजी को घर जाने दो।

चारों तरफ से आपत्तिजनक आवाजें आने लगी; लेकिन गोपीनाथ का विरोध करने का साहस किसी में न हुआ। धीरे-धीरें लोग यहाँ से हट गये। मैदान साफ हो गया, तो गोपीनाथ ने विनम्र भाव से सेठजी से कहा- सरकार , अब आप चले जायँ। मैं जानता हूँ, आपने मुझे धोखे से मारा। मैं केवल यहीं कहने आपके पास आ रहा था, जो अब कह रहा हूँ। मेरा दुर्भाग्य था कि आपको भ्रम हुआ। ईश्वर की यहीं इच्छा थी।

सेठजी को गोपीनाथ पर कुछ श्रद्धा होने लगी हैं। नीचे उतरने में कुछ शंका अवश्य हैं; पर ऊपर भी तो प्राण बचने की कोई आशा नहीं हैं। वह इधर-उधर सशंक नेत्रों से ताकते हुए उतरते हैं। जन-समूह कुछ दस गज के अन्तर पर खड़ा हुआ हैं। प्रत्येक मनुष्य की आँखों में विद्रोह और हिंसा भरी हुई हैं। कुछ लोग दबी जबान से - पर सेठजी को सुनाकर- अशिष्ट आलोचनाएँ कर रहे हैं, पर किसी में इतना साहस नहीं हैं कि उनके सामने आ सके। उस मरते हुए युवक के आदेश में इतनी शक्ति हैं।

सेठजी मोटर पर बैठकर चले ही थे कि गोपी जमीन पर गिर पड़ा।

3

सेठजी की मोटर तेजी से जा रही थी, उतनी ही तेजी से उनकी आँखों के सामने आहत गोपी का छायाचित्र भी दौड़ रहा था। भाँति-भाँति की कल्पनाएँ मन में आने लगी।? अपराधी भावनाएँ चित्त को आन्दोलित करने लगीं। अगर गोपी उनका शत्रु था, तो उसने क्यों उनकी जान बचायी- ऐसी दशा में, जब वह स्वयं मृत्यु के पंजे में था? इसका उनके पास कोई जवाब न था। निरपराध गोपी, जैसे हाथ बाँधे उनके सामने खड़ा कह रहा था- आपने मुझे बेगुनाह क्यों मारा?

भोग-लिप्ता आदमी को स्वार्थान्ध बना देती हैं। फिर भी सेठजी की आत्मा अभी इतनी अभ्यस्त और कठोर न हुई थी कि एक निरपराध की हत्या करके उन्हें ग्लानि न होती। वह सौ-सौ युक्तियों से मन को समझाते थे; लेकिन न्याय बुद्धि किसी युक्ति को स्वीकार न करती थी। जैसे यह धारणा उनके न्याय-द्वार पर बैठी सत्याग्रह कर रही थी और वरदान लेकर ही टलेगी। वह घर पहुँचे तो इतने दुःखी और हताश थे, मानो हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हो।

प्रमीला ने घबरायी हुई आवाज में पूछा- हड़ताल का क्या हुआ? अभी हो रही हैं या बन्द हो गयी? मजूरों ने दंगा-फसाद तो नहीं किया? मैं तो बहुच डर रही थी।

खूबचन्द ने आराम-कुर्सी पर लेटकर एक लम्बीं साँस ली और बोले- कुछ न पूछो, किसी तरह जान बच गयी, बस यही समझ लो। पुलिस के आदमी तो भाग खड़े हुए, मुझे लोगों ने घेर लिया। बारे किसी तरह जान लेकर भागा। जब मैं चारों तरफ से घिर गया, तो क्या करता, मैने भी रिवालवर छोड़ दिया।

प्रमीला भयभीत होकर बोली- कोई जख्मी तो नहीं हुआ?

'वही गोपीनाथ जख्मी हुआ; जो मजूरों की तरफ से मेरे पास आया करता था।

उसका गिरना था कि एक हजार आदमियों ने मुझे घेर लिया। मैं दौड़कर रुई की गाँठो पर चढ़ गया। जान बचने की कोई आशा न थी। मजूर गाँठो में आग लगाने जा रहे थे।'

प्रमीला काँप उठी।

'सहसा वहीं जख्मी आदमी उठकर मजूरों के सामने आया और उन्हें समझा कर मेरी प्राण-रक्षा की। वह न आता, तो मैं किसी तरह जीता न बचता।'

'ईश्वर ने बड़ी कुशल की! इसीलिए मैं मना कर रही थी कि अकेले न जाओ। उस आदमी को लो अस्पताल ले गये होगें?'

सेठजी ने शोक-भरे स्वर में कहा- मुझे भय हैं कि वह मर गया होगा। जब मैं मोटर पर बैठा, तो मैने देखा, वह गिर पड़ा और बहुत-से आदमी उसे घेरकर खड़े हो गये। न जाने उसकी क्या दशा हुई।

प्रमीला उन देवियों में थी जिनकी नसों में रक्त की जगह श्रद्धा बहती हैं। स्नान-पूजा, तप और व्रत यही उनके जीवन का आधार थे। सुख में, दुःख में, आराम में, उपासना ही उसकी कवच थी। इस समय भी उस पर संकट आ पड़ा । ईश्वर के सिवा और कौन उसका उद्धार करेगा! वही खड़ी द्वार की ओर ताक रही थी और उसका धर्म-निष्ठ मन ईश्वर के चरणों में गिरकर क्षमा की भिक्षा माँग रहा था।

सेठजी बोले- यह मजूर उस जन्म का कोई महान पुरुष था। नहीं तो जिस आदमी ने उसे मारा, उसी की प्राण-रक्षा के लिए क्यों इतनी तपस्या करता!

प्रमीला श्रद्धा-भाव से बोली- भगवान् की प्रेरणा और क्या! भगवान् की दया होती हैं, तभी हमारे मन में सदविचार आते हैं।

सेठजी ने जिज्ञासा की- तो बुरे विचार भी ईश्वर की प्रेरणा ही से आते होंगे?

प्रमीला तत्परता के साथ बोली- ईश्वर आनन्द-स्वरूप हैं। दीपक से कभी अन्धकार नहीं निकल सकता।

सेठजी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाहर शोर सुनकर चौक पड़े। दोनों ने सड़क की तरफ की खिड़की खोल कर देखा, तो हजारों आदमी काली झंडियाँ लिए दाहिनी तरफ से आते दिखाई दिये। झंडों के बाद एक अर्थी थी, सिर-ही-सिर दिखाई देते थे। यह गोपीनाथ के जनाजे का जुलूस था। सेठजी तो मोटर पर बैठकर मिल से घर की ओर चले, उधर, मजूरों ने दूसरी मिलों में इस हत्याकांड की सूचना भेज दी। दम-के-दम सारे शहर में यह खबर बिजली की तरह दौड़ गयी और कई मिलों मे हड़ताल हो गयी। नगर में सनसनी फैल गयी। किसी भीषण उपद्रव के भय से लोगों ने दूकाने बन्द कर दी। यह जुलूस नगर के मुख्य स्थानों का चक्कर लगाता हुआ सेठ खूबचन्द के द्वार पर आया हैं और गोपीनाथ के खून का बदला लेने पर तुला हुआ हैं। उधर पुलिस-अधिकारियों ने सेठजी की रक्षा करने का निश्चय कर लिया हैं, चाहे खून की नदी ही क्यों न बह जाय। जुलूस के पीछे सशस्त्र पुलिस के दो सौ जवान डबल मार्च से उपद्रवकारियों का दमन करने चले आ रहे हैं।

सेठजी अभी अपने कर्त्तव्य का निश्चय न कर पाये थे कि विद्रोहियों ने कोठी के दफ्तर में घुसकर लेन-देन के बहीखातों को जलाना और तिजोरियों को तोड़ना शुरू कर दिया। मुनीम और अन्य कर्मचारी तथा चौकीदार सब-के-सब अपनी-अपनी जान लेकर भागे। उसी वक्त बायीं ओर से पुलिस की दौड़ आ धमकी और पुलिस-कमिश्नर ने विद्रोहियों को पाँच मिनट के अन्दर यहाँ से भाग जाने का हुक्म दे दिया।

समूह ने एक स्वर से पुकारा- गोपीनाथ की जय!

एक घंटा पहले अगर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई होती, तो सेठजी ने बड़ी निश्चिन्तता से उपद्रवकारियों को पुलिस की गोलियों का निशाना बनने दिया होता, लेकिन गोपीनाथ के उस देवोपम सौजन्य और आत्म-समर्पण ने जैसे उनके

मनःस्थित विकारों का शमन कर दिया था और अब साधारण औषधि भी उनपर रामबाण का-सा चमत्कार कर दिखाती थी।

उन्होंने प्रमीला से कहा- मैं जाकर सबके सामने अपना अपराध स्वीकार किये लेता हूँ। नहीं तो मेने पीछे न-जाने कितने घर मिट जायँगे।

प्रमीला ने काँपते हुए स्वर में कहा- यहीं खिड़की से आदमियों को क्यों नहीं समझा देते? वे जितना मजूरी बढाने को कहते हैं; बढ़ा दो।

'इस समय तो उन्हें मेरे रक्त की प्यास हैं, मजूरी बढ़ाने का उन पर कोई असर न होगा।'

सजल नेत्रों से देखकर प्रमीला बोली- तब तो तुम्हारे ऊपर हत्या का अभियोग चल जायगा।

सेठजी ने धीरता से कहा - भगवान की यही इच्छा हैं, तो हम क्या कर सकते हैं? एक आदमी का जीवन इतना मूल्यवान नहीं है कि उसके लिए असंख्य जानें ली जायँ।

प्रमीला को मालूम हुआ, साक्षात भगवान सामने खड़े हैं। वह पति के गले से लिपट कर बोली- मुझे क्या कह जाते हो?

सेठदी ने उसे गले लगाते हुए कहा- भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे। उनके मुख से और कोई शब्द न निकला। प्रमीला की हिचकियाँ बँधी हुई थी। उसे रोता छोड़कर सेठजी नीचे उतरे।

वह सारी सम्पत्ति जिसके लिए उन्होंने जो कुछ करना चाहिए, वह भी किया, जो कुछ न करना चाहिए, वह भी किया, जिसके लिए खुशामद की, छल किया, अन्याय किये, जिसे वह अपने जीवन-तप का वरदान समझते थे, आज कदाचित् सदा के लिए उनके हाथ से निकली जाती थी; पर उन्हें जरा भी मोह न था, जरा

भी खेद न था। वह जानते थे, उन्हें डामुल की सजा होगी; वह सारा कारोबर चौपट हो जायगा, यह सम्पत्ति धूल में मिल जायगी, कौन जाने प्रमीला से फिर भेंट होगी या नहीं, कौन मरेगा, कौन जियेगा, कौन जानता हैं, मानो वह स्वेच्छा से यमदूतों का आवाहन कर रहे हो। और वह वेदनामय विवशता, जो हमे मृत्यु के समय दबा लेती हैं, उन्हें दबाये हुए थी।

प्रमीला उनके साथ-ही-साथ नीचे तक आयी। वह उनके साथ उस समय तक रहना चाहती थी, जब तक जनता उसे पृथक न कर दे; लेकिन सेठजी उसे छोड़कर जल्दी से बाहर निकल गये और वह खड़ी रोती रह गयी।

4

बलि पाते ही विद्रोह का पिशाच शान्त हो गया। सेठजी एक सप्ताह हवालात में रहें। फिर उनपर अभियोग चलने लगा। बम्बई के सबसे नामी बैरिस्टर गोपी की तरफ से पैरवी कर रहे थे। मजूरों ने चन्दे से अपार घन एकत्र किया था और यहाँ तक तुले हुए थे कि अगर अदालत से सेठजी बरी भी हो जायँ, तो उनकी हत्या कर दी जाय। नित्य इजलास में कई हजार कुली जमा रहते। अभियोग सिद्ध ही था। मुलजिम ने अपना अपराध स्वीकार कर किया था। उनके वकीलों ने उनके अपराध को हलका करने की दलीलें पेश की। फैसला यह हुआ कि चौदह साल का कालापानी हो गया।

सेठजी के जाते ही मानो लक्ष्मी रूठ गयीं; जैसे उस विशालकाय वैभव की आत्मा निकल गयी हो। साल-भर के अन्दर उस वैभव का कंकालमात्र रह गया। मिल तो पहले ही बन्द हो चुकी थी। लेना-देना चुकाने पर कुछ न बचा। यहाँ तक कि रहने का घर भी हाथ से निकल गया। प्रमीला के पास लाखों के आभूषण थे। वह चाहती, तो उन्हें सुरक्षित रख सकती थी; पर त्याग की धुन में उन्हें भी निकाल फेंका। सातवें महीने में जब उनके पुत्र का जन्म हुआ, तो वह छोटे-से किराये के घर में थी। पुत्र-रत्न पाकर अपनी सारी विपत्ति भूल गयी। कुछ दुःख था तो यहीं कि पतिदेव होते, तो इस समय कितने आनन्दित होते।

प्रमीला ने किन कष्टों से झेलते हुए पुत्र का पालन किया; इसकी कथा लम्बी हैं। सब कुछ सहा, पर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। कई सज्जन तो उसे कुछ मासिक सहायता देने पर तैयार थे; लेकिन प्रमीला ने किसी का एहसान न लिया। भले घरों की महिलाओं से उसका परिचय था ही। वह घरों में स्वदेशी वस्तुओ का प्रचार करके गुजर-भर को कमा लेती थी। जब तक बच्चा दूध पीता था, उसे अपने काम में बड़ी कठिनाई पड़ी; लेकिन दूध छुड़ा देने के बाद वह बच्चे को दाई को सौपकर आप काम करनें चली जाती थी। दिन-भर के कठिन परिश्रम के बाद जब वह सन्ध्या समय घर आकर बालक को गोद में उठा लेती, तो उसका मन हर्ष से उन्मत्त होकर पति के पास उड़ जाता जो न-जाने किस दशा में काले कोसो पर पड़ा था। उसे अपनी सम्पत्ति के लुट जाने का लेशमात्र भी दुःख नहीं हैं। उसे केवल इतनी ही लालसा हैं कि स्वामी कुशल से लौट लावें और बालक को देखकर अपनी आँखे शीतल करें। फिर तो वह इस दरिद्रता में भी सुखी और सन्तुष्ट रहेगी। वह नित्य ईश्वर के चरणों में सिर झुकाकर स्वामी के लिए प्रार्थना करती हैं। उसे विश्वास है, ईश्वर जो कुछ करेगे; उससे उनका कल्याण ही होगा। ईश्वर-वन्दना में वह अलौकिक धैर्य, साहस और जीवन का आभास पाती हैं। प्रार्थना ही अब उसकी आशाओं का आधार हैं।

5

पन्द्रह साल की विपत्ति के दिन आशा की छाँह में कट गये।

सन्ध्या का समय हैं। किशोर कृष्णचन्द्र अपनी माता के पास मन-मारे बैठा हुआ हैं। वह माँ-बाप दोनों मे से एक पर भी नही पड़ा।

प्रमीला ने पूछा- क्यों बेटा, तुम्हारी परीक्षा तो समाप्त हो गयी?

बालक ने गिरे हुए मन से जवाब दिया- हाँ, अम्माँ, हो गयी; लेकिन मेरे परचे अच्छे नहीं हुए। मेरा मन पढ़ने में नहीं लगता हैं।

यह कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आयी। प्रमीला ने स्नेह-भरे स्वर में कहा- यह तो अच्छी बात नहीं हैं बेटा, तुम्हें पढ़ने में मन लगाना चाहिए।

बालक ने सजल नेत्रों से माता को देखता हुआ बोला- मुझे बार-बार पिताजी की याद आती हैं। वह तो अब बहुत बूढ़े हो गये होंगे। मैं सोचता हूँ कि वह आयेंगे, तो तन-मन से उनकी सेवा करूँगा। इतना बड़ा उत्सर्ग किसने किया होगा अम्माँ? उस पर लोग उन्हें निर्दयी कहती हैं। मैने गोपीनाथ के बाल-बच्चों का पता लगा लिया अम्माँ। उसकी घरवाली हैं, माता हैं और एक लड़की हैं, जो मुझसे दो साल बड़ी हैं। माँ-बेटी दोनो उसी मिल में काम करती हैं। दादी बहुत बूढ़ी हो गयी हैं।

प्रमीला ने विस्मित होकर कहा- तुझे उनका पता कैसे चला बेटा?

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित होकर बोला- मैं आज उस मिल में चला गया था। मैं उस स्थान को देखना चाहता था, जहाँ मजूरों ने पिताजी को घेरा था और वह स्थान भी, जहाँ गोपीनाथ गोली खाकर गिरा था; पर उन दोनों में एक भी स्थान भी न रहा। वहाँ इमारतें बन गयी हैं। मिल का काम बड़े जोर से चल रहा हैं। मुझे देखते ही बहुत से आदमियों ने मुझे घेर लिया। सब यही कहते खे कि तुम तो भैया गोपीनाथ का रूप धर कर आये हो। मजूरों ने वहाँ गोपीनाथ की एक तस्वीर लटका रखी हैं। उसे देखकर चकित हो गया अम्माँ, जैसे मेरी ही तस्वीर हो, केवल मूँछों का अन्तर हैं। जब मैने गोपी की स्त्री के बारे में पूछा, तो एक आदमी दौड़कर उसकी स्त्री को बुला लाया। वह मुझे देखते ही रोने लगी। और न-जाने क्यों मुझे भी रोना आ गया। बेचारी स्त्रियाँ बड़े कष्ट में हैं। मुझे तो उनके ऊपर ऐसी दया आती हैं कि उनकी कुछ मदद करूँ।

प्रमीला को शंका हुई, लड़का इन झगड़ों में पढ़कर पढ़ना न छोड़ बैठे। बोली- अभी तुम उनकी क्या मदद कर सकते हो बेटा? धन होता तो कहती, दस-पाँच रुपये महीना दे दिया करो, लेकिन घर का हाल तो तुम जानते ही हो। अभी मन लगाकर पढ़ो। जब तुम्हारे पिताजी आ जायँ, तो जो इच्छा हो वह करना।

कृष्णचन्द्र ने उस समय कोई जवाब न दिया; लेकिन आज से उसका नियम हो गया कि स्कूल से लौटकर एक बार गोपी के परिवार को देखने अवश्य जाता। प्रमीला उसे जेब-खर्च के लिए जो पैसे देती, उसे उन अनाथों ही पर खर्च करता। कभी कुछ फल ले लिए, कभी शाक-भाजी ले ली।

एक दिन कृष्णचन्द्र को घर आने में देर हुई, तो प्रमीला बहुत घबरायी। पता लगाती हुई विधवा के घर पर पहुँची, तो देखा- एक तंग गली में, एक सीले, सडे हुए मकान में गोपी की स्त्री एक खाट पर पड़ी हैं और कृष्णचन्द्र खड़ा उसे पंखा झल रहा हैं। माता को देखते ही बोला- मैं अभी घर न जाऊँगा अम्माँ, देखो, काकी कितनी बीमार हैं। दादी को कुछ सूझता नहीं, बिन्नी खाना पका रही हैं। इनके पास कौन बैठे?

प्रमीला ने खिन्न होकर कहा- अब तो अँधेरा हो गया, तुम यहाँ कब तक बैठे रहोगे? अकेला घर मुझे भी तो अच्छा नहीं लगता। इस वक्त चलो, सबेरे फिर आ जाना।

रोगिणी ने प्रमीला की आवाज सुनकर आँखे खोल दी और मन्द स्वर में बोली- आओ माताजी, बैठो। मैं तो भैया से कह रही थी, देर हो रही हैं, अब घर जाओ; पर यह गये ही नहीं। मुझ अभागिनी पर इन्हें न जाने क्यों इतनी दया आती हैं। अपना लड़का भी इससे अधिक मेरी सेवा न कर सकता।

चारों तरफ से दुर्गन्ध आ रही थी। उमस ऐसी थी कि दम घुटा जाता था। उस बिल में हवा किधर से आता? पर कृष्णचन्द्र ऐसा प्रसन्न था, मानो कोई परदेशी चारों ओर से ठोकरें खाकर अपने घर में आ गया हो।

प्रमीला ने इधर-उधर निगाह दौड़ायी तो एक दीवार पर उसे एक तस्वीर दिखायी दी। उसने समीप जाकर उसे देखा तो उसकी छाती धक् से हो गयी। बेटे की ओर देखकर बोली- तूने यह चित्र कब खिंचवाया बेटा?

कृष्णचन्द्र मुस्कराकर बोला- यह मेरा चित्र नहीं हैं अम्माँ, गोपीनाथ का चित्र हैं।

प्रमीला ने अविश्वास से कहा- चल, झूठा कहीं का।

रोगिणी के कातर भाव से कहा- नहीं अम्माँ, वह मेरे आदमी ही चित्र हैं। भगवान् की लीला कोई नहीं जानता; पर भैया की सूरत इतनी मिलती हैं कि मुझे अचरज होता हैं। जब मेरा ब्याह हुआ था, तब उनकी यही उम्र थी, और सूरत भी बिल्कुल यही। यही हँसी थी, यही बातचीत और यही स्वभाव। क्या रहस्य हैं, मेरी समझ में नहीं आता? माताजी, जबसे यह आने लगे हैं, कह नहीं सकती, मेरा जीवन कितना सुखी हो गया। इस मुहल्ले में सब हमारे ही जैसे मजूर रहते हैं। उन सभो के साथ यह लड़कों की तरह रहते हैं। सब इन्हें देखकर निहाल हो जाते हैं।

प्रमीला ने कोई जवाब न दिया। उनके मन पर एक अव्यक्त शंका छायी थी, मानो उसने कोई बुरा सपना देखा हो। उसके मन में बार-बार एक प्रश्न उठ रहा था, जिसकी कल्पना ही से उसके रोयें खड़े हो जाते थे।

सहसा उसने कृष्णचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बलपूर्वक खींचती हुई द्वार की ओर चली, मानो कोई उसे उसके हाथों से छीने लिये जाता हो।

रोगिणी ने केवल इतना कहा- माताजी, कभी-कभी भैया को मेरे पास आने दिया करना, नहीं तो मै मर जाऊँगी।

6

पन्द्रह साल के बाद भूतपूर्व सेठ खूबचन्द अपने नगर के स्टेशन पर पहुँचे। हरा-भरा वृक्ष ठूँठ होकर रह गया था। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थी, सिर के बाल सन, दाढी जंगल की तरह बढ़ी हुई, दाँतो का कहीं नाम नहीं, कमर झुकी हुई। ठूँठ को देखकर कौन पहचान सकता हैं कि यह वही वृक्ष हैं, जो फल-फूल और पत्तियों से लदा रहता था, जिस पर पक्षी कवरल करते रहते थे।

स्टेशन के बाहर निकलकर वह सोचने लगे- कहाँ जायँ? अपना नाम लेके लज्जा आती थी। किससे पूछे, प्रमीला जीती हैं या मर गयी? अगर हैं तो कहाँ हैं? उन्हें देख वह प्रसन्न होगी, या उनकी उपेक्षा करेंगी?

प्रमीला का पता लगाने में ज्यादा देर न लगी। खूबचन्द की कोठी अभी तक खूबचन्द की कोठी कहलाती थी। दुनिया कानून के उलटफेर क्या जाने? अपना कोठी के सामने पहुँचकर उन्होंने एक तम्बोली से पूछा- क्यों भैया, यहीं तो सेठ खूबचन्द की कोठी हैं।

तम्बोली ने उनकी ओर कुतूहल से देखकर कहा- खूबचन्द की जब थी, तब थी, अब तो लाला देशराज की हैं।

'अच्छा! मुझे यहाँ आये बहुत दिन हो गये। सेठजी के यहाँ नौकर था, सुना, सेठजी को कालापानी को गया था।'

'हाँ, बेचारे भलमानसी में मारे गये। चाहते तो बेदाग बच जाते । सारा घर मिट्टी में मिल गया।'

'सेठानी तो होंगी?'

'हाँ, सेठानी क्यों नहीं हैं। उनका लड़का भी हैं।'

सेठजी के चेहरे पर जैसे जवानी की झलक आ गयी। जीवन का वह आनन्द और उत्साह, जो आज पन्द्रह साल से कुम्भकरण की भाँति पड़ा सो रहा था, मानो नयी स्फूर्ति पाकर उठ बैठा और अब उस दुर्बल काया में समा नहीं रहा हैं।

उन्होंने इस तरह तम्बोली का हाथ पकड़ लिया, जैसे घनिष्ठ परिचय हो और बोले- अच्छा, उनके लड़का भी हैं! कहाँ रहती हैं भाई, बता दो, तो जाकर सलाम कर आऊँ। बहुत दिनों तक उनका नमक खाया हैं।

तम्बोली ने प्रमीला के घर का पता बता दिया। प्रमीला इसी मुहल्ले में रहती थी। सेठजी जैसे आकाश में उड़ते हुए यहाँ से आगे चले।

वह थोडी़ दूर गये थे कि ठाकुरजी का एक मन्दिर दिखायी दिया। सेठजीन ने मन्दिर में जाकर प्रतिमा के चरणों पर सिर झुका दिया। उनके रोम-रोम से आस्था का स्रोच बह रहा था। इस पन्द्रह वर्ष के कठिन प्रायश्चित ने उनकी सन्तप्त आत्मा को अगर कहीं आश्रय मिला था, तो वह अशरण-शरण भगवान के चरण थे। उन पावन चरणों के ध्यान में ही उन्हें शान्ति मिलती थी। दिन भर ऊख के कोल्हू में जूते रहने या फावड़े चलाने के बाद जब वह रात को पृथ्वी की गोद में लेटते, तो पूर्व स्मृतियाँ अपना अभिनय करने लगती। वह विलासमय जीवन, जैसे रुदन करता हुआ उनकी आँखों के सामने आ जाता और उनके अन्तःकरण से वेदना में डूबी हुई ध्वनि निकलती- ईश्वर! मुझ पर दया करो। इस दया याचना में उन्हें एक ऐसी अलौकिक शान्ति और स्थिरता प्राप्त होती थी, मानो बालक माता की गोद में लेटा हो।

जब उनके पास सम्पति थी, विलास के साधन थे, यौवन था, स्वास्थ्य था, अधिकार था, उन्हें आत्म-चिन्तन का अवकाश न मिलता था। मन प्रवृत्ति ही की ओर दौड़ता था, अब इन स्मृतियों को खोकर दीनावस्था में उनका मन ईश्वर की ओर झुका। पानी पर जब तक कोई आवरण हैं, उसमें सूर्य का प्रकाश कहाँ?

वह मन्दिर से निकलते ही थे कि एक स्त्री ने उसमें प्रवेश किया। खूबचन्द का हृदय उछल पड़ा। वह कुछ कर्त्तव्य-भ्रम से होकर एक स्तम्भ की आड़ में हो गये। यह प्रमीला था।

इन पन्द्रह वर्षों में एक दिन भी ऐसा नहीं गया, जब उन्हें प्रमीला का याद न आयी हो। वह छाया उनकी आँखों में बसी हुई थी। आज उन्हें उस छाया और इस सत्य में कितना अन्तर दिखायी दिया। छाया पर समय का क्या असर हो सकता हैं। उस पर सुख-दुःख का बस नहीं चलता। सत्य तो इतना अभेद्य नहीं। उस छाया में वह सदैव प्रमोद का रूप देखा करते थे- आभूषण, मुसकान और

लज्जा से रंजित। इस सत्य में उन्होंने साधक का तेजस्वी रूप देखा और अनुराग में डूबे हुए स्वर की भाँति उनका हृदय थरथरा उठा। मन में ऐसा उद्गार उठा कि इसके चरणों पर गिर पड़ूँ और कहूँ- देवी! इस पतित का उद्धार करो, किन्तु तुरन्त विचार आया- कही यह देवी मेरी उपेक्षा न करे। इस दशा में उसके सामने जाते उसे लज्जा आयी।

कुछ दूर चलने के बाद प्रमीला एक गली में मुड़ी। सेठजी भी उसके पीछे-पीछे चले जाते थे। आगे एक कई मंजिल की हवेली थी। सेठजी ने प्रमीला को उस चाल में घुसते देखा; पर यह न देख सके कि वह किधर गयी। द्वार पर खड़े-खड़े सोचने लगे - किससे पूछूँ?

सहसा एक किशोर की भीतर से निकलते देखकर उन्होंने उसे पुकारा। युवक ने उनकी ओर चुभती हुई आँखों से देखा और तुरन्त उनके चरणों पर गिर पड़ा। सेठजी का कलेजा धक-से हो गया। यह तो गोपी था, केवल उम्र में उससे कम। वही रूप था, वही डील था, मानो वह कोई जन्म लेकर आ गया हो। उनका सारा शरीर एक विचित्र भय से सिहर उठा।

कृष्णचन्द्र ने एक क्षण में उठकर कहा- हम तो आज आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बन्दर पर जाने के लिए एक गाड़ी लेने जा रहा था। आपको तो यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ होगा। आइए अन्दर आइए। मैं आपको देखते ही पहचान गया। कहीं भी देखकर पहचान जाता।

खूबचन्द उसके साथ भीतर चले तो, मगर उनका मन जैसे अतीत के काँटो में उलझ रहा था। गोपी की सूरत क्या वह कभी भूल सकते थे? इस चहेरे को उन्होंने कितनी ही बार स्वप्न में देखा था। वह कांड उनके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी और आज एक युग बीत जाने पर भी उनके पथ में उसी भाँति अटल खड़ा था।

एकाएक कृष्णचन्द्र जीने के पास रुककर बोला- जाकर अम्माँ से कह आऊँ, दादा

आ गये! आपके लिए नये-नये कपड़े बने रखे हैं।

खूबचन्द ने पुत्र के मुख का इस तरह चुम्बन किया, जैसे वह शिशु हो और उसे गोद में उठा लिया। वह उसे लिये जीने पर चढ़े चले जाते थे। यह मनोल्लस की शक्ति थी।

7

तीस साल से व्याकुल पुत्र-लालसा, यह पदार्थ पाकर, जैसे उस पर न्योछावर हो जाना चाहती हैं। जीवन नयी-नयी अभिलाषाओं को उन्हें सम्मोहित कर रहा हैं। इस रत्न के लिए वह ऐसी-ऐसी कितने ही यातनाएँ सहर्ष झेल सकते थे। अपने जीवन में उन्होंने जो कुछ अनुभव के रूप में कमाया था, उसका तत्व वह अब कृष्णचन्द्र के मस्तिष्क में भर देना चाहते हैं। उन्हें यह अरमान नहीं हैं कि कृष्णचन्द्र धन का स्वामी हो, चतुर हो, यशस्वी हो; बल्कि दयावान् हो, सेवाशील हो, नम्र हो, श्रद्धालु हो। ईश्वर की दया में अब उन्हें असीम विश्वास हैं, नहीं तो उन-जैसा अधम क्यक्ति क्या इस योग्य था कि इस कृपा का पात्र बनता? और प्रमीला तो साक्षात् लक्ष्मी है।

कृष्णचन्द्र भी पिता को पाकर निहाल हो गया हैं। अपनी सेवाओं से मानो उनके अतीत को भुला देना चाहता हैं। मानो पिता की सेवा ही के लिए उसका जन्म हुआ। मानो वह पूर्वजन्म का कोई ऋण चुकाने के लिए संसार में आया हैं।

आज सेठजी को आये सातवाँ दिन हैं। सन्ध्या का समय हैं। सेठजी सन्ध्या करने जा रहे हैं कि गोपीनाथ की लड़की बिन्नी ने आकर प्रमीला से कहा- माताजी, अम्माँ का जी अच्छा नहीं हैं! भैया को बुला रही हैं।

प्रमीला ने कहा- आज तो वह न सकेगा। उसके पिता आ गये हैं, उनसे बातें कह रहा हैं।

कृष्णचन्द्र ने दूसरे कमरे में से उनकी बाते सुन लीं। तुरन्त आकर बोला- नहीं अम्माँ, मैं दादा से पूछकर जरा देर के लिए चला जाऊँगा।

प्रमीला ने बिगड़कर कहा- तू कहीं जाता हैं तो तुझे घर की सुधि ही नहीं रहती। न जाने उन सभों ने तुझे क्या बूटी सुँघा दी हैं।

'मैं बहुत जल्द चला आऊँगा। अम्माँ, तुम्हारे पैरो पड़ता हूँ।'

'तू कैसा लड़का हैं! बेचारे अकेले बैठे हुए हैं और तुझे वहाँ जाने की पड़ी हुई हैं।'

सेठजी ने भी ये बाते सुनी। आकर बोले- क्या हरज हैं, जल्दी आने को कह रहे हैं तो जाने दो।

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित बिन्नी के साथ चला गया। एक क्षण के बाद प्रमीला ने कहा- जबसे मैं गोपी की तस्वीर देखी हैं, मुझे नित्य शंका बनी रहती हैं, कि न-जाने भगवान् क्या करने वाले हैं। बस यहीं मालूम होता हैं।

सेठजी ने गम्भीर स्वर में कहा- मैं तो पहली बार देखकर चकित रह गया था। जान पड़ा, गोपीनाथ ही खड़ा हैं।

'गोपी की घरवाली कहती हैं कि इसका स्वभाव भी गोपी ही का-सा हैं।'

सेठजी गूढ़ मुस्कान के साथ बोले- भगवान् की लीला है कि जिसकी मैने हत्या की, वह मेरा पुत्र हो। मुझे तो विश्वास हैं, गोपीनाथ ने ही इसमें अवतार लिया हैं।

प्रमीला ने माथे पर हाथ रखकर कहा- यही सोचकर तो कभी-कभी मुझे न-जाने कैसी-कैसी शंका होने लगती हैं।

सेठजी ने श्रद्धा-भरी आँखो से देखकर कहा- भगवान् हमारे परम सुहृद हैं। वह जो कुछ करते हैं, प्राणियों के कल्याण के लिए करते हैं। हम समझते हैं, हमारे साथ विधि ने अन्याय किया; पर यह हमारी मूर्खता हैं। विधि अबोध बालक नहीं हैं, जो

अपने ही सिरजे हुए खिलौने को तोड़-फोड़ कर आनन्दित होता हैं। न वह हमारा शत्रु हैं , जो हमारा अहित करने में सुख मानता हैं। वह परम दयालु हैं, मंगल रूप हैं। यहीं अवलम्ब हैं, जिसने निर्वासन-काल में मुझे सर्वनाश से बचाया। इस आधार के बिना कह नहीं सकता, मेरी नौका कहाँ-कहाँ भटकती और उसका क्या अन्त होता?

8

बिन्नी ने कई कदम चलने के बाद कहा- मैने तुमसे झूठ-मूठ कहा कि अम्माँ बीमार हैं। अम्माँ तो अब बिल्कुल अच्छी हैं। तुम कई दिनों से गये नहीं, इसीलिए उन्होने मुझसे कहा- इस बहाने से बुला लाना। तुमसे वह एक सलाह करेंगी।

कृष्णचन्द्र ने कुतूहल-भरी आँखों से देखा।

'तुमसे सलाह करेगी? मैं भला क्या सलाह दूँगा? मेरे दादा आ गये; इसीलिए नहीं आ सका।'

'तुम्हारे दादा आ गये! उन्होंने पूछा होगा, यह कौन लड़की हैं?'

'नहीं, कुछ नही पूछा।'

'दिल में कहते होगे, कैसी बेशरम लड़की हैं।'

'दादा ऐसे आदनी नहीं है। मालूम हो जाता कि यह कौन हैं, तो बड़े प्रेम से बाते करते। मैं तो कभी-कभी डरा करता था कि न जाने उनका मिजाज कैसा हो? सुनता था, कैदी बड़े कठोर हृदय हुआ करते हैं, लेकिन दादा तो दया के देवता हैं।'

दोनो कुछ देर फिर चुपचाप चले गया। तब कृष्णचन्द्र ने पूछा- तुम्हारी अम्माँ मुझसे कैसी सलाह करेंगी?

बिन्नी का ध्यान जैसे टूट गया।

'मैं क्या जानू, कैसी सलाह करेगी? मैं जानती कि तुम्हारे दादा आये हैं, तो न आती। मन में कहते होगे, इतनी बड़ी लड़की अकेली मारी-मारी फिरती हैं।'

कृष्णचन्द्र कहकहा मारकर बोला- हाँ, कहते तो होंगे। मैं जाकर और जड़ दूँगा।

बिन्नी बिगड़ गयी।

'तुम क्या जड़ दोंगे? बताओ, मैं कहाँ घूमती हूँ? तुम्हारे घर के सिवा मैं और कहाँ जाती हूँ?'

'मेरे जी में जो आयेगा, सो कहूँगा; नहीं तो मुझे बता दे, कैसी सलाह हैं?'

'तो मैने कब कहा था कि नहीं बताऊँगी। कल हमारे मिल में फिर हड़ताल होने वाली हैं। हमारा मनीजर इतना निर्दयी हैं कि किसी को पाँच मिनिट की भी दे हो जाय तो, आधे दिन की तलब काट काट लेता हैं और दस मिनिट देर हो जाय, तो दिन-भर की मजूरी गायब। कई बार सभी ने जाकर उससे कहा-सुना; मगर मानता ही नहीं। तुम हो तो जरा-से; पर अम्माँ का न-जाने तुम्हारे ऊपर क्यो इतना विश्वास हैं औऱ मजूर लोग भी तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा रखते हैं। सबकी सलाह हैं कि तुम एक बार मजीजर के पास जाकर दो टूक बाते कर लो। हाँ या नहीं; अगर वह अपनी बात पर अड़ा रहे, तो फिर हम हड़ताल करेंगे।'

कृष्णचन्द्र विचारों में मग्न था। कुछ न बोला।

बिन्नी ने फिर उद्दंड भाव से कहा- यह कड़ाई इसीलिए तो हैं कि मनीजर जानता हैं, हम बेबस हैं औऱ हमारे लिए और कहीं ठिकाना नहीं हैं। तो हमें भी दिखा देना हैं कि हम चाहे भूखों मर मरेंगे, मगर अन्याय न सहेंगे।

कृष्णचन्द्र ने कहा- उपद्रव हो गया, तो गोलियाँ चलेंगी।

'तो चलने दो। हमारे दादा मर गये, तो क्या हम लोग जिये नहीं।'

दोनों घर पहुँचे तो वहाँ द्वार पर बहुत से मजदूर जमा थे और इसी विषय पर बाते हो रही थी।

कृष्णचन्द्र को देखते ही सभों ने चिल्लाकर कहा- लो भैया आ गये।

9

वही मिल हैं, जहाँ सेठ खूबचन्द ने गोलियाँ चलायी थी। आज उन्हीं का पुत्र मजदूरों का नेता बना हुआ गोलियों का सामने खड़ा हैं।

कृष्णचन्द्र और मैनेजर में बाते हो चुकीं। मैनेजर ने नियमों को नर्म करना स्वीकार न किया। हड़ताल की घोषणा कर दी गयी। आज हड़ताल हैं। मजदूर मिल के हाते के जमा हैं और मैनेजर ने मिल की रक्षा के लिए फौजी गारद बुला लिया हैं। मिल के मजदूर उपद्रव नहीं करना चाहते थे। हड़ताल केवल उनके असंतोष का प्रदर्शन थी; लेकिन फौजी गारद देखकर मजदूरों को भी जोश आ गया। दोनो तरह से तैयारी हो गयी हैं। एक ओर गोलियाँ हैं, दूसरी ओर ईट-पत्थर के टुकड़े।

युवक कृष्णचन्द्र ने कहा- आप लोग तैयार हैं? हमे मिल के अन्दर जाना हैं, चाहे सब मार डाले जायँ।

बहुत-सी आवाजें आयी- सब तैयार हैं।

जिसके बाल-बच्चे हैं, वह अपने घर में चले जायँ।

बिन्नी पीछे खड़ी-खड़ी बोली- बाल-बच्चे. सबकी रक्षा भगवान् करता हैं।

कई मजूदर घर लौटने का विचार कर रहे हैं। इस वाक्य ने उन्हें स्थिर कर दिया। जय-जयकार हुई और एक हजार मजदूरों को दल मिल द्वार की ओर चला। फौजी गारद ने गोलियाँ चलायी। सबसे पहले कृष्णचन्द्र फिर और कई आदमी गिर पड़े। लोगो के पाँव उखड़ने लगे।

उसी वक़्त नंगे सिर, नंगे पाँव हाते में पहुँचे और कृष्णचन्द्र को गिरते देखा- परिस्थिति उन्हें घर ही पर मालूम हो गयी थी। उन्होंने उन्मत्त होकर कहा- कृष्णचन्द्र की जय! और दौड़कर आहत युवक को कंठ से लगा लिया। मजूदरों में एक अदभूत साहस और धैर्य का संचार हुआ।

'खबूचन्द।' - इस नाम ने जादू काम किया। इस 15 साल में 'खूबचन्द' ने शहीद का ऊँचा पद प्राप्त कर लिया था। उन्हीं का पुत्र आज मजदूरों का नेता हैं। धन्य हैं भगवान की लीला! सेठजी ने पुत्र की लाश को जमीन पर लिटा दिया और अविचलित भाव से बोले- भाईयों यह लड़का मेरा पुत्र था। मैं पन्द्रह साल डामुल काट कर लौटा, तो भगवान की कृपा से मुझे इसके दर्शन हुए। आज आठवाँ दिन हैं। आज फिर भगवान् ने उसे अपनी शरण में ले लिया। वह भी उन्हीं की कृपा थी। यह भी उन्हीं की कृपा हैं। मैं जो मूर्ख, अज्ञानी तब था, वही अब भी हूँ। हाँ, इस बात का मुझे गर्व हैं कि भगवान् ने मुझे ऐसा वीर बालक दिया। अब आप लोग मुझे बधाईयाँ दें। किसे ऐसी वीर-गति मिलती हैं। अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाय, वही सच्चा वीर हैं, इसीलिए बोलिए- कृष्णचन्द्र की जय!

एक हजार गलों से जय-ध्वनि निकली और उसी के साथ सब-के-सब हल्ला मारकर दफ्तर में घुस गये। गारद के जवानों ने एक बन्दूक भी न चलाई, इस विलक्षण कांड ने इन्हें स्तम्भित कर दिया था।

मैनेजर ने पिस्तौल उठा लिया और खड़ा हो गया। देखा, तो सामने सेठ खूबचन्द!

लज्जित होकर बोला- मुझे बड़ा दुःख हैं कि आज दैवगति से ऐसी दुर्घटना हो

गयी, पर आप खुद समझ सकते हैं, क्या कर सकता था।

सेठजी ने शान्त स्वर से कहा- ईश्वर जो कुछ करता हैं, हमारे कल्याण के लिए करता हैं। अगर इस बलिदान से मजदूरों का कुछ हित हो, तो मुझे जरा भी खेद न होगा।

मैनेजर सम्मान भरे स्वर में बोला- लेकिन इस धारणा से तो आदमी को सन्तोष नहीं होता। ज्ञानियों का मन चंचल हो ही जाता हैं।

सेठजी ने इस प्रसंग का अन्त कर देने के इरादे से कहा- तो अब आप क्या निश्चय कर रहे हैं।

मैनेजर सकुचाता हुआ बोला- मैं इस विषय में स्वतंत्र नहीं हूँ। स्वामियों की आज्ञा थी, उसका पालन कर रहा था।

सेठजी कठोर स्वर में बोले- अगर आप समझते हैं कि मजदूरों के साथ अन्याय हो रहा हैं, तो आपका धर्म हैं कि उनका पक्ष लीजिए। अन्याय में सहयोग करना अन्याय करने के समान हैं।

एक तरफ तो मजदूर कृष्णचन्द्र के दाह-संस्कार का आयोजन कर रहे थे, दूसरी तरफ में मिल के डाइरेक्टर और मैनेजर सेठ खूबचन्द के साथ बैठे कोई ऐसी व्यवस्था सोच रहे थे कि मजदूरों के प्रति अन्याय का अन्त हो जाय।

दस बजे सेठजी ने बाहर निकलकर मजदूरों को सूचना दी- मित्रों ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने तुम्हारी विनय स्वीकार कर ली। तुम्हारी हाजिरी के लिए अब नये नियम बनाये जायँगे और जुरमाने की वर्तमान प्रथा उठा ली जायगी।

मजदूरों ने सुना; पर उन्हें वह आनन्द न हुआ, जो एक घंटा पहले होता । कृष्णचन्द्र की बलि देकर बड़ी-से-बड़ी रिसायत भी उनके निगाहों में हेय थी।

अभी अर्थी न उठने पायी थी कि प्रमीला लाल आँखें किये उन्मत्त-सी दौड़ी आयी और देह से चिमट गयी, जिसे उसने अपने उदर से जन्म दिया और अपने रक्त से पाला था। चारों ओर हाहाकार मच गया। मजदूर और मालिक ऐसा कोई नहीं था, जिसकी आँखों से आँसुओं की धारा न निकल रही हो।

सेठजी ने समीप जाकर प्रमीला के कन्धे पर हाथ रखा और बोले- क्या करती हो प्रमीला, जिसकी मृत्यु पर हँसना और ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, उसकी मृत्यु पर रोती हो।

प्रमीला उसी शव को हृदय से लगाये पड़ी रही। जिस निधि को पाकर उसने विपत्ति को सम्पत्ति समझा था, पति-वियोग से अन्धकारमय जीवन में जिस दीपक से आशा, धैर्य और अवलम्ब पा रही थी, वह दीपक बुझ गया था। जिस विभूति को पाकर ईश्वर की निष्ठा और भक्ति उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गयी थी, वह विभूति उससे छीन ली गयी थी।

सहसा उसने पति को अस्थिर नेत्रों से देखकर कहा- तुम समझते होगे, ईश्वर जो कुछ करता हैं, हमारे कल्याण के लिए ही करता हैं। मैं ऐसा नहीं समझती। समझ ही नहीं सकती। कैसे समझूँ? हाय मेरे लाल! मेरे लाडले! मेरे राजा, मेरे सूर्य, मेरे चन्द्र, मेरे जीवन का आधार! मेरे सर्वस्व! तुझे खोकर कैसे चित्त को शान्त रखूँ? जिसे गोद में देखकर मैंने अपने भाग्य को धन्य माना था, उसे आज धरती पर पड़ा देखकर हृदय को कैसे सँभालूँ। नहीं मानता! हाय नहीं मानता!

यह कहते हुए उसने जोर से छाती पीट ली।

उसी रात को शोकातुर माता संसार से प्रस्थान कर गयी। पक्षी अपने बच्चे की खोज में पिंजरे से निकल गया।

तीन साल बीत गये।
श्रमजीवियों के मुहल्ले में आज कृष्णाअष्टमी का उत्सव हैं। उन्होंने आपस में चन्दा करके एक मन्दिर बनवाया हैं। मन्दिर आकार में तो बहुत सुन्दर और विशाल नहीं ; पर जितनी भक्ति से यहाँ सिर झुकते हैं, वह बात इससे कहीं विशाल मन्दिरों को प्राप्त नहीं। यहाँ लोग अपनी सम्पत्ति को प्रदर्शन करते नहीं, बल्कि अपनी श्रद्धा की भेट देने आते हैं।

मजदूर स्त्रियाँ गा रही हैं, बालक दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम कर रहे हैं और पुरुष झाँकी के बनाव-श्रृंगार में लगे हुए हैं।

उसी वक़्त सेठ खूबचन्द आये। स्त्रियाँ और बालक उन्हें देखते ही चारों ओर से दौड़कर जमा हो गये। वह मन्दिर उन्हीं के सतत उद्योग का फल है। मजदूर परिवारों की सेवा ही अब उनके जीवन का उद्देश्य है। उसका छोटा-सा परिवार अब विराट हो गया। उनके सुख को वह अपना सुख और उनके दुःख को अपना दुःख मानते हो। मजदूरों में शराब, जुए और दुराचरण की वह कसरत नहीं रही। सेठजी की सहायता , सत्संग और सदव्यवहार पशुओं को मनुष्य बना रहा हैं।

सेठजी ने बाल-रूप भगवान के सामने जाकर सिर झुकाया और उनका मन अलौकिक आनन्द से खिल उठा। उस झाँकी में उन्हें कृष्णचन्द्र की झलक दिखायी दी। एक ही क्षण में उसने जैसे गोपीनाथ का रूप धारण किया।

सेठजी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। भगवान की व्यापकता का, दया का रूप आज जीवन में पहली बार उन्हें दिखायी दिया। अब तक, भगवान की दया को वह सिद्धान्त रूप में मानते थे। आज उन्होंने उसका प्रत्यक्ष रूप देखा। एक पथ-भ्रष्ट पतनोन्मुखी आत्मा के उद्धार के लिए इतना दैवी विधान! इतनी अनवरत ईश्वरीय प्रेरणा! सेठजी के मानस-पट पर अपना सम्पूर्ण जीवन सिनेमा-चित्रों की भाँति दौड़ गया। उन्हें जान पड़ा, जैसे बीस वर्ष से ईश्वर की कृपा उन पर छाया किये हुए हैं। गोपीनाथ का बलिदान क्या था? विद्रोही मजदूरों ने जिस समय उसका मकान घेर लिया था, उस समय उनका आत्म-समर्पण ईश्वर की दया के

सिवा और क्या था, पन्द्रह साल के निर्वासित जीवन में, फिर कृष्णचन्द्र के रूप में, कौन उनकी आत्मा की रक्षा कर रहा था? सेठजी के अन्तःकरण से भक्ति की विह्वलता में डूबी हुई जय-ध्वनि निकली- कृष्ण भगवान की जय! और जैसे सम्पूर्ण ब्राह्मांड दया के प्रकाश से जगमगा उठा।

***

नेउर

आकाश में चांदी के पहाड़ भाग रहे थे, टकरा रहे थे गले मिल रहें थे, जैसे सूर्य मेघ संग्राम छिड़ा हुआ हो। कभी छाया हो जाती थी कभी तेज धूप चमक उठती थी। बरसात के दिन थे। उमस हो रही थी । हवा बदं हो गयी थी।

गावं के बाहर कई मजूर एक खेत की मेड़ बांध रहे, थे। नंगे बदन पसीने में तर कछनी कसे हुए, सब के सब फावड़े से मिटटी खोदकर मेड़ पर रखते जाते थे। पानी से मिट्टी नरम हो गयी थी।

गोबर ने अपनी कानी आंख मटकाकर कहां-अब तो हाथ नहीं चलता भाई गोल भी छूट गया होगा, चबेना कर ले।

नेउर ने हंसकर कहा-यह मेड़ तो पूरी कर लो फिर चबेना कर लेना मै तो तुमसे पहले आया।

दोनो ने सिर पर झौवा उठाते हुए कहा-तुमने अपनी जवानी में जितनी घी खाया होगा नेउर दादा उतना तो अब हमें पानी भी नहीं मिलता। नेउर छोटे डील का गठीला काला, फुर्तीला आदमी,था। उम्र पचास से ऊपर थी, मगर अच्छे अच्छे नौजवान उसके बराबर मेहनत न कर सकते थे अभी दो तीन साल पहले तक कुश्ती लड़ना छोड दिया था।

गोबर–तुमने तमखू पिये बिना कैसे रहा जाता है नेउर दादा? यहां तो चाहे रोटी ने मिले लेकिन तमाखू के बिना नहीं रहा जाता। दीना–तो यहां से आकर रोटी बनाओगे दादा? बुछिया कुछ नहीं करती? हमसे तो दादा ऐसी मेहरिय से एक दिन न पटे।

नेउर के पिचक खिचड़ी मूंछो से ढके मुख परहास्य की स्मित-रेखा चमक उठी

जिसने उसकी कुरुपता को भी सुन्दर बनार दिया। बोला-जवानी तो उसी के साथ कटी है बेटा, अब उससे कोई काम नही होता। तो क्या करुं।

गोबर–तुमने उसे सिर चढा रखा है, नहीं तो काम क्यो न करती? मजे से खाट पर बैठी चिलम पीती रहती है और सारे गांव से लड़ा करती है तूम बूढे हो गये, लेकिन वह तो अब भी जवान बनी है।

दीना–जवान औरत उसकी क्या बराबरी करेगी? सेंदुर, टिकुली, काजल, मेहदी में तो उसका मन बसाता है। बिना किनारदार रंगीन धोती के उसे कभी उदेखा ही नहीं उस पर गहानों से भी जी नहीं भरता। तुम गऊ हो इससे निबाह हो जाता है, नहीं तो अब तक गली गली ठोकरें खाती होती।

गोबर –मुझे तो उसके बनाव सिंगार पर गुस्सा आताहै । कात कुछन करेगी; पर खाने पहनने को अच्छा ही चाहिए।

नेउर-तुम क्या जानो बेटा जब वह आयी थी तो मेरे घर सात हल की खेती होती थी। रानी बनी बैठी रहती थी। जमाना बदल गया, तो क्या हुआ। उसका मन तो वही है। घड़ी भर चूल्हे के सामने बैठ जाती है तो क्या हुआ! उसका मन तो वही है। घड़ी भर चूल्हे के सामने बैठ जाती है तो आंखे लाल हो जाती है और मूड़ थामकर पड़ जाती है। मझसे तो यह नही देखा जाता। इसी दिन रात के लिए तो आदमी शादी ब्याह करता है और इसमे क्या रखा है। यहां से जाकर रोटी बनाउंगा पानी, लाऊगां, तब दो कौर खायेगी। नहीं तो मुझे क्या था तुम्हारी तरह चार फंकी मारकर एक लोटा पानी पी लेता। जब से बिटिया मर गयी। तब से तो वह और भी लस्त हो गयी। यह बड़ा भारी धक्का लगा। मां की ममता हम–तुम क्या समझेगें बेटा! पहले तो कभी कभी डांट भी देता था। अबकिस मुंह से डांटूं?

दीना-तुम कल पेड़ काहे को चढे थे, अभी गूलर कौन पकी है?

नेउर-उस बकरी के लिए थोड़ी पत्ती तोड़ रहा था। बिटिया को दूध पिलाने को

बकरी ली थी। अब बुढिया हो गयी है। लेकिन थोड़ा दूध दे देती है। उसी का दूध और रोटी बुढिया का आधार है।

घर पहुंचकर नेउर ने लोटा और डोर उठाया और नहाने चला कि स्त्री ने खाट पर लेटे–लेटे कहा- इतनी देर क्यों कर दिया करते हो? आदमी काम के पीछे परान थोड़े ही देता है? जब मजूरी सब के बराबर मिलती है तो क्यो काम काम के पीछे मरते हो?

नेउर का अन्त:करण एक माधुर्य से सराबोर हो गया। उसके आत्मसमर्पण से भरे हुए प्रेम में मैं की गन्ध भी तो नहीं थी। कितनी स्नेह! और किसे उसके आराम की, उसके मरने जीने की चिन्ता है? फिर यह क्यों न अपनी बुढिया के लिए मरे? बोला–तू उन जनम में कोई देवी रही होगी बुढिया,सच।

''अच्छा रहने दो यह चापलूसी । हमारे आगे अब कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए इतनी हाय–हाय करते हो?''

नेउर गज भर की छाती किये स्नान करने चला गया। लौटकर उसने मोटी मोटी रोटियां बनायी। आलू चूल्हे में डाल दिये। उनका भुरता बनाया, फिर बुढिया और वह दोनो साथ खाने बैठे।

बुढिया–मेरी जात से तुम्हे कोई सुख न मिला। पड़े-पड़े खाती हूं और तुम्हे तंग करती हूं और इससे तो कहीं अच्छा था कि भगवान मुझे उठा लेते।'

'भगवान आयेंगे तो मै कहूंगा पहले मुझे ले चलों। तब इस सूनी झोपड़ी में कौन रहेगा।'

'तुम न रहोगे, तो मेरी क्या दशा होगी। यह सोचकर मेरी आंखो में अंधेरा आ जाता है। मैने कोई बड़ा पुन किया था। कि तुम्हें पाया था। किसी और के साथ मेरा भला क्या निबाह होता?'

ऐसे मीठे संन्तोष के लिए नेउर क्या नहीं कर डालना चाहता था। आलसिन लोभिन, स्वार्थिन बुढियांअपनी जीभ पर केवल मिठास रखकर नेउर को नचाती थी जैसे कोई शिकारी कंटिये में चारा लगाकर मछली को खिलाता है।

पहले कौन मरे, इस विषय पर आज यह पहली ही बार बातचीत न हुई थी। इसके पहलेभी कितनी ही बार यह प्रश्न उठा था और या ही छोड़ दिया गया था;! लेकिन न जाने क्यों नेउर ने अपनी डिग्री कर ली थी और उसे निश्चय था कि पहले मैं जाऊंगा। उसके पीछे भी बुढिया जब तक रह आराम से रहे, किसी के सामने हाथ न फैलाये, इसीलिए वह मरता रहता था, जिसमे हाथ में चार पैसे जमाहो जाये।' कठिन से कठिन काम जिसे कोई न कर सके नेउर करता दिन भर फावड़े कुदाल का काम करने के बाद रात को वह ऊख के दिनों में किसी की ऊख पेरता या खेतों की रखवाली करता, लेकिन दिन निकलते जाते थे और जो कुछ कमाता था वह भी निकला जाता था। बुढिया के बगैर वह जीवन....नहीं, इसकी वह कल्पना ही न कर सकता था। लेकिन आज की बाते ने नेउर को सशंक कर दिया। जल में एक बूंद रंग की भाति यह शका उसके मन मे समा कर अतिरजितं होने लगी।

2

गांव में नेउर को काम की कमी न थी, पर मजूरी तो वही मिलती थी, जो अब तक मिलती आयी थी; इस मन्दी में वह मजूरी भी नही रह गयी थी। एकाएक गांव में एक साधु कहीं से घूमते–फिरते आ निकले और नेउर के घर के सामने ही पीपल की छांह मे उनकी धुनी जल गई गांव वालो ने अपना धन्य भाग्य समझा। बाबाजी का सेवा स्त्कार करने के लिए सभी जमा हो गये। कहीं से लकड़ी आ गयी से कहीं से बिछाने को कम्बल कहीं से आटा–दाल। नेउर के पास क्या था।? बाबाजी के लिए भोजन बनाने की सेवा उसने ली। चरस आ गयी , दम लगने लगा।

दो तीन दिन में ही बाबाजी की कीर्ति फैलने लगी। वह आत्मदर्शी है भूत भविष्य की बात देते है। लोभ तो छू नहीं गया। पैसा हाथ से नहीं छूते और भोजन भी

क्या करते है। आठ पहर में एक दो बाटियां खा ली; लेकिन मुख दीपक की तरह दमक रहा है। कितनी मीठी बानी है।! सरल हृदय नेउर बाबाजी का सबसे बड़ा भक्त था। उस पर कहीं बाबाजी की दया हो गयी। तो पारस ही हो जायगा। सारा दुख दलिद्दर मिट जायगा।

भक्तजन एक-एक करके चले गये थे। खूब कड़ाके की ठंड़ पड़ रही थी केवल नेउर बैठा बाबाजी के पांव दबा रहा था।

बाबा जी ने कहा- बच्चा! संसार माया है इसमें क्यों फंसे हो?

नेउर ने नत मस्तक होकर कहा-अज्ञानी हुं महाराज, क्या करूं? स्त्री है उसे किस पर छोड़ूं!

‘तू समझता है तू स्त्री का पालन करता है?’

‘और कौन सहारा है उसे बाबाजी?’

‘ईश्वर कुद नही है तू ही सब कुछ है?’

नेउर के मन में जैसे ज्ञान-उदय हो गया। तु इतना अभिमानी हो गया है। तेरा इतना दिमाग! मजदूरी करते करते जान जाती है और तू समझता है मै ही बुढिया का सब कुछ हूं। प्रभु जो संसार का पालन करते है, तु उनके काम में दखल देने का दावा करता है। उसके सरल करते है। आस्था की ध्वनि सी उठकर उसे धिक्कारने लगी बोला–अज्ञानी हूं महाराज!

इससे ज्यादा वह और कुछ न कह सका। आखों से दीन विषाद के आंसु गिरने लगे।

बाबाजी ने तेजस्विता से कहा –‘देखना चाहता है ईश्वर का चमत्कार! वह चाहे तो क्षण भर मे तुझे लखपति कर दे। क्षण भर में तेरी सारी चिन्ताएं। हर ले! मै

उसका एक तुच्छ भक्त हूं काकविष्टा; लेकिन मुझेमें भी इतनी शक्ति है कि तुझे पारस बना दूँ। तू साफ दिल का, सच्चा ईमानदार आदमी है। मूझे तुझपर दया आती है। मैने इस गांव में सबको ध्यान से देखा। किसी में शक्ति नहीं विश्वास नहीं । तुझमे मैने भक्त का हृदय पाया तेरे पास कुछ चांदी है?''

नेउर को जान पड रहा था कि सामने स्वर्ग का द्वार है।

'दस पाँच रुपये होगे महाराज?'

'कुछ चांदी के टूटे फूटे गहने नहीं है?'

'घरवाली के पास कुछ गहने है।'

'कल रात को जितनी चांद मिल सके यहां ला और ईश्वर की प्रभुता देख। तेरे सामने मै चांदी की हांड़ी में रखकर इसी धुनी में रख दूंगा प्रात:काल आकर हांडी निकला लेना; मगर इतना याद रखना कि उन अशर्फियो को अगर शराब पीने में जुआ खेलने में या किसी दूसरे बुरे काम में खर्च किया तो कोढी हो जाएगा। अब जा सो रह। हां इतना और सुन ले इसकी चर्चा किसी से मत करना घरवालों से भी नहीं।'

नेउर घर चला, तो ऐसा प्रसन्न था मानो ईश्वर का हाथ उसके सिर पर है। रात-भर उसे नींद नही आयी। सबेरे उसने कई आदमियों से दो-दो चार चार रुपये उधार लेकर पचास रुपये जोडे! लोग उसका विश्वास करते थे। कभी किसी का पैसा भी न दबाता था। वादे का पक्का नीयत का साफ। रुपये मिलने में दिक्कत न हुई। पचीस रुपये उसके पास थे। बुढिया से गहने कैसे ले। चाल चली। तेरे गहने बहुत मैले हो गये है। खटाई से साफ कर ले । रात भर खटाई में रहने से नए हो जायेगे। बुढिया चकमे में आ गयी। हांड़ी में खटाई डालकर गहने भिगो दिए और जब रात को वह सो गयी तो नेउर ने रुपये भी उसी हांडी मे डाला दिए और बाबाजी के पास पहुंचा। बाबाजी ने कुछ मन्त्र पढ़ा। हांड़ी को छूनी की राख में रखा और नेउर को

आशीर्वाद देकर विदा किया।

रात भर करबटें बदलने के बाद नेउर मुंह अंधेरे बाबा के दर्शन करने गया। मगर बाबाजी का वहां पता न था। अधीर होकर उसने धूनी की जलती हुई राख टटोली । हांड़ी गायब थी। छाती धक-धक करने लगी। बदहवास होकर बाबा को खोजने लगा। हाट की तरफ गया। तालाब की ओर पहुंचा। दस मिनट, बीस मिनट, आधा घंटा! बाबा का कहीं निशान नहीं। भक्त आने लगे। बाबा कहां गए? कम्बल भी नही बरतन भी नहीं!

भक्त ने कहा–रमते साधुओं का क्या ठिकाना! आज यहां कल वहां, एक जगह रहे तो साधु कैसे? लोगो से हेल-मेल हो जाए, बन्धन में पड़ जायें।

'सिद्ध थे।'

'लोभ तो छू नहीं गया था।'

नेउर कहा है? उस पर बड़ी दया करते थे। उससे कह गये होगे।'

नेउर की तलाश होने लगी, कहीं पता नहीं। इतने में बुढिया नेउर को पुकारती हुई घर में से निकली। फिर कोलाहल मच गया। बुढिया रोती थी और नेउर को गालियां देती थी।

नेउर खेतो की मेड़ो से बेतहाशा भागता चला जाता था। मानो उस पापी संसार इस निकल जाएगा।

एक आदमी ने कहा- नेउर ने कल मुझसे पांच रुपये लिये थे। आज सांझ को देने को कहा था।

दूसरा–हमसे भी दो रूपये आज ही के वादे पर लिये थे।

बुढ़िया रोयी–दाढीजार मेरे सारे गहने ले गया। पचीस रुपये रखे थे वह भी उठा ले गया।

लोग समझ गये, बाबा कोई धूर्त था। नेउर को साझा दे गया। ऐसे-ऐसे ठग पड़े है संसार में। नेउर के बारे में बारे में किसी को ऐसा संदेह नहीं थी। बेचारा सीधा आदमी आ गया पट्टी में। मारे लाज के कहीं छिपा बैठा होगा

3

तीन महीने गुजर गये।

झांसी जिले में धसान नदी के किनारे एक छोटा सा गांव है- काशीपुर नदी के किनारे एक पहाड़ी टीला है। उसी पर कई दिन से एक साधु ने अपना आसन जमाया है। नाटे कद का आदमी है, काले तवे का-सा रंग देह गठी हुई। यह नेउर है जो साधु बेश में दुनिया को धोखा दे रहा है। वही सरल निष्कपट नेउर है जिसने कभी पराये माल की ओर आंख नहीं उठायो जो पसीना की रोटी खाकर मग्न था। घर की गावं की और बुढिया की याद एक क्षण भी उसे नहीं भूलती इस जीवन में फिर कोई दिन आयेगा। कि वह अपने घर पहुंचेगा और फिर उस संसार मे हंसता- खेलता अपनी छोटी–छोटी चिन्ताओ और छोटी–छोटी आशाओ के बीच आनन्द से रहेगा। वह जीवन कितना सुखमय था। जितने थे। सब अपने थे सभी आदर करते थे। सहानुभूति रखते थे। दिन भर की मजूरी, थोड़ा-सा अनाज या थोड़े से पैसे लेकार घर आता था, तो बुधिया कितने मीठे स्नेह से उसका स्वागत करती थी। वह सारी मेहनत, सारी थकावट जैसे उसे मिठास में सनकर और मीठी हो जाती थी। हाय वे दिन फिर कब आयेगे? न जाने बुधिया कैसे रहती होगी। कौन उसे पान की तरह फेरेगा? कौन उसे पकाकर खिलायेगा? घर में पैसा भी तो नहीं छोड़ा गहने तक ड़बा दिये। तब उसे क्रोध आता। कि उस बाबा को पा जाय, तो कच्च हीखा जाए। हाय लोभ! लोभ!

उनके अनन्य भक्तो में एक सुन्दरी युवती भी थी जिसके पति ने उसे त्याग दिया

था। उसका बाप फौजी-पेंशनर था, एक पढे लिखे आदमी से लड़की का विवाह किया: लेकिन लड़का माँ के कहने में था और युवती की अपनी सांस से न पटती। वह चाहती थी शौहर के साथ सास से अलग रहे शौहर अपनी मां से अलग होने पर न राजी हुआ। वह रुठकर मैके चली आयी। तब से तीन साल हो गये थे और ससुराल से एक बार भी बुलावा न आया न पतिदेव ही आये। युवती किसी तरह पति को अपने वश में कर लेना चाहती थी। महात्माओं के लिए तरह पति को अपने वश में कर लेना चाहती थी महात्माओ के लिए किसी का दिल फेर देना ऐसा क्या मुशिकल है! हां, उनकी दया चाहिए।

एक दिन उसने एकान्त में बाबाजी से अपनी विपति कह सुनायी। नेउर को जिस शिकार की टोह थी वह आज मिलता हूआ जान पड़ा गंभीर भाव से बोला-बेटी मै न सिद्ध हूं न महात्मा न मै संसार के झमेलो में पड़ता हूं पर तेरी सरधा और परेम देखकर तुझ पर दया आती हौ। भगवान ने चाहा तो तेरा मनोरध पूरा हो जायेगा।

'आप समर्थ है और मुझे आपके ऊपर विश्वास है।'

'भगवान की जो इच्छा होगी वही होगा।'

'इस अभागिनी की डोगी आप वही होगा।'

'मेरे भगवान आप ही हो।'

नेउर ने मानो धर्म-सकटं में पड़कर कहा-लेकिन बेटी, उस काम में बड़ा अनुष्ठान करना पडेगा। और अनुष्ठान में सैकड़ो हजारों का खर्च है। उस पर भी तेरा काज सिद्ध होगा या नही, यह मै नहीं कह सकता। हां मुझसे जो कुछ हो सकेगा, वह मै कर दूंगा। पर सब कुछ भगवान के हाथ में है। मै माया को हाथ से नहीं छूता; लेकिन तेरा दुख नही देखा जाता।

उसी रात को युवती ने अपने सोने के गहनों की पोटरी लाकर बाबाजी के चरणों पर

रख दी बाबाजी ने कांपते हुए हाथों से पेटारी खोली और चन्द्रमा के उज्जवल प्रकाश में आभूषणो को देखा । उनकी बाधे झपक गयीं यह सारी माया उनकी है वह उनके सामने हाथ बाधे खड़ी कह रही है मुझे अंगीकार कीजिए कुछ भी तो करना नही है केवल पेटारी लेकर अपने सिरहाने रख लेना है और युवती को आशीर्वाद देकर विदा कर देना है। प्रात काल वह आयेगी उस वक्त वह उतना दूर होगें जहां उनकी टागे ले जायेगी। ऐसा आशातीत सौभाग्य! जब वह रुपये से भरी थैलियां लिए गांव में पहुंचेगे और बुधिया के सामने रख देगे! ओह! इससे बडे आनन्द की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकते।

लेकिन न जाने क्यों इतना जरा सा काम भी उससे नहीं हो सकता था। वह पोटरी को उठाकर अपने सिरहाने कंबल के नीचे दबाकर नहीं रख सकता। है। कुछ नहीं; पर उसके लिए असूझ है, असाध्य है वह उस पेटारी की ओर हाथ भी नही बढा सकता है इतना कहने मे कौन सी दुनिया उलटी जाती है। कि बेटी इसे उठाकर इस कम्बल के नीचे रख दे। जबान कट तो न जायगी, ;मगर अब उसे मालूम होता कि जबान पर भी उसका काबू नही है। आंखो के इशारे से भी यह काम हो सकता है। लेकिन इस समय आंखे भीड़ बगावत कर रही है। मन का राजा इतने मत्रियों और सामन्तो के होते हुए भी अशक्त है निरीह है लाख रुपये की थैली सामने रखी हो नंगी तलवार हाथ में हो गाय मजबूत रस्सी के सामने बंधी हो, क्या उस गाय की गरदन पर उसके हाथ उठेगें। कभी नहीं कोई उसकी गरदन भले ही काट ले। वह गऊ की हत्या नही कर सकता। वह परित्याक्ता उसे उसी गउ की हत्या नही कर सकता वह पपित्याक्ता उसे उसी गऊ की तरह लगर ही थी। जिस अवसर को वह तीन महीने खोज रहा है उसे पाकर आज उसकी आत्मा कांप रही है। तृष्णा किसी वन्य जन्तु की भांति अपने संस्कारे से आखेटप्रिय है लेकिन जंजीरो से बधे–बधे उसके नख गिर गये है और दातं कमजोर हो गये हैं।

उसने रोते हुंए कहा–बेटी पेटारी उठा ले जाओ। मै तुम्हारी परीक्षा कर रहा था। मनोरथ पूरा हो जायेगा।

चाँद नदी के पार वृक्षो की गोद में विश्राम कर चुका था। नेउर धीरे से उठा और धसान मे स्नान करके एक ओर चल दिया। भभूत और तिलक से उसे घृणा हो रही थी उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह घर से निकला ही कैसे? थोड़े उपहास के भय से! उसे अपने अन्दर एक विचित्र उल्लास का अनुभव हो रहा था मानो वह बेड़ियो से मुक्त हो गया हो कोई बहुत बड़ी विजय प्राप्त की हो।

4

आठवे दिन नेउर गांव पहुंच गया। लड़को ने दौठकर उछल कुछकर, उसकी लकड़ी उसके हाथ उसका स्वागत किया।

एक लड़के ने कहा काकी तो मर गयी दादा।

नेउर के पांव जैसे बंध गये मुंह के दोनो कोने नीचे झुके गये। दीनविषाद आखों में चमक उठा कुछ बोला नहीं, कुछ पूछा भी नहीं। पल्भर जैसे निस्संज्ञ खड़ा रहा फिर बडी तेजी से अपनी झोपड़ी की ओर चला। बालकवृनद भी उसके पीछे दौडे मगर उनकी शरारत और चंचलता भागचली थी। झोपड़ी खुली पड़ी थी बुधिया की चारपाई जहा की तहां थी। उसकी चिलम और नारियल ज्यो के ज्यो धरे हुए थे। एक कोने में दो चार मिटटी और पीतल के बरतन पडे हुंए थे लडके बाहर ही खडे रह गये झेपडी के अन्दर कैसे जाय वहां बुधिया बैठी है।

गांव मे भगदड मच गयी। नेउर दादा आ गये। झोपड़ी के द्वार पर भीड़ लग गयी प्रश्नो का तांता बध गया।–तूम इतने दिनोकहां थे। दादा? तुम्हारे जाने के बाद तीसरे ही दिन काकी चल बसीं रात दिन तुम्हें गालियां देती थी। मरते मरते तुम्हे गरियाती ही रही। तीसरे दिन आये तो मेरी पड़ी क्थी। तुम इतने दिन कहा रहे?

नेउर ने कोई जवाब न दिया। केवल शुन्य निराश करुण आहत नेत्रो से लोगो की ओर देखता रहा मानो उसकी वाणी हर लीगयी है। उस दिन से किसी ने उसे बोलते या रोते-हंसते नहीं देखा।

गांव से आध मील पर पक्की सड़क है। अच्छी आमदरफत है। नेउर बडे सबेरे जाकर सड़क के किनारे एक पेड के नीचे बैठ जाता है। किसी से कुछ मांगता नही पर राहगीर कूछ न कुछ दे ही देते है।– चेबना अनाज पैसे। सध्यां सयम वह अपनी झोपड़ी मे आ जाता है, चिराग जलाता है भोजन बनाता है, खाना है और उसी खाट पर पड़ा रहता है। उसके जीवन, मै जो एक संचालक शक्ति थी,वह लुप्त हो गयी है, वह अब केवल जीवधारी है। कितनी गहरी मनोव्यधा है। गांव में प्लेग आया। लोग घर छोड़ छोड़कर भागने लगे नेउर को अब किसी की परवाह न थी। न किसी को उससे भय था न प्रेम। सारा गांव भाग गया। नेउर अपनी झोपड़ी से न निकला और आज भी वह उसी पेड़ के नीचे सड़क के किनारे उसी तरह मौन बैठा हुआ नजर आता है-निश्चेष्ट, निर्जीव।‘

***

गृह-नीति

जब माँ, बेटे से बहू की शिकायतों का दफ्तर खोल देती हैं और यह सिलसिला किसी तरह खत्म होते नजर नही आता, तो बेटा उकता जाता हैं और दिन-भर की थकान के कारण कुछ झुँझलाकर माँ से कहता हैं- तो आखिर तुम मुझसे क्या करने को कहती हो अम्माँ? मेरा काम स्त्री की शिक्षा देना तो नहीं हैं। यह तो तुम्हारा काम हैं ! उसे डाँटो, मारो , जो सजा चाहे दो। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती हैं कि तुम्हारे प्रयत्न से वह आदमी बन जाय? मुझसे मत कहो कि उसे सलीका नहीं हैं, तमीज नहीं हैं, बे-अदब हैं। उसे डाँटकर सिखाओ।

माँ- वाह, मुँह से बात निकलने नहीं देती, डाटूँ तो मुझे ही नोच खाय। उसके सामने अपनी आबरू बचाती फिरती हूँ, कि किसी के मुँह पर मुझे कोई अनुचित शब्द न कह बैठे।

बेटा- तो फिर इसमें मेरी क्या खता हैं? मैं तो उसे सिखा नहीं देता कि तुमसे बे-अदबी करे!

माँ- तो और कौन सिखाता हैं?

बेटा- तुम तो अन्धेर करती हो अम्माँ?

माँ- अन्धेर नहीं करती, सत्य कहती हूँ। तुम्हारी ही शह पाकर उसका दिमाग बढ़ गया हैं। जब वह तुम्हारे पास जा कर टेसुवे बहाने लगती हैं, तो कभी तुमने उसे डाँटा, कभी समझाया कि तुझे अम्माँ का अदब करना चाहिए? तुम को खुद उसके गुलाम हो गये हो। वह भी समझती हैं, मेरा पति कमाता हैं, फिर मैं क्यों न रानी बनूँ, क्यों किसी से दबूँ ? मर्द जब तक शह न दे, औरत का इतना गुर्दा हो ही नही

सकता।

बेटा- तो क्या मैं उससे कह दूँ कि मैं कुछ नहीं कमाता, बिलकुल निखट्टू हूँ? क्या समझती हो, तब वह मुझे जलील न समझेगी? हर एक पुरुष चाहता हैं कि उसकी स्त्री उसे कमाऊ, योग्य , तेजस्वी समझे और सामान्यतः वह जितना हैं, उससे बढ़कर अपने को दिखाता हैं। मैने कभी नादानी नहीं की कभी स्त्री के सामने डींग नहीं मारी; लेकिन स्त्री की दृष्टि में अपना सम्मान खोना तो कोई भी न चाहेगा।

माँ- तुम काम लगाकर, ध्यान देकर और मीठी मुसकराहट के साथ उसकी बातें सुनोगे, तो वह क्यों न शेर होगी? तुम खुद चाहते हो कि स्त्री के हाथों मेरा अपमान कराओ। मालूम नहीं, मेरे किन पापों का तुम मुझे दंड दे रहे हो। किन अरमानों से , कैसे-कैसे कष्ट झेलकर; मैने तुम्हे पाला। खुद नहीं पहना, तुम्हें पहनाया; खुद नहीं खाया, तुम्हें खिलाया। मेरे लिए तुम उस मरने वाली की निशानी थी और मेरी सारी अभिलाषाओं के केन्द्र। तुम्हारी शिक्षा पर मैने अपने हजारों के आभूषण होम कर दिये। विधवा के पास दूसरी कौन-सी निधि थी। इसका तुम मुझे यह पुरस्कार दे रहे हो।

बेटा- मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझसे चाहती क्या हैं? आपके उपकारों को मैं कब मेट सकता हूँ? आपने मुझे केवल शिक्षा हीं नहीं दिलायी, मुझे जीवन-दान दियी, मेरी सृष्टि की। अपने गहने ही नहीं होम किये, अपना रक्त तक पिलाया। अगर सौ बार अवतार लूँ, तो भी इसका बदला नहीं चुका सकता। मैं अपनी जान में आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करता, यथासाध्या आपकी सेवा में कोई बात उठा नहीं रखता; जो कुछ पाता हूँ, लाकर आपके हाथों पर रख देता हूँ; और मुझसे क्या चाहती हैं! और मैं कर ही क्या सकता हूँ? ईश्वर ने हमें तथा आपको और सारे संसार को पैदा किया। उसका हम उसे क्या बदला देते हैं? क्या बदला दे सकते हैं? उसका नाम भी तो नहीं लेते। उसका यश भी तो नहीं गाते। इससे क्या उसके उपकारों का भार कुछ कम हो जाता हैं। माँ के बलिदानो

का प्रतिशोध कोई बेटा नहीं कर सकता, चाहे वह भू-मंडल का स्वामी ही क्यो न हो। ज्यादा-से-ज्यादा मैं आपकी दिलजोई ही तो कर सकता हूँ औऱ मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी आपकों असन्तुष्ट किया हो।

माँ- तुम मेरी दिलजोई करते हो! तुम्हारे घर में मैं इस तरह रहती हूँ जैसे कोई लौड़ी। तुम्हारी बीवी कभी मेरी बात नहीं पूछती। मैं भी कभी बहु थी। रात को घंटे-भर सास की देह दबाकर; उसके सिर में तेल डालकर, उन्हें दूध पिलाकर तब बिस्तर पर जाती थी। तुम्हारी स्त्री नौ बजे अपनी किताबें लेकर अपनी सहनची में जा बैठती हैं, दोनो खिड़कियाँ खोल देती हैं और मजे से हवा खाती हैं। मैं मरूँ या जीऊँ, उससे मतलब नहीं, इसीलिए मैंने पाला था।

बेटा- तुमने मुझे पाला था, तो यह सारी सेवा मुझसे लेनी चाहिए थी, मगर तुमने मुझसे कभी नहीं कहा। मेरे अन्य मित्र भी हैं। उनसे भी मैं किसी को माँ की देह में मुक्कियाँ लगाते नहीं देखता। आप मेरे कर्त्तव्य का भार मेरी स्त्री पर क्यो डालती हैं? यों अगर वह आपकरी सेवा करे, तो मुझसे ज्यादा प्रसन्न और कोई न होगा। मेरी आँखों में उसकी इज्जत दूनी हो जाएगी। शायद उससे और ज्यादा प्रेम करने लगूँ। लेकिन अगर वह आपकी सेवा नहीं करती, तो आपको उससे अप्रसन्न होने का कोई कारण नहीं हैं। शायद उसकी जगह मै होता, तो मैं भी ऐसा ही करता। सास मुझे अपनी लड़की की तरह प्यार करती, तो मैं उसके तलुए सहलाता, इसलिए नहीं कि वह मेरे पति की माँ होती, बल्कि इसलिए कि वह मुझसे मातृवत् स्नेह करती, मगर मुझे खुद यह बुरा लगता हैं कि बहू सास के पाँव दबाये । कुछ दिन पहले स्त्रियाँ पति के पाँव दबाती थी। आज भी उस प्रथा का लोप नहीं हुआ हैं, लेकिन मेरी पत्नी मेरे पाँव दबाये, तो मुझे ग्लानि होगी। यह रस्म उस जमाने की यादगार हैं, जब स्त्री पति की लौड़ी समझी जाती थी! अब पत्नी और पति दोनो बराबर हैं। कम-से-कम मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।

माँ- तो मैं कहती हूँ कि तुम्हीं ने उसे ऐसी-ऐसी बाते पढ़ाकर शेर कर दिया हैं। तुम्हीं मुझसे बैर साध रहे हो। ऐसी निर्लज्ज, ऐसी बदजबान, ऐसी टर्री, फूहड़

छोकरी संसार में न होगी। घर में अक्सर महल्ले की बहनें मिलने आता रहती हैं। यह राजा की बेटी न जाने किन गँवारों में पली हैं कि किसी का आदर-सत्कार नहीं करती। कमरे से निकलती तक नहीं। कभी-कभी जब वे खुद उसके कमरे मे चली जाती हैं, तो भी यह गधी चारपाई से नहीं उठती। प्रणाम तक नहीं करती, चरण छूना तो दूर की बात हैं।

बेटा- यह देवियाँ तुमसे मिलने आती होगी। तुम्हारे और उनके बीच में न-जाने क्या बाते होती हों, अगर बहू बीच में आ कूदें तो मैं उसे बदतमीज कहूँगा। कम-से-कम मैं तो कभी पसन्द न करूँगा कि मैं जब अपने मित्रों से बातें कर रहा हूँ, तो तुम या तुम्हारी बहू वहाँ जाकर खड़ी हो जाय। स्त्री भी अपनी सहेलियों के साथ बैठी हो, तो मैं वहाँ बिना बुलाये न जाऊँगा। यह तो आजक का शिष्टाचार हैंय़

माँ- तुम तो हर बात में उसी का पक्ष करते हो बेटा, न-जाने उसने कौन-सी जड़ी सुँधा दी हैं तुम्हें। यह कौन कहता हैं कि वह हम लोगों के बीच में आ कूदें, लेकिन बड़ो का उसे कुछ तो आदर-सत्कार करना चाहिए।

बेटा- किस तरह?

माँ- जाकर अंचल से उसके चरण छुए, प्रणाम करे, पान खिलाये, पंखा झले। इन्ही बातो से बहू का आदर होता हैं। उसकी प्रशंसा करते हैं। नहीं तो सब-की-सब यही कहती होंगी कि बहू को घमंड हो गया हैं, किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती!

बेटा- (विचार करके) हाँ, यह अवश्य उसका दोष हैं। मैं उसे समझा दूँगा।

माँ- (प्रसन्न होकर) तुमसे सच कहती हूँ बेटा, चारपाई से उठती तक नहीं हैं, सब औरते थुड़ी-थुड़ी करती हैं, मगर उसे तो शर्म जैसे छू ही नहीं गयी और मैं हूँ, कि मारे शर्म के मरी जाती हूँ।

बेटा- यही मेरी समझ में नहीं आता कि तुम हर बात में अपने को उसके कामों का जिम्मेदार क्यों समझ लेती हो? मुझ पर दफ्तर में न जाने कितनी घुड़कियाँ पड़ती हैं; रोज ही तो जवाब-तलब होता हैं, लेकिन तुम्हें उलटे मेरे साथ सहानुभूति होती हैं। क्या तुम समझती हो, अफसरों को मुझसे कोई बैर है, जो अनायास ही मेरे पीछे पड़े रहते हैं, या उन्हें उन्माद हो गया हैं, जो अकारण ही मुझे काटने दौड़ते हैं? नहीं, इसका कारण यहीं हैं कि मैं अपने काम में चौकस नहीं हूँ। गलतियाँ करता हूँ, सुस्ती करता हूँ, लापरवाही करता हूँ। जहाँ अफसर सामने से हटा कि लगे समाचार पत्र पढ़ने या ताश खेलने। क्या उस वक़्त हमें यह ख्याल नहीं रहता कि काम पड़ा हैं। और यह साहब डाँट ही तो बतायेंगे, सिर झुकाकर सुन लेंगे, बाधा टल जायगी। पर ताश खेलने का अवसर नही हैं, लेकिन कौन परवाह करता हैं। सोचते हैं, तुम मुझे दोषी समझकर भी मेरा पक्ष लेती हो और तुम्हारा बस चले, तो बड़े बाबू को मुझसे जवाब-तलब करने करने के अभियोग में कालेपानी भेज दो।

माँ- (खिलकर) मेरे लड़के को कोई सजा देगा, तो क्या मैं पान-फूल से उसकी पूजा करूँगी?

बेटा- हरेक बेटा अपनी माता से इसी तरह की कृपा की आशा रखता हैं और सभी माताएँ अपने लड़को के ऐबों पर पर्दा डालती हैं। फिर बहुओं की ओर से क्यों उनका हृदय इतना कठोर हो जाता हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी बहू पर जब दूसरी स्त्रियाँ चोट करे, तो तुम्हारे मातृ-स्नेह का यह धर्म हैं कि तुम उसकी तरफ से क्षमा माँगो, कोई बहाना कर दो, उनकी नजरों से उसे उठाने की चेष्टा करो। इस तिरस्कार में तुम क्यों उनसे सहयोग करती हो? तुम्हें क्यों उसके अपमान में मजा आता हैं? मैं भी तो हरेक ब्राह्मण या बड़े-बूढ़े का आदर-सत्कार नही करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति के सामने सिर झुका ही नहीं सकता, जिससे मुझे हार्दिक श्रद्धा न हो। केवल सफेद बाल, सिकुड़ी हुई खाल, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर किसी को आदर का पात्र नहीं बना देती और न जनेऊ या तिलक या पंडित और शर्मा की उपाधि ही भक्ति की वस्तु हैं। मैं लकीर-पीटू सम्मान को

नैतिक अपराध समझता हूँ। मैं तो उसी को सम्मान करूँगा जो मनसा-वाचा-कर्मणा हर पहलू से सम्मान के योग्य हैं। जिसे मै जानता हूँ कि मक्कारी, स्वार्थ-साधन और निन्दा के सिवा और कुछ नहीं करता, जिसे मैं जानता हूँ कि रिश्वत और सूद तथा खुशामद की कमाई खाता है, वह अगर ब्रह्मा की आयु लेकर भी मेरे सामने आये, तो भी मैं उसे सलाम न करूँ। इसे तुम मेरा अहंकार कह सकती हो। लेकिन मैं मजबूर हूँ, जब तक मेरा दिल न झुके, मेरा सिर भी न झुकेगा। मुमकिन हैं, तुम्हारी बहू के मन में भी उन देवियों की ओर से अश्रद्धा के भाव हो। उनमें से दो-चार को मैं भी जानता हूँ। हैं वे सब बड़े घर की; लेकिन सबके दिल छोटे, विचार छोटे। कोई निन्दा की पुतली हैं, तो कोई खुशामद में युक्त, कोई गाली-गलौज में अनुपम। सभी रूढियों की गुलाम, ईर्ष्या-द्वेष से जलने-वाली। एक भी ऐसी नहीं, जिसने अपने घर को नरक का नमूना न बना रखा हो। अगर तुम्हारी बहू ऐसी औरतों के आगे सिर नहीं झुकाती, तो मैं उसे दोषी नहीं समझता।

माँ- अच्छा, अब चुप रहो बेटा, देख लेना तुम्हारी यह रानी एक दिन तुमसे चूल्हा न जलवाये और झाड़ू न लगवाये, तो सही। औरतों को बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं होता। इस निर्लज्जता की भी कोई हद हैं, कि बूढ़ी सास तो खाना पकाये और जबान बहू बैठी उपन्यास पढ़ती रहे।

बेटा- बेशक यह बुरी बात हैं और मैं हर्गिज नहीं चाहता कि तुम खाना पकाओ और वह उपन्यास पढ़े, चाहे वह उपन्यास प्रेमचन्दजी ही के क्यों न हो; लेकिन यह भी तो देखना होगा कि उसने अपने घर में कभी खाना नही पकाया। वहाँ रसोइया महाराज हैं। और जब चूल्हे के सामने जाने से उसके सिर में दर्द होने लगता है; तो उसे खाना पकाने के लिए मजबूर करना उस पर अत्याचार करना हैं। मैं तो समझता हूँ ज्यों-ज्यों हमारे घर की दशा का ज्ञान होगा, उसके व्यवहार में आप-ही-आप इस्क्ताह होती जायगी। यह उसके घरवालों की गलती हैं कि उन्होंने उसकी शादी किसी धनी घर में नहीं की। हमने भी तो यह शरारत की कि अपनी असली हालत उनसे छिपायी और यह प्रकट किया कि हम पुराने रईस हैं।

अब हम किस मुँह से यह कह सकते हैं कि तू खाना पका, या बरतन माँज अथवा झाड़ू लगा ? हमने उन लोगों के साथ छल किया हैं और उसका फल हमें चखना पडेगा। अब तो हमारी कुशल इसी में हैं कि अपनी दुर्दशा को नम्रता, विनय और सहानुभूति से ढाँके और उसे अपने दिल को यह तसल्ली देने का अवसर दे कि बला से धन नहीं मिला, घर के आदमी तो अच्छे मिले। अगर यह तसल्ली भी हमने उससे छीन ली, तो तुम्हीं सोचो, उसको कितनी विदारक वेदना होगी! शायद वह हम लोगों की सूरत से भी घृणा करने लगे।

माँ- उसके घरवालों को सौ दफे गरज थी, तब हमारे यहाँ ब्याह किया। हम कुछ उनसे भीख माँगने गये थे?

बेटा- उनको अगर लड़के की गरज थी, तो हमें धन और कन्या दोनों की गरज थी।

माँ- यहाँ के बड़े-बड़े रईस हमसे नाता करने को मुँह फैलाये हुए थे।

बेटा- इसीलिए कि हमने रईसों का स्वाँग बना रखा हैं। घर की असली हालत खुल जाय, तो कोई बात भी न पूछे।

माँ- तो तुम्हारे ससुरालवाले ऐसे कहाँ के रईस हैं। इधर जरा वकालत चल गयी, तो रईस हो गये, नहीं तो तुम्हारे ससुर के बाप मेरे सामने चपरासगीरी करते थे। और लड़की का यह दिमाग कि खाना पकाने से सिर में दर्द होता हैं। अच्छे-अच्छे घरों की लड़कियाँ गरीबों के घर आती हैं और घर की हालत देखकर वैसा ही बर्ताव करती हैं। यह नहीं कि बैठी अपने भाग्य को कोसा करे। इस छोकरी ने हमारे घर को अपना समझा ही नहीं।

बेटा- जब तुम समझने भी दो। जिस घर में घुड़कियों, गालियों और कटुता के सिवा और कुछ न मिले, उसे अपना घर कौन समझे? घर तो वह है जहाँ स्नेह और प्यार मिले। कोई लड़की डोली से उतरते ही सास को अपनी माँ नही समझ

सकती। माँ तभी समझेगी, जब सास पहले उनके साथ माँ का-सा बर्ताव करे, बल्कि अपनी लड़की से ज्यादा प्रिय समझे।

माँ- अच्छा, अब चुप रहो। जी न जलाओ। यह जमाना ही ऐसा हैं कि लड़कों ने स्त्री का मुँह देखा और उसके गुलाम हुए। ये सब न-जाने कौन-सा मंतर सीखकर आती हैं। यह बहू-बेटी के लच्छन हैं कि पहर दिन चढ़े सोकर उठे? ऐसी कुलच्छनी बहू का तो मुँह न देखे।

बेटा- मैं भी तो देर में सोकर उठता हूँ, अम्माँ। मुझे तो तुमने कभी नहीं कोसा।

माँ- तुम हर बात में उससे अपनी बराबरी करते हो?

बेटा- यह उसके साथ घोर अन्याय हैं; क्योंकि जब तक वह इस घर को अपना नहीं समझती, तब तक उसकी हैसियत मेहमान की हैं और मेहमान की हम खातिर करते हैं, उसके ऐब नहीं देखते।

माँ- ईश्वर न करे कि किसी को ऐसी बहू मिले।

बेटा- तो वह तुम्हारे घर में रह चुकी।

माँ- क्या संसार में औरतों की कमी हैं?

बेटा- औरतों की कमी तो नहीं; मगर देवियों की कमी जरूर हैं।

माँ- नौज ऐसी औरत। सोने लगती हैं, तो बच्चा चाहे रोते-रोते बेदम हो जाय, मिनकती तक नहीं। फूल-सा बच्चा लेकर मैके गयी थी, तीन महीने में लौटी, तो बच्चा आधा भी नहीं हैं।

बेटा- तो क्या मैं यह मान लूँ कि तुम्हें उसके लड़के से जितना प्रेम हैं, उतना उसे नहीं हैं? यह तो प्रकृति के नियम के विरुद्ध हैं। और मान लो, वह निरमोहिन

ही हैं, तो यह उसका दोष हैं। तुम क्यों उसकी जिम्मेदार अपने सिर लेती हो? उसे पूरी स्वतन्त्रता हैं, जैसे चाहे अपने बच्चे को पाले, अगर वह तुमसे कोई सलाह पूछे, प्रसन्नमुख से दे दो, न पूछे तो समझ लो, उसे तुम्हारी मदद की जरूरत नही हैं। सभी माताएँ अपने बच्चे को प्यार करती हैं और यह अपवाद नहीं हो सकती।

माँ- तो मैं सब कुछ देखूँ, मुँह न खोलूँ? घर में आग लगते देखूँ और चुपचाप मुँह में कालिख लगाये खड़ी रहूँ?

बेटा- तुम इस घर को जल्द छोडनेवाली हो, उसे बहुत दिन रहना हैं। घर की हानि-लाभ की जितनी चिन्ता उसे हो सकती हैं, तुम्हें नहीं हो सकती। फिर मैं कर ही क्या सकता हूँ? ज्यादा से ज्यादा उसे डाँट बता सकता हूँ; लेकिन वह डाँट की परवाह न करे और तुर्की-बेतुर्की जवाब दे, तो मेरे पास ऐसा कौन-सा साधन हैं, जिससे मैं उसे ताडना दे सकूँ?

माँ- तुम दो-दिन न बोलो, तो देवता सीधे हो जायँ, सामने नाक रगड़े।

बेटा- मुझे इसका विश्वास नहीं हैं। मैं उससे न बोलूँगा, वह भी मुझसे न बोलगी। ज्यादा पीछे पड़ूँगा, तो अपने घर चली जायँगी।

माँ- ईश्वर यह दिन लाये। मैं तुम्हारे लिए नयी बहू लाऊँ।

बेटा- सम्भव हैं, इसकी भी चर्चा हो।

[सहसा बहू आकर खड़ी हो जाती हैं। माँ और बेटा दोनों स्तम्भित हो जाते हैं, मानो कोई बम गोला आ गिरा हो। रूपवती, नाजुक-मिजाज, गर्वीली रमणी हैं, जो मानो शासन करने के लिए ही बनी हैं। कपोल तमतमाये हुए; पर अधरों पर विष भरी मुसकान हैं और आँखों में व्यंग्य-मिला परिहास।]

माँ-(अपनी झेंप छिपाकर) तुम्हें कौन बुलाने गया था?

बहू- क्यों यहाँ जो तमाशा हो रहा हैं, उसका आनन्द मैं न उठाऊँ?

बेटा- माँ-बेटे के बीच में तुम्हें दखल देने का कोई हक नहीं।

(बहू की मुद्रा सहसा कठोर हो जाती हैं।)

बहू- अच्छा, आप जबान बन्द रखिए। जो पति अपनी स्त्री की निन्दा सुनता रहे, वह पति बनने के योग्य नहीं। वह पति-धर्म का क-ख-ग भी नही जानता। मुझसे अगर कोई तुम्हारी बुराई करता, चाहे वह मेरी प्यारी माँ ही क्यों न होती, तो मैं उसकी जबान पकड़ लेती! तुम मेरे घर जाते हो, तो वहाँ तो जिसे देखती हूँ, तुम्हारी प्रशंसा ही करता हैं। छोटे से बड़े तक गुलामों की तरह दौड़ते-फिरते हैं। अगर उनके बस में हो, तो तुम्हारे लिए स्वर्ग के तारे तोड़ लाये और उसका जवाब मुझे यहाँ यह मिलता हैं कि बात-बात पर ताने-मेहने, तिरस्कार-बहिष्कार। मेरे घर तो तुमसे कोई कहता कि तुम देर में क्यों उठे, तुमने अमुक महोदय को सलाम नहीं किया, अमुक के चरणों पर सिर क्यों नही पटका? मेरे बाबूदी कभी गवारा न करेंगे कि तुम उनकी देह पर मुक्कियाँ लगाओ या उनकी धोती धोओ, या उन्हें खाना पकाकर खिलाओं। मेरे साथ यहाँ यह बर्ताव क्यों? मैं यहाँ लौड़ी बनकर नहीं आयी हूँ। तुम्हारी जीवन-संगिनी बनकर आयी हूँ। मगर जीवन-संगिनी का यह अर्थ तो नहीं कि तुम मेरे ऊपर सवार हो कर मुझे जलाओ। यह मेरा काम हैं कि जिस तरह चाहूँ, तुम्हारे साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करूँ। उसकी प्रेरणा मेरी आत्मा से होनी चाहिए, ताड़ना या तिरस्कार से नहीं। अगर कोई मुझे कुछ सिखाना चाहता हैं, तो माँ की तरह प्रेम से सिखाये। मैं सीखूँगी, लेकिन कोई जबरदस्ती, मेरी छाती पर चढ़कर अमृत भी मेरे कंठ में ठूँसना चाहे तो मैं ओंठ बन्द कर लूँगी। मै अब कब की इस घर को अपना समझ चुकी होती; अपनी सेवा और कर्त्तव्य का निश्चय कर चुकी होती; मगर यहाँ तो हर घड़ी, हर पल, मेरी देह में सुई चुभोकर मुझे याद दिलाया जाता हैं कि तू इस घर की लौड़ी हैं, तेरा घर से कोई नाता नहीं, तू सिर्फ गुलामी करने के लिये यहाँ लायी गयी हैं, और मेरा रक्त खौल कर रह जाता हैं। अगर यही हाल रहा, तो एक दिन

तुम दोनों मेरी जान लेकर रहोगे।

माँ- सुन रहे हो अपनी चहेती रानी की बाते? यहाँ लौड़ी बन कर नहीं, रानी बन कर आयी हैं, हम दोनों उसकी टहल करने के लिए हैं, उसके काम हमारे ऊपर शासन करना हैं, उसे कोई कुछ काम करने कौन कहे, मैं खुद मरा करूँ। और तुम उसकी बातें कान लगाकर सुनते हो। तुम्हारा मुँह कभी नही खुलता कि उसे डाटो या समझाओ। थर-थर काँपते रहते हो।

बेटा- अच्छा अम्माँ ठंडे दिल से सोचो। मैं इसकी बात न सुनूँ, तो कौन सुने? क्या तुम्हे इसके साथ इतनी हमदर्दी भी नहीं देखना चाहती। आखिर बाबूजी जीवित थे, तब वह तुम्हारी बातें सुनते थे या नहीं? तुम्हें प्यार करते थे या नहीं? फिर मैं अपनी बीवी की बातें सुनता हूँ तो कौन-सी नयी बात करता हूँ। और इसमें तुम्हारे बुरा मानने की कौन बात हैं?

माँ- हाय बेटा, तुम अपनी स्त्री के सामने मेरा अपमान कर रहे हो। इसी दिन के लिए मैने पाल-पोस कर बड़ा किया था? क्या मेरी छाती नहीं फट जाती?

[वह आँखू पोंछती, आपे से बाहर, कमरे से बाहर निकल जाती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों कौतुक भरी आँखों से उसे देखते हैं, जो बहुत जल्द हमदर्दी में बदल जाती हैं।]

पति- माँ का हृदय...

स्त्री- माँ का हृदय नहीं, स्त्री का हृदय..

पति- अर्थात्?

स्त्री- जो अन्त तक पुरुष का सहारा चाहता हैं, स्नेह चाहता हैं और उस पर किसी दूसरी स्त्री का असर देखकर ईर्ष्या से जल उठता हैं।

पति- क्या पगली की-सी बाते करती हो?

स्त्री- यर्थात कहती हूँ।

पति- तुम्हारा दृष्टिकोण बिलकुल गलत हैं और इसका तजरबा तुम्हें तब होगा, जब तुम खुद सास होगी।

स्त्री- मुझे सास बनना ही नहीं हैं। लड़का अपना हाथ-पाँव का हो जाय, ब्याह करे और अपना घर सँभाले। मुझे बहू से क्या सरोकार?

पति- तुम्हें यह अरमान बिलकुल नहीं हैं कि तुम्हारा लड़का योग्य हो, तुम्हारी बहू लक्ष्मी हो, और दोनो का जीवन सुख से कटे?

स्त्री- क्या मैं माँ नहीं हूँ?

पति- माँ और सास में कोई अन्तर हैं?

स्त्री- उतना ही जितना जमीन और आसमान में हैं। माँ प्यार करती हैं, सास शासन करती हैं। कितनी ही दयालु, सहनशील सतोगुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानो ब्याही हुई गाय हो जाती हैं। जिसे पुत्र से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती हैं। मुझे भी अपने ऊपर विश्वास नहीं हैं। अधिकार पाकर किसे मद नहीं हो जाता? मैंने तय कर लिया हैं, सास बनूँगी ही नहीं। औरत की गुलामी सासों के बल पर कायम हैं। जिस दिन सासें न रहेंगी, औरत की गुलामी का अन्त हो जायगा।

पति- मेरा ख्याल हैं, तुम जरा भी सहज बुद्धि से काम लो, तो तुम अम्माँ पर भी शासन कर सकती हो। तुमने हमारी बाते कुछ सुनी?

स्त्री- बिना सुने ही मैने समझ लिया कि क्या बाते हो रही होगी। वही बहू का रोना...

पति- नहीं, नहीं। तुमने बिलकुल गलत समझा। अम्माँ के मिजाज में आज मैंने विस्मयकारी अन्तर देखा, बिलकुल अभूतपूर्व। आज वह जैसे अपनी कटुताओं पर लज्जित हो रही थी। हाँ, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, संकेत रूप से। अब तक वह तुमसे इसलिए नाराज रहती थी कि तुम देर से उठती हो। अब शायद उन्हें यह चिन्ता हो रही हैं कि कहीं सबेरे उठने से तुम्हे ठंड न लग जाय। तुम्हारे लिए पानी गर्म करने को कह रही थी।

स्त्री-(प्रसन्न होकर) सच!

पति- हाँ, मुझे तो सुनकर आश्चर्य हुआ।

स्त्री- तो अब मैं मुँह-अँधेरे उठूँगी। ऐसी ठंड क्या लग जायगी; लेकिन तुम मुझे चकमा दो नहीं दे रहे हो?

पति- अब इस बदगुमानी का क्या इलाज। आदमी को कभी-कभी अपने अन्याय पर खेद तो होता ही हैं।

स्त्री- तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर। अब मैं गजरदम उठूँगी। वह बेचारी मेरे लिए क्यों पानी गर्म करेंगी? मैं खुद गर्म कर लूँगी। आदमी करना चाहे तो क्या नहीं कर सकता?

पति- मुझे उनकी बात सुन-सुन कर ऐसा लगता था, जैसे किसी दैवी आदेश ने उनकी आत्मा को जगा दिया हो। तुम्हारे अल्हड़पन और चपलता पर कितना भन्नाती हैं। चाहती थी कि घर में कोई बड़ी-बूढी आ जाय, तो तुम उसके चरण छुओ; लेकिन शायद अब उन्हें मालूम होने लगा हैं कि इस उम्र में सभी थोडे बहुत अल्हड़ होते हैं। शायद उन्हे अपनी जवानी याद आ रही हैं। कहती थी, यहीं तो शौक-सिंगार , पहनने-ओढ़ने , खाने-खेलने के दिन हैं। बुढ़िया का तो दिन-भर ताँता लगा रहता हैं, कोई कहाँ तक उनके चरण छुए और क्यों छुए? ऐसी कहाँ की बड़ी देवियाँ है।

स्त्री- मुझे तो हर्षोन्माद हुआ चाहता हैं।

पति- मुझे तो विश्वास ही न आता था। स्वप्न देखने का सन्देह हो रहा था।

स्त्री- अब आयी हैं राह पर!

पति- कोई दैवी प्रेरणा समझो।

स्त्री- मैं कल से ठेठ बहू बन जाऊँगी। किसी को खबर भी न होगी कि कब अपना मेकअप करती हूँ। सिनेमा के लिए भी सप्ताह में एक दिन काफी हैं। बुढ़ियों के पाँव छू लेने में ही क्या हरज हैं? वे देवियाँ न सही, चुडैले ही सही; मुझे आशीर्वाद तो देंगी, मेरा गुण तो गावेंगी।

पति- सिनेमा का तो उन्होंने नाम भी नहीं लिया।

स्त्री- तुमको जा इसका शौक हैं। अब तुम्हें भी न जाने दूँगी।

पति- लेकिन सोचो, तुमने कितनी ऊँची शिक्षा पायी हैं, किस कुल की हो, इन खूसट बूढ़ियों के पाँव पर सिर रखना तुम्हें बिलकुल शोभा न देगा।

स्त्री- तो क्या ऊँची शिक्षा के यह मानी हैं कि हम दूसरों को नीचा समझें? बुड्ढे कितने मूर्ख हो; लेकिन दुनिया का तजरबा तो रखते हैं। कुल की प्रतिष्ठा भी नम्रता और सदभावना से होती हैं, हेकड़ी और रुखाई से नहीं।

पति- मुझे तो यही ताज्जुब होता हैं कि इतनी जल्द इनकी कायापलट कैसे हो गयी। अब इन्हें बहुओ का सास के पाँव दबाना या उनकी साड़ी धोना, या उनकी देह में मुक्कियाँ लगाना बुरा लगने लगा हैं। कहती थी, बहू कोई लौंड़ी थोड़े ही हैं कि बैठी सास का पाँव दबाये।

स्त्री- मेरी कसम?

पति- हाँ जी, सच कहता हूँ। और तो और, अब वह तुम्हें खाना भी न पकाने देंगी। कहती थी, जब बहू के सिर में दर्द होता हैं, तो क्यों उसे सताया जाय? कोई महाराज रख लो।

स्त्री- (फूली न समाकर)- मै तो आकाश में उड़ी जा रही हूँ। ऐसी सास के तो चरण धो धोकर पियें; मगर तुमने पूछा नही; अब तर तुम क्यों उसे मार-मारकर हकीम बनाने पर तुली रहती थी।

पति- पूछा क्यों नही, भला मैं छोड़नेवाला था। बोली, मैं अच्छी हो गयी थी, मैंने हमेशा खाना पकाया हैं, फिर वह क्यों न पकाये। लेकिन अब उनकी समझ में आया हैं कि वह निर्धन बाप की बेची थी, तुम सम्पन्न कुल की कन्या हो!

स्त्री- अम्माँजी दिल की साफ हैं। इन्हें मैं क्षमा के योग्य समझती हूँ। जिस जलवायु में हम पलते हैं, उसे एक बारगी नहीं बदल सकते। जिन रूढियों और परम्पराओं में उनका जीवन बीता हैं, उन्हें तुरन्त त्याग देना उनके लिए कठिन हैं। वह क्यों, कोई भी नहीं छोड़ सकता। वह तो फिर भी बहुत उदार हैं। तुम अभी महाराज मत रखों। ख्यामख्याह जेरबार क्यों होंगे, जब तरक्की हो जाय, तो महाराज रख लेना। अभी मैं खुद पका लिया करूँगी। तीन-चार प्राणियों का खाना ही क्या। मेरी जात से कुछ अम्माँ को आराम मिले। मै जानती हूँ सब कुछ; लेकिन कोई रोब जमाना चाहे, तो मुझसे बुरा कोई नहीं।

पति- मगर यह तो मुझे बुरा लगेगा कि तुम रात को अम्माँ के पाँव दबाने बैठो।

स्त्री- इसमें बुरा लगने वाली कौन-सी बात हैं, जब उन्हें मेरा इतना ख्याल हैं, तो मुझे भी उनका लिहाज करना ही चाहिए। जिस दिन में उनके पाँव दबाने बैठूँगी, वह मुझ पर प्राण देने लगेंगी। आखिर बहू-बेटे का कुछ सुख उन्हें भी तो हो! बड़ों की सेवा करने में हेठी नहीं होती। बुरा जब लगता हैं, जब वह शासन करते हैं और अम्माँ मुझसे पाँव दबवायेंगी थोड़े ही। संत का यश मिलेगा।

पति- अब तो अम्माँ को तुम्हारा फजूलखर्ची भी बुरी नहीं लगती। कहती थी, रुपये-पैसे बहू के हाथ में दे दिया करो।

स्त्री- चिढ़कर तो नहीं कहती थी?

पति- नहीं, नहीं, प्रेम से कह रही थी। उन्हें अब भय हो रहा हैं, कि उनके हाथ में पैसे रहने से तुम्हें असुविधा होती होगी। तुम बार-बार उनसे माँगती लजाती भी होगी और डरती भी होगी एवं तुम्हें अपनी जरूरतों को रोकना पड़ता होगा।

स्त्री- ना भैया, मैं यह जंजाल अभी अपने सिर न लूँगी। तुम्हारी थोड़ी-सी आमदनी हैं, कहीं जल्दी से खर्च हो जाय, तो महीना काटना मुश्किल हो जाय। थोड़े में निर्वाह करने की विद्या उन्हीं को आती हैं। मेरी ऐसी जरूरतें ही क्या हैं? मैं तो केवल अम्माँजी चिढाने के लिए उनसे बार-बार रुपये माँगती थी। मेरे पास तो खुद सौ-पचास रुपये पड़े रहते हैं। बाबूजी का पत्र आता है, तो उसमें दस-बीस के नोट जरूर होते हैं; लेकिन अब मुझे हाथ रोकना पड़ेगा। आखिर बाबूजी कब तक देते चले जायँगे और यह कौन-सी अच्छी बात हैं कि मैं हमेशा उन पर टैक्स लगाती रहूँ?

पति- देख लेना अम्माँ अब तुम्हें कितना प्यार करती हैं।

स्त्री- तुम भी देख लेना, मैं उनकी कितनी सेवा करती हूँ।

पति- मगर शुरू तो उन्होंने किया?

स्त्री- केवल विचार से। व्यवहार में आरम्भ मेरी ही ओर से होगा। भोजन पकाने का समय आ गया, चलती हूँ। आज कोई खास चीज तो नहीं खाओगे?

पति- तुम्हारे हाथों की सूखी रोटियाँ भी पकवान का मजा देंगी।

स्त्री- अब तुम नटखटी करने लगे।

***

कानूनी कुमार

मि. कानूनी कुमार, एम. एल. ए. अपने ऑफिस में समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और रिपोर्टों का एक ढेर लिए बैठे हैं। देश की चिन्ताओं में उनकी देह स्थूल हो गयी हैं; सदैव देशोद्धार की फिक्र में पड़े रहते हैं। सामने पार्क हैं। उसमें कई लड़के खेल रहे हैं। कुछ परदेवाली स्त्रियाँ भी हैं, फेंसिग के सामने बहुत से भिखमंगे बैठे हैं, एक चायवाला एक वृक्ष के नीचे बेच रहा हैं।

कानूनी कुमार- (आप-ही-आप) देश का दशा कितनी खराब होती चली जाती हैं। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम हैं। (पार्क की ओर देखकर) आह! यह कोमल कुमार सिगरेट पी रहे हैं। शोक! महाशोक! कोई कुछ नहीं करता, कोई इसको रोकने की कोशिश भी नहीं करता। तम्बाकू कितनी जहरीली चीज हैं, बालकों को इससे कितनी हानि होती हैं, यह कोई नहीं जानता। (तम्बाकू की रिपोर्ट देखकर) ओफ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जितने बालक अपराधी होते है, उनमें से 75 प्रति सैकड़े सिगरेटबाज होते हैं। बड़ी भयंकर दशा है। हम क्या करें! लाख स्पीचें दो कोई सुनता ही नहीं। इसको कानून से रोकना चाहिए, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। (कागज पर नोट करता हैं) तम्बाकू-बहिष्कार-बिल पेश करूँगा। कौंसिल खुलते ही यह बिल पेश कर देना चाहिए।

(एक क्षण के बाद फिर पार्क की ओर ताकता हैं, और पहरेदार महिलाओं को घास पर बैठे देखकर लम्बी साँस लेता हैं)

गजब हैं, गजब हैं; कितना घोर अन्याय! कितना पाशविक व्यवहार!! यह कोमलांगी सुन्दरियाँ चादर से लिपटी हुई कितनी भद्दी, कितनी फूहड़ मालूम होती हैं। अभी तो देश का यह हाल हो रहा हैं। (रिपोर्ट देखकर) स्त्रियों की मृत्यु-संख्या बढ़ रही हैं। तपेदिक उछलता चला आता हैं, प्रसूत की बीमारी आँधी की तरह चढ़ी

आती हैं और हम है कि आँख बन्द किये पड़े हैं। बहुत जल्दी ऋषियों की यह भूमि, यह वीर-प्रसविनी जननी रसातल को चली जायगी, इसका कहीं निशान भी न रहेगा। गवर्नमेंट को क्या फिक्र! लोग कितने पाषाण हो गये हैं। आँखों के सामने यह अत्याचार देखते हैं और जरा भी नहीं चौकते। यह मृत्यु का शैथिल्य हैं। यहाँ भी कानूनी जरूरत हैं। एक ऐसा कानून बनना चाहिए, जिससे कोई स्त्री परदे में न रह सके। अब समय आ गया है कि इस विषय में सरकार कदम बढ़ावे। कानून की मदद के बगैर कोई सुधार नहीं हो सकता और यहाँ कानूनी मदद की जितनी जरूरत हैं, उतनी और कहाँ हो सकती हैं। माताओं पर देश का भविष्य अवलम्बित हैं। परदा-हटाव-बिल पेश होना चाहिए। जानता हूँ बड़ा विरोध होगा; लेकिन गवर्नमेंट को साहस से काम लेना चाहिए। ऐसे नपुंसक विरोध के भय से उद्धार के कार्य में बाधा नहीं पड़ती चाहिए। (कागज पर नोट करता हैं) यह बिल भी असेंबली के खुलते ही पेश कर देना होगा। बहुत विलम्ब हो चुका हैं, अब विलम्ब की गुंजाइश नहीं। वरना मरीज का अन्त हो जायगा।

(मसौदा बनाने लगता हैं- हेतु और उद्देश्य)

सहसा एक भिक्षुक सामने आकर पुकारता हैं- जय हो सरकार की, लक्ष्मी फूले-फलें!

कानूनी- हट जाओ, यू सुअर कोई काम क्यों नहीं करता?

भिक्षुक- बड़ा धर्म होगा सरकार, मारे भूख के आँखों-तले अँधेरा...

कानूनी- चुप रहो सुअर; हट जाओ सामने से, अभी निकल जाओ, बहुत दूर निकल जाओ।

(मसौदा छोड़कर फिर आप-ही-आप)

यह ऋषियों की भूमि आज भिक्षुको की भूमि हो रही हैं। जहाँ देखिए, वहाँ रेवड-के-रेवड़ और दल-के-दल भिखारी! यह गवर्नमेंट की लापरवाही की बरकत हैं।

इंग्लैंड मे कोई भिक्षुक भीख नहीं माँग सकता। पुलिस पकड़कर काल-कोठरी में बन्द कर दे। किसी सभ्य देश में इतने भिखमंगे नहीं हैं। यह पराधीन गुलाम भारत हैं, जहाँ ऐसी बातें इस बीसवीं सदी में भी सम्भव हैं। उफ! कितनी शक्ति का अपव्यय हो रहा हैं। (रिपोर्ट निकाल कर) ओह! 50 लाख! 50 लाख आदमी केवल भिक्षा माँगकर गुजर करते हैं और क्या ठीक हैं कि संख्या इसकी दुगनी न हो। यह पेशा लिखाना कौन पसन्द करता हैं। एक करोड़ से कम भिखारी इस देश में नही है। यह तो भिखारियों की बात हुई, जो द्वार-द्वार झोली लिये घूमते हैं। इसके उपरांत टीकाधारी, कोपीनधारी और जटाधारी समुदाय भी तो हैं, जिनकी संख्या कम-से-कम दो करोड़ होगी। जिस देश में इतने हरामखोर, मुफ्त का माल उड़ानेवाले; दूसरों की कमाई पर मोटे होने वाले प्राणी हो, उसकी दशा क्यों न इतनी हीन हो। आश्चर्य यही हैं कि अब तक यह देश जीवित कैसे हैं? (नोट करता हैं) एक बिल की सख्त जरूरत हैं, परन्तु पेश करना चाहिए - नाम हो 'भिखमंगा-बहिष्कार-बिल'। खूब जूतियाँ चलेंगी, धर्म के सूत्राधार खूब नाचेंगे, खूब गालियाँ देंगे, गवर्नमेंट भी कन्नी काटेगी; मगर सुधार का मार्ग तो कंटकाकीर्ण हैं ही। तीनों बिल मेरे ही नाम से हों, फिर देखिए, कैसी खलबली मचती हैं।

(आवाज आती हैं- चाय गरम! चाय गरम!! मगर ग्राहकों की संख्या बहुत कम हैं। कानूनी कुमार का ध्यान चायवाले की ओर आकर्षित हो जाता हैं)

कानूनी (आप-ही-आप) चायवाले की दुकान पर एक भी ग्राहक नहीं, कैसा मूर्ख देश हैं। इतनी बलवर्द्धक वस्तु और कौई ग्राहक नहीं। सभ्य देशों में पानी की जगह चाय पी जाती हैं। (रिपोर्ट देखकर) इंगलैंड में पाँच करोड़ पौंड की चाय जाती हैं। इंगलैंड वाले मूर्ख नहीं हैं। उनका आज संसार पर आधिपत्य हैं, इसमें चाय का कितना बड़ा भाग हैं, कौन इसका अनुमान कर सकता हैं? यहाँ बेचारा चायवाला खड़ा हैं और कोई उसके पास नहीं फटकता। चीनवाले चाय पी-पीकर स्वाधीन हो गये; मगर हम चाय न पियेंगे। क्या अकल हैं। गवर्नमेंट का सारा दोष हैं। कीटों से भरे हुए दूध के लिए इतना शोर मचता हैं; मगर चाय को कोई नहीं पूछता, जो कीटों से खाली, उत्तेजक और पुष्टिकारक हैं! सारे देश की मति

मारी गयी हैं। (नोट करता हैं) गवर्नमेंट से प्रश्न करना चाहिए। असेंबली खुलते ही प्रश्नो का ताँता बाँध दूँगा।

प्रश्न- क्या गवर्नमेंट बतायेगी कि गत पाँच सालों में भारतवर्ष में चाय की खपत कितनी बढ़ी हैं और उसका सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए गवर्नमेंट ने क्या कदम लिए हैं?

(एक रमणी का प्रवेश। कटे हुए केश आड़ी माँग, पारसी रेशमी साड़ी, कलाई पर घड़ी, आँखों पर ऐनक, पाँव में ऊँची एड़ी का लेडी शू, हाथ में एक बटुआ लटकाये हुए, साड़ी में बूच हैं, गले में मोतियों का हार।)

कानूनी- (हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज बोस! आप खूब आयी, कहिए, किधर की सैर हो रही हैं? अबकी तो 'आलोक' में आपकी कविता बड़ी सुन्दर थी। मैं तो पढ़कर मस्त हो गया। इस नन्हें-से हृदय में इतने भाव कहाँ से आ जाते हैं, मुझे आश्चर्य होता हैं। शब्द-विन्यास की तो आप रानी हैं। ऐसे-ऐसे चोट करने वाले भाव आपको कैसे सूझ जाते हैं।

मिसेज बोस- दिल जलता हैं, तो उसमें आप-से-आप धुएँ के बादल निकलते हैं। जब तक स्त्री-समाज पर पुरुषों का अत्याचार रहेगा, ऐसे भावों की कमी न रहेगी।

कानूनी- क्या इधर कोई नयी बात हो गयी?

बोस- रोज ही तो होती रहती हैं। मेरे लिए डॉक्टर बोस की आज्ञा नहीं कि किसी से मिलने जाओ, या कहीं सैर करने जाओ। अबकी कैसी गरमी पड़ी हैं कि सारा रक्त जल गया, पर मैं पहाड़ों पर न जा सकी। मुझसे यह अत्याचार यह गुलामी नही सही जाती।

कानूनी- डॉक्टर बोस खुद भी तो पहाड़ो पर नहीं गये।

बोस- वह न जायँ, उन्हें धन की हाय-हाय पड़ी हैं। मुझे क्यों अपने साथ लिए

मरते हैं? वह क्लब में नहीं जाना चाहते, उनका समय रुपये उगलता हैं, मुझे क्यों रोकते हैं! वह खद्दर पहनें, मुझे क्यों पसन्द के कपड़े पहनने से रोकते हैं! वह अपनी माता और भाईयों के गुलाम बने रहे, मुझे क्यों उनके साथ रो-रोकर दिन काटने पर मजबूर करते हैं। मुझसे यह बर्दाश्त नहीं हो सकता। अमेरिका में एक कटुवचन कहने पर सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता हैं। पुरुष जरा देर से घर आया और स्त्री ने तलाक दिया। वह स्वाधीनता देश हैं, वहाँ लोगों के विचार स्वाधीन हैं। यह गुलामों का देश हैं, यहाँ हर एक बात में उसी गुलामी की छाप हैं। मैं अब डॉक्टर बोस के साथ नहीं रह सकती। नाकों में दम आ गया। इसका उत्तरदायित्व उन्हीं लोगों पर हैं जो समाज के नेता और व्यवस्थापक बनते हैं। अगर आप चाहते हैं कि स्त्रियों को गुलाम बनाकर स्वाधीन हो जायँ, तो यह अनहोनी बात हैं। जब तक तलाक का कानून न जारी होगा, आपका स्वराज्य आकाश-कुसुम ही रहेगा। डॉक्टर बोस को आप जानते हैं, धर्म में उनकी कितनी श्रद्धा हैं! खब्त कहिए। मुझे धर्म के नाम से घृणा हैं। इसी धर्म ने स्त्री-जाति को पुरुष की दासी बना दिया हैं। मेरा बस चले तो मैं सारे धर्म की पोथियो को उठाकर परनाले में फैंक दूँ।

(मिसेज एयर का प्रवेश। गोरा रंग, ऊँचा कद, ऊँचा गाउन, गोली हाँडी की-सी टोपी, आँखों पर ऐनक, चेहरे पर पाउडर, गालों और ओठों पर सूर्ख पेंट, रेशमी जुर्राबें और ऊँची एड़ी के जूते।)

कानूनी -(हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज एयर! आप खूब आयीं। कहिए किधर की सैर हो रही हैं। 'आलोक' में आपका लेख अत्यन्त सुन्दर था, मैं तो पढ़कर ढंग रह गयाय़

मिसेज ऐयर - (मिसेज बोस की ओर मुसकराकर) ढंग ही तो रह गये या कुछ किया भी। हम स्त्रियाँ अपना कलेजा निकालकर रख दें; लेकिन पुरुषों का दिन न पसीजेगा।

बोस- सत्य! बिलकुल सत्य।

ऐयर- मगर इस पुरुष-राज का बहुत जल्द अन्त हुआ जाता हैं। स्त्रियाँ अब कैद में नहीं रह सकतीं। मि. ऐयर की सूरत मैं नहीं देखना चाहती।

(मिसेज बोस मुँह फेर लेती हैं)

कानूनी- (मुसकराकर) मि. ऐयर तो खूबसूरत आदमी हैं।

लेडी ऐयर- उनकी सूरत उन्हें मुबारक रहे। मै खूबसूरत पराधीनता नहीं चाहती, बदसूरत स्वाधीनता चाहती हूँ। वह मुझे अबकी जबरदस्ती पहाड़ पर ले गये। वहाँ की शीत मुझसे नहीं सही जाती, कितना कहा कि मुझे मत ले जाओ; मगर किसी तरह न माने। मैं किसी के पीछे-पीछे कुतिया की तरह नही चलना चाहती।

(मिसेज बोस उठकर खिड़की के पास चली जाती हैं)

कानूनी- अब मुझे मालूम हो गया कि तलाक का बिल असेम्बली में पेश करना हैं पड़ेगा।

ऐयर- खैर, आपको मालूम तो हुआ; मगर शायद कयामत में।

कानूनी- नहीं मिसेज ऐयर, अबकी छुट्टियों के बाद ही यह बिल पेश होगा और धूमधाम के साथ पेश होगा। बेशक पुरुषों का अत्याचार बढ़ रहा हैं। जिस प्रथा का विरोध आप दोनों महिलाएँ कर रहीं हैं, वह अवश्य हिन्दू समाज के लिए घातक हैं। अगर हमें सभ्य बनना हैं, तो सभ्य देशों के पद-चिह्नो पर चलना पड़ेगा। धर्म के ठीकेदार चिल्ल-पों मचायेंगे, कोई परवाह नही। उनकी खबर लेना आप दोनों महिलाओं का काम होगा। ऐसा बनाना कि मुह न दिखा सकें।

लेडी ऐयर- पेशगी धन्यवाद देती हूँ। (हाथ मिलाकर चली जाती हैं।)

मिसेज बोस- (खिड़की के पास से आकर) आज इसके घर में घी का चिराग जलेगा। यहाँ से सीधे बोस के पास गयी होगी! मैं भी जाती हूँ।

(चली जाती हैं)

कानूनी कुमार एक कानून की किताब उठाकर उसमें तलाक की व्यवस्था देखने लगता हैं कि मि. आचार्य आते हैं। मुँह साफ, एक आँख पर ऐनक, खाली आधे बाँह का शर्ट, निकर, ऊनी मोचे, लम्बे बूट। पीछे एक टेरियर कुत्ता भी हैं।

कानूनी- हल्लो मि. आचार्य ! आप खूब आये, आज किधर की सैर हो रही हैं। होटल का क्या हाल हैं।

आचार्य- कुत्ते की मौत मर रहा हूँ। इतना बढिया भोजन, इतना साफ-सुथरा मकान, ऐसी रोशनी, इतना आराम फिर भी मेहमानों का दुर्भिक्ष। समझ में नहीं आता, अब कितना निर्ख घटाऊँ। इन दामों अलग घर में मोटा खाना भी नसीब हो सकता। उस पर सारे जमाने की झंझट, कभी नौकर का रोना, कभी दूधवाले का रोना, कभी धोबी का रोना, कभी मेहतर का रोना; यहाँ सारे जंजाल से मुक्ति हो जाती हैं। फिर भी आधे कमरे खाली पड़े हैं।

कानूनी- यह तो आपने बुरी खबर सुनायी।

आचार्य- पच्छिम में क्यों इतना सुख और शान्ति हैं, क्यों इतना प्रकाश और धन हैं, क्यों इतनी स्वाधीनता और बल हैं। इन्हीं होटलों के प्रसाद से। होटल पश्चिमी गौरव का मुख्य अंग हैं, पश्चिमी सभ्यता का प्राण हैं। अगर आप भारत को उन्नति के शिखर पर देखना चाहते हैं, तो होटल-जीवन का प्रचार कीजिए। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं हैं। जब तक छोटी-छोटी घरेलू चिन्ताओं से मुक्त न हो जायँगे, आप उन्नति कर ही नहीं सकते हैं। राजो, रईसो को अलग घरों में रहने दीजिए, वह एक की जगह दस खर्च कर सकते हैं। मध्यम श्रेणीवालों के लिए होटल के प्रचार में ही सब कुछ हैं। हम अपने सारे मेहमानों की फिक्र अपने सिर लेने को तैयार हैं, फिर भी जनता की आँखें नही खुलती। इन मूर्खो की आँखे उस वक्त तक न खुलेंगी, जब तक कानून न बन जाय।

कानूनी- (गम्भीर भाव से) हाँ, मै सोच रहा हूँ। जरूर कानून से मदद लेनी चाहिए। एक ऐसा कानून बन जाय, कि जिन लोगों की आय 500) से कम हो, होटलों में रहे। क्यों?

आचार्य- आप अगर यह कानून बनवा दे तो आनेवाली संतान आपको अपना मुक्तिदाता समझेगी। आप एक कदम में देश को 500 वर्ष की मंजिल तय करा देंगे।

कानूनी- तो लो, अबकी यह कानून भी असेम्बली खुलते ही पेश कर दूँगा। बड़ा शोर मचेगा। लोग देशद्रोही और जाने क्या-क्या कहेंगे, पर इसके लिए तैयार हूँ। कितना दुःख होता हैं, जब लोगों को अहिर के द्वार पर लुटिया लिये खड़ा देखता हूँ। स्त्रियों का जीवन तो नरक-तुल्य हो रहा हैं। सुबह से दस-बारह बजे रात तक घर के धन्धों से फुरसत नहीं। कभी बरतन माँजो, कभी भोजन बनाओ, कभी झाड़ू लगाओ। फिर स्वास्थ्य कैसे बने, जीवन कैसे सुखी हो, सैर कैसे करें, जीवन के आमोद-प्रमोद का आनन्द कैसे उठाये, अध्ययन कैसे करें? आपने खूब कहा, एक कदम में 500 सालों की मंजिल पूरी हुई जाती हैं।

आचार्य- तो अबकी बिल पेश कर दीजिएगा?

कानूनी- अवश्य!

(आचार्य हाथ मिलाकर चला जाता हैं)

कानूनी कुमार खिड़की के सामने खड़ा होकर 'होटल-प्रचार-बिल' का मसविदा सोच रहा हैं। सहसा पार्क में एक स्त्री सामने से गुजरती हैं। उसकी गोद में एक बच्चा हैं, दो बच्चे पीछे-पीछे चल रहे हैं और उदर के उभार से मालूम होता हैं कि गर्भवती हैं। उसका कृश शरीर, पीला मुख और मन्द गति देखकर अनुमान होता हैं कि उसका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ हैं और इस भार का वहन करना उसे कष्टप्रद

हैं।

कानूनी कुमार- (आप-ही-आप) इस समाज का, इस देश का और इस जीवन का सत्यानाश हो, जहाँ रमणियों को केवल बच्चा जनने की मशीन समझा जाता हैं। इस बेचारी को जीवन का क्या सुख! कितनी ही ऐसी बहनें इसी जंजाल में फँसकर 32, 35 की अवस्था में जब कि वास्तव में जीवन को सुखी होना चाहिए, रुग्ण होकर संसार-यात्रा समाप्त कर देती हैं। हा भारत! यह विपत्ति तेरे सिर से कब टलेगी? संसार में ऐसे-ऐसे पाषाण हृदय मनुष्य पड़े हुए हैं, जिन्हें इस दुखियारियों पर जरा भी दया नही आता। ऐसे अन्धे, ऐसे पाषाण , ऐसे पाखंड़ी समाज को, जो स्त्री को अपनी वासनाओं की वेदी पर बलिदान करता हैं, कानून के सिवा और किस विधि से सचेत किया जाय? और कोई उपाय नहीं हैं। नर-हत्या का जो दंड हैं, वही दंड ऐसे मनुष्यों को मिलना चाहिए। मुबारक होगा वह दिन, जब भारत में इस नाशिनी प्रथा का अन्त हो जायगा- स्त्री का मरण, बच्चो का मरण और जिस समाज का जीवन ऐसी सन्तानों पर आधारित हो, उसका मरण! ऐसे बदमाशों को क्यो न दंड दिया जाय? कितने अन्धे लोग हैं। बेकारी का यह हाल कि भर-पेट किसी को रोटियाँ नहीं मिलती, बच्चों को दूध स्वप्न में नही मिलता और ये अन्धे है कि बच्चे-पर-बच्चे पैदा किये जाते हैं। 'सन्तान-निग्रह-बिल' की कितनी जरूरत हैं, इस देश को उतनी और किसी कानून की नहीं। असेम्बली खुलते ही यह बिल पेश करूँगा। प्रलय हो जायगा, यह जानता हूँ, पर और उपाय क्या हैं? दो बच्चों से ज्यादा जिसके हो, उसे कम-से-कम पाँच वर्ष की कैद, उसमें पाँच महीने से कम काल-कोठरी न हो। जिसकी आमदनी सौ रुपये से कम हो, उसे संतानोत्पत्ति का अधिकार ही न हो। (मन में बिल के बाद की अवस्था का आनन्द लेकर) कितना सुखमय जीवन हो जायगा। हाँ, एक दफा यह भी रहे कि एक संतान के बाद कम-से-कम सात वर्ष तक दूसरी सन्तान न आने पावे। तब इस देश और सन्तोष का साम्राज्य होगा, तब स्त्रियों और बच्चों के मुँह पर खून की सुर्खी नजर आयेगी, तब मजबूत हाथ-पाँव और मजबूत दिल और जिगर के पुरुष उत्पन्न होगे।

(मिसेज कानूनी कुमार का प्रवेश)

कानूनी कुमार जल्दी से रिपोर्टो और पत्रों को समेट लेता हैं और एक उपन्याय खोलकर बैठ जाता हैं।

मिसेज- क्या कर रहे हो? वही धुन!

कानूनी- उपन्यास पढ़ रहा हूँ।

मिसेज- तुम सारी दुनिया के लिए कानून बनाते हो, एक कानून मेरे लिए भी बना दो। इससे देश का जितना बड़ा उपकार होगा, उतना और किसी कानून से न होगा। तुम्हारा नाम अमर हो जायगा और घर-घर तुम्हारी पूजा होगी!

कानूनी- अगर तुम्हारा ख्याल हैं कि मैं नाम और यश के लिए देश की सेवा कर रहा हूँ, तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि तुमने मुझे रत्ती-भर भी नहीं समझा।

मिसेज- नाम के लिए काम कोई बुरा काम नहीं हैं, तुम्हे यश की आकांक्षा हो, तो मैं उसकी निन्दा करूँगी, भूलकर भी नहीं। मैं तुम्हे एक ऐसी तदबीर बता दूँगी, जिससे तुम्हें इतना यश मिलेगा कि तुम ऊब जाओगे। फूलों की इतनी वर्षा होगी कि तुम उसके नीचे दब जाओगे। गले में इतने हार पड़ेगे कि तुम गरदन सीधी न कर सकोगे।

कानूनी- (उत्सुकता को छिपाकर) कोई मजाक की बात होगी। देखा मिन्नी, काम करने वाले आदमी के लिए इससे बड़ी दूसरी बाधा नहीं हैं कि उसके घरवाले उसके काम की निन्दा करते हो। मैं तुम्हारे इस व्यवहार से निराश हो जाता हूँ।

मिसेज- तलाक का कानून तो बनाने जा रहे हो, अब क्या डर हैं।

कानूनी- फिर वही मजाक! मै चाहता हूँ तुम इस प्रश्नो पर गम्भीर विचार करो।

मिसेज- मैं बहुत गम्भीर विचार करती हूँ! सच मानो। मुझे इसका दुख हैं कि तुम मेरे भावों को नहीं समझते। मैं इस वक्त तुमसे जो बात करने जा रही हूँ, उसे मै देश की उन्नति के लिए आवश्यक ही नहीं, परमावश्यक समझती हूँ। मुझे इसका पक्का विश्वास हैं।

कानूनी- पूछने की हिम्मत तो नहीं पड़ती। (अपनी झेंप मिटाने के लिए हँसता हैं।)

मिसेज - मैं खुद ही कहने आयीं हूँ। हमारा वैवाहिक-जीवन कितना लज्जास्पद हैं; तुम खूब जानते हो। रात-दिन रगड़ा-झगड़ा मचा रहता हैं। कहीं पुरुष स्त्री पर हाथ साफ कर लेता हैं, कहीं स्त्री पुरुष की मूँछों के बाल नोचती हैं। हमेशा एक-न-एक गुल खिला ही करता हैं। कहीं एक मुँह फुलाये बैठा हैं, कहीं दूसरा घर छोड़कर भाग जाने की धमकी दे रहा हैं। कारण जानते हो क्या हैं। कभी सोचा हैं? पुरुषों की रसिकता और कृपणता! यहीं दोनों ऐब मनुष्यो के जीवन को नरक-तुल्य बनाये हुए हैं। जिधर देखो, अशान्ति हैं, विद्रोह हैं, बाधा हैं। साल में लाखों हत्याएँ इन्हीं बुराईयों के कारण हो जाती हैं, लाखों स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं, पुरुष मद्य सेवन करने लगते हैं, यह बात हैं कि नहीं?

कानूनी- बहुत-सी बुराईयाँ ऐसी हैं, जिन्हें कानून नहीं रोक सकता।

मिसेज- (कहकहा मारकर) अच्छा, क्या आप भी कानून की अक्षमता स्वीकार करते हैं? मैं यह नहीं समझती थी। मैं तो कानून को ईश्वर सो ज्यादा सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान समझती हूँ।

कानूनी- फिर तुमने मजाक शुरू किया।

मिसेज- अच्छा, लो कान पकड़ती हूँ। अब न हूँसँगी। मैने उन बुराईयों को रोकने के लिए एक कानून सोचा हैं। उसका नाम होगा- 'दम्पति-सुख-शान्ति बिल' उसकी दो मुख्य धाराएँ होंगी और कानूनी बारीकियाँ तुम ठीक कर लेना। एक धारा

होगी कि पुरुष आमदनी का आधा बिना कान-पूँछ हिलाये स्त्री को दे दे; अगर न दे, तो पाँच साल कठिन कारावास और पाँच महीने काल-कोठरी। दूसरी धारा होगी- पन्द्रह से पचास तक के पुरुष घर से बाहर न निकलने पावें, अगर कोई निकले, तो दस साल कारावास और दस महीने काल-कोठरी। बोलो मंजूर हैं।

कानूनी- (गम्भीर होकर) असम्भव, तुम प्रकृति को पलट देना चाहती हो। कोई पुरुष घर में कैदा बनकर रहना स्वीकार न करेगा।

मिसेज- वह करेगा और उसका बाप करेगा। पुलिस के डंडे के जोर से करायेगी। न करेगा, तो चक्की पीसनी पड़ेगी। करेगा कैसे नहीं। अपनी स्त्री को घर की मुर्गी समझना और दूसरी स्त्रियों के पीछे दौड़ना, क्या खालाजी का घर हैं? तुम अभी इस कानून को अस्वाभाविक समझते हो। मत धबराओ। स्त्रियों का अधिकार होने दो। यह कानून न बन जावे, तो कहना कि कोई कहता था। स्त्री एक-एक पैसे के लिए तरसे और आप गुलछर्रे उड़ाए। दिल्लगी हैं। आधी आमदनी स्त्री को दे देनी पड़ेगी, जिसका उससे कोई हिसाब न पूछा जा सकेगा।

कानूनी- तुम मानव-समाज को मिट्टी का खिलौना समझती हो।

मिसेज- कदापि नहीं। मैं यही समझती हूँ कि कानून सब कुछ कर सकता हैं। मनुष्य का स्वभाव भी बदल सकता हैं।

कानूनी- कानून यह नहीं कर सकता।

मिसेज- कर सकता हैं?

कानूनी- नहीं कर सकता हैं।

मिसेज- कर सकता हैं; अगर जबरदस्ती लड़कों को स्कूल भेज सकता हैं; अगर वह जबरदस्ती विवाह की उम्र नियत कर सकता हैं; अगर वह जबरदस्ती बच्चों को टीका लगवा सकता हैं, तो जबरदस्ती पुरुषों को घर में बन्द भी कर सकता हैं,

उसकी आमदनी को आधा स्त्रियों को दिला सकता हैं। तुम कहोगे, पुरुष को कष्ट होगा। जबरदस्ती जो काम कराया जाता हैं, उसमें करने वाले को कष्ट होता हैं। तुम उस कष्ट का अनुभव नहीं करते; इसीलिए तुम्हें नहीं अखरता। मैं यह नहीं कहती कि सुधार जरूरी हैं। मैं भी शिक्षा का प्रचार चाहती हूँ, मैं भी बाल-विवाह बन्द करना चाहती हूँ, मैं भी चाहती हूँ कि बीमारियाँ न फैलें, लेकिन कानून बनाकर जबरदस्ती यह सुधार नहीं करना चाहती। लोगों मे शिक्षा औऱ जागृति फैलाओ, जिसमें कानूनी भय के बगैर वह सुधार हो जाय। आपसे कुर्सी तो छोड़ी जाती नहीं, घर से निकला जाता नहीं, शहरों की विलासिता को एक दिन के लिए भी नहीं त्याग सकते और सुधार करने चले हैं आप देश का! इस सुधार न होगा। हाँ, पराधीनता की बेड़ी और भी कठोर हो जायगी।

(मिसेज कुमार चली जाती हैं, और कानूनी कुमारर अव्यवस्थित-चित्त-सा कमरे में टहलने लगता हैं।)

***

लॉटरी

जल्दी से मालदार हो जाने की हवस किसे नहीं होती? उन दिनों जब लॉटरी के टिकट आये, तो मेरे दोस्त, बिक्रम के पिता, चचा, अम्माँ और भाई, सभी ने एक-एक टिकट खरीद लिया। कौन जाने, किसकी तकदीर जोर करे? किसी के नाम आये, रुपया रहेगा तो घर में ही।

मगर विक्रम को सब्र न हुआ। औरों के नाम रुपयें आयेंगे, फिर उसे कौन पूछता हैं? बहुत होगा, दस पाँच हजार उसे दे देंगे। इतने रुपयों में उसका क्या होगा? उसकी जिन्दगी में बड़े-बड़े मंसूबे थे। पहले तो उसे सम्पूर्ण जगत की यात्रा करनी थी, एक-एक कोने की। पीरू और ब्राजील और टिम्बकटू और होनोलूलू, ये सब उसके प्रोग्राम में थे। वह आँधी की तरह महीने-दो-महीने उड़कर लौट आनेवालों में न था। वह एक-एक स्थान में कई-कई दिन ठहरकर वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का अध्ययन करना और संसार-यात्रा का एक वृहद् ग्रंथ लिखना चाहता था। फिर उसे एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाना था, जिसमें दुनिया-भर की उत्तम रचनाएँ जमा की जायँ। पुस्तकालय के लिए वह दो लाख तक खर्च करने को तैयार था, बँगला, कार और फर्नीचर तो मालूमी बातें थी। पिता या चचा के नाम रुपये आ जाये, तो पाँच हजार से ज्यादा का डौल नहीं, अम्माँ के नाम आये, तो बीस हजार मिल जायँगे; लेकिन भाई साहब के नाम आ गये, तो उसके हाथ धेला भी न लगेगा। वह स्वाभिमानी था। घर वालों से खैरात या पुरस्कार के रूप में कुछ लेने का बात उसे अपमान-सी लगती थी। कहा करता था- भाई, किसी के सामने हाथ फैलाने से तो किसी गड्ढे में डूब मरना अच्छा हैं। जब आदमी अपने लिए संसार में कोई स्थान न निकाल सके, तो यहाँ से प्रस्तान कर जाय?

वह बहुत बेकरार था। घर में लॉटरी-टिकट के लिए उसे कौन रुपयें देगा और वह माँगे भी तो कैसे? उसने बहुत सोच-विचार कर कहा- क्यों न हम तुम साझे में

एक टिकट ले लें?

तजवीज मुझे भी पसन्द आयी। मैं उन दिनों स्कूल-मास्टर था। बीस रुपये मिलते थे। उसमें बड़ी मुश्किल से गुजर होती थी। दस रुपये क टिकट खरीदना मेरे लिए सुफेद हाथी था। हाँ, एक महीना दूध, घी, जलपान और ऊपर के सारे खर्च तोड़कर पाँच रुपये की गुंजाइश निकल सकती थी। फिर भी जी डरता था। कहीं से कोई बलाई रकम मिल जाय, तो कुछ हिम्मत बढ़े।

विक्रम ने कहा- कहो तो अपनी अँगूठी बेच डालूँ? कह दूँगा, उँगली से फिसल पड़ी।

अँगूठी दस रुपये से कम न थी। उसमें पूरा टिकट आ सकता था; अगर कुछ खर्च किये बिना ही टिकट में आधा-साझा हुआ जाता हैं, तो क्या बुरा हैं?

सहसा विक्रम फिर बोला- लेकिन भई, तुम्हें नकद देने पड़ेगे। मैं पाँच रुपये नकद लिये बगैर साझा न करूँगा।

अब मुझे औचित्य का ध्यान आ गया। बोला- दोस्त, यह बुरी बात हैं, चोरी खुल जायेगी, तो शर्मिन्दा होना पड़ेगा और तुम्हारे साथ मुझ पर भी डाँट पड़ेगी।

आखिर यह तय हुआ कि पुरानी किताबे किसी सेकेन्ड हैंड की किताबों की दूकान पर बेच डाली जायँ और उस रुपये से टिकट लिया जाय। किताबों से ज्यादा बेजरूरत हमारे पास और कोई चीज न थी। हम दोनो साथ ही मैट्रिक पास हुए थे और यह देखकर कि जिन्होंने डिग्रियाँ ली, अपनी आँखे फोड़ी और घर के रुपये बरबाद किये, वह भी जूतियाँ चटका रहे थे, हमने वही हाल्ट कर दिया। मैं स्कूल मास्टर हो गया और बिक्रम मटरगश्ती करने लगा? हमारी पुरानी किताबे अब दीमकों के सिवा हमारे किसी काम की न थी। हमसे जितना चाटते बना, चाटा; उसका सत्त निकाल लिया। अब चूहे चाटें या दीमक, हमें परवाह न थी। आज हम दोनों ने उन्हें कूडेखाने से निकाला और झाड़-पोंछ कर एक बड़ा-सा गट्ठर बाँधा। मास्टर था, किसी बुकसेलर की दूकान पर किबात बेचते हुए झेंपता था।

मुझे सभी पहचानते थे; इसलिए यह खिदमत विक्रम के सुपुर्द हुई और वह आध घंटे में दस रुपयें का एक नोट लिये उछलता-कूदता आ पहुँचा। मैने उसे इतना प्रसन्न कभी न देखा था। किताबें चालीस रुपये से कम की न थी; पर यह दस रुपये उस वक़्त में हमें जैसे पड़े हुए मिले। अब टिकट में आधा साझा होगा। दस लाख की रकम मिलेगी। पाँच लाख मेरे हिस्से में आयेंगे, पाँच बिक्रम के। हम अपने इसी में मग्न थे।

मैने संतोष भाव दिखाकर कहा- पाँच लाख भी कुछ कम नहीं होते जी।

बिक्रम इतना संतोषी न था। बोला- पाँच लाख क्या, हमारे लिए तो इस वक़्त पाँच सौ भी बहुत हैं भाई, मगर जिन्दगी का प्रोग्राम तो बदलना पड़ गया। मेरा यात्रावाली स्कीम तो टल नहीं सकती। हाँ, पुस्तकालय गायब हो गया।

मैने आपत्ति की- आखिर यात्रा में तुम दो लाख से ज्यादा तो न खर्च करोगे?

'जी नहीं, उसका बजट हैं साढे तीन लाख का। सात वर्ष का प्रोग्राम हैं। पचास हजार रुपये साल ही तो हुए?'

'चार हजार महीना कहो। मैं समझता हूँ, दो हजार में तुम बड़े आराम से रह सकते हो।'

विक्रम ने गर्म होकर कहा- मैं शान से रहना चाहता हूँ; भिखारियों की तरह नहीं

'दो हजार में भी तुम शान से रह सकते हो।'

'जब तक आप अपने हिस्से में से दो लाख मुझे न दे देंगे, पुस्तकालय न बन सकेगा।'

'कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारा पुस्तकालय शहर में बेजोड़ हो?'

'मैं तो बेजोड़ ही बनवाऊँगा।'

'इसका तुम्हें अख्तियार हैं, लेकिन मेरे रुपयें में से तुम्हें कुछ न मिल सकेगा। मेरी जरूरतें देखो। तुम्हारे घर में काफी जायदाद हैं। तुम्हारे सिर कोई बोझ नहीं, मेरे सिर तो सारी गृहस्थी तो बोझ हैं। दो बहनों का विवाह हैं, दो भाईयों की शिक्षा हैं. नया मकान बनवाना हैं। मैं तो निश्चय किया कर लिया हैं कि सब रुपये सीधे बैंक में जमा कर दूँगा। उनके सूद से काम चलाऊँगा। कुछ ऐसी शर्तें लगा दूँगा, कि मेरे बाद भी कोई इस रकम में हाथ न लगा सके।'

विक्रम ने सहानुभूति के भाव से कहा- हाँ, ऐसी दशा में तुमसे कुछ माँगना अन्याय हैं। खैर, मैं ही तकलीफ उठा लूँगा; लेकिन बैंक के सूद की दर तो बहुत गिर गयी हैं।

हमने कई बैंकों में सूद की दर देखी, अस्थायी कोष में भी; सेविंग बैंक की भी। बेशक दर बहुत कम थी। दो-ढाई रुपयें सैकडे ब्याज पर जमा करना वयर्थ हैं। क्यों न लेन-देन का कारोबार शुरू किया जाय? विक्रम भी अभी यात्रा पर न जाएगा। दोनो के साझे में कोठी चलेगी, जब कुछ धन जमा हो जाएगा, तब वह यात्रा करेगा। लेन-देन मे सूद भी अच्छा मिलेगा और अपना रौब-दाब भी रहेगा। हाँ, जब तक अच्छी जमानत न हो, किसी को रुपया न देना चाहिए; आसामी कितना ही मातबर क्यों न हो। और जमानत पर रुपये दे ही क्यों? जायदाद रेहन लिखाकर रुपये देंगे। फिर तो कोई खटका न रहेगा।

यह मंजिल भी तय हुई। अब यह प्रश्न उठा कि टिकट पर किसका नाम रहे। विक्रम ने अपना नाम रखने के लिए बड़ा आग्रह किया। अगर उसका नाम न रहा, तो वह टिकट भी न लेगा। मैने कोई उपाय न देखकर मंजूर कर लिया और बिना किसी लिखा-पढ़ी के, जिससे आगे चलकर मुझे बड़ी परेशानी हुई!

एक-एक करके इन्तजार के दिन काटने लगे। भोर होते ही हमारी आँखे कैलेंडर पर जाती। मेरा मकान विक्रम के मकान से मिला हुआ था। स्कूल जाने के पहले और स्कूल से आने के बाद हम दोनो साथ बैठकर अपने-अपने मंसूबे बाँधा करते और इस तरह सायँ-सायँ कि कोई सुन न ले। हम अपने टिकट खरीदने का रहस्य छिपाये रखना चाहते थे। वह रहस्य जब सत्य का रूप धारण कर लेगा, उस वक़्त लोगों को कितना विस्मय होगा! उस दृश्य का नाटकीय आनन्द हम नहीं छोड़ना चाहते थे।

एक दिन बातों-बातों में विवाह का जिक्र आ गया। विक्रम ने दार्शनिक गम्भीरता से कहा- भई, शादी-वादी का जंजाल तो मैं नहीं पालना चाहता। व्यर्थ का चिन्ता और हाय-हाय! पत्नी का नाच बरदारी में ही बहुत से रुपये उड़ जायँगे।

मैंने इसका विरोध किया- हाँ, यह तो ठीक हैं; लेकिन जब तक जीवन के सुख-दुःख का कोई साथी न हो; जीवन का आनन्द ही क्या? मैं तो विवाहित जीवन से विरक्त नहीं हूँ। हाँ; साथी ऐसा चाहता हूँ जो अन्त तक साथ रहे और ऐसा साथी पत्नी के सिवा दूसरा नहीं हो सकता।

विक्रम जरूरत से ज्यादा तुनुकमिजाजी से बोला- खैर, अपना-अपना दृष्टिकोण हैं। आपको बीवी मुबारकर और कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चलना तथा बच्चों को संसार की सबसे बड़ी विभूति और ईश्वर की सबसे बड़ा समझना मुबारक। बन्दा तो आजाद रहेगा, अपने मजे से चाहा और जब चाहा उड़ गये और जब चाहा घर आ गये। यह नहीं कि हर वक़्त एक चौकीदार आपके सिर पर सवार हो। जरा-सी देर हुई घर आने में और फौरन जवाब तलब हुआ- कहाँ थे अब तक? आप बाहर निकले और फौरन जवाब सवाल हुआ- कहाँ जाते हो? और जो कहीं दुर्भाग्य से पत्नीजी भी साथ हो गयी, तब तो डूब मरने के सिवा आपके लिए कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। न भैया, मुझे आपसे जरा-भी सहानुभूति नहीं। बच्चे को जरा-सा जुकाम हुआ और आप बेतहाशा दौड़े चले जा रहे हैं होमियोपैथिक डाक्टर के पास। जरा उम्र खिसकी और लौड़े मनाने लगे कि कब

आप प्रस्थान करे और वह गुलछर्रे उठायें। मौका मिला तो आपको जहर खिला दिया और मशहुर किया कि आपको कालरा हो गया था। मैं इस जंजाल में नहीं पड़ता।

कुन्ती आ गयी। वह विक्रम की छोटी बहन थी, कोई ग्यारह साल की। छठे में पढ़ती थी और बराबर फेल होती थी। बड़ी चिबिल्ली, बड़ी शोख। इतने धमाके से द्वार खोला कि हम दोनों चौककर उठ खड़े हुए।

विक्रम ने बिगड़कर कहा- तू बड़ी शैतान हैं कुन्ती, किसने तुझे बुलाया यहाँ?

कुन्ती ने खुफिया पुलिस की तरह कमरे में नजर दौड़ाकर कहा- तुम लोग हरदम यहाँ किवाड़ बन्द किये बैठे क्या बाते किया करते हो? जब देखो, यहीं बैठे हो। न कहीं घूमने जाते हो, न तमाशा देखेने; कोई जादू मन्तर जगाते होगे!

विक्रम ने उसकी गरदन पकड़कर हिलाते हुए कहा- हाँ एक मन्तर जगा रहे हैं, जिसमें तुझे ऐसा दूल्हा मिले, जो रोज गिनकर पाँच हजार हंटर जमाये सड़ासड़।

कुन्ती उसकी पीठ पर बैठकर बोली- मैं ऐसे दूल्हे सो ब्याह करूँगी, जो मेरे सामने खड़ा पूँछ हिलाता रहेगा। मैं मिठाई के दाने फेंक दूँगी और वह चाटेगा। जरा भी चीं-चपड़ करेगा, तो काम गर्म कर दूँगी। अम्माँ को लॉटरी के रुपये मिलेंगे, तो पचास हजार मुझे दे दें। बस, चैन करूँगी। मैं दोनो वक़्त ठाकुरजी से अम्माँ के लिए प्रार्थना करती हूँ। अम्माँ कहती हैं, कुवाँरी लड़कियों की दुआ कभी निष्फल नहीं होती। मेरा मन तो कहता हैं, अम्माँ को रुपयें जरूर मिलेंगे।

मुझे याद आया, एक बार मैं अपने ननिहाल देहात में गया था, तो सूखा पड़ा हुआ था। भादों का महीना आ गया था; मगर पानी की बूँद नहीं। सब लोगों ने चन्दा करके गाँव की कुवाँरियों की दावत की थी और उसके तीसरे ही दिन मूसलाधार वर्षा हुई थी। अवश्य ही कुवाँरियों की दुआ में असर होता हैं।

मैं विक्रम को अर्थपूर्ण आँखों से देखा, विक्रम ने मुझे। आँखों ही में हमने सलाह कर ली और निश्चय भी कर लिया। विक्रम ने कुन्ती से कहा- अच्छा, तुमझे एक बात कहें, किसी से कहेगी तो नहीं? नहीं तू तो बड़ी अच्छी लड़की हैं, किसी से न कहेगी। मै अबकी खूब पढ़ाऊँगा और पास करा दूँगा। बात यह हैं कि हम दोनों ने भी लॉटरी का टिकट लिया हैं। हम लोगों के लिए भी ईश्वर से प्रार्थना किया कर। अगर हमें रुपये मिलें, तो तेरे लिए अच्छे-अच्छे गहने बनवा देंगे। सच!

कुन्ती को विश्वास न आया। हमने कसमें खायी। वह नखरें करने लगी। जब हमने उसे सिर से पाँव तक सोने और हीरे से मढ़ देने की प्रतिज्ञा की, तब वह हमारे लिए दुआ करने करने पर राजी हुई।

लेकिन उसके पेट में मनों मिठाई पच सकती थी; वह जरा-बात न पची। सीधे अन्दर भागी और एक क्षण में वह खबर फैल गयी। अब जिसे देखिए, विक्रम को डाँट रहा हैं, अम्माँ भी, चचा भी, पिता भी- केवल विक्रम की शुभ-कामना से या और किसी भाव से - बैठे-बैठे तुम्हें हिमाकत ही सूझती हैं। रुपये लेकर पानी में फेंक दिये। घर में इतने आदमियों ने तो टिकट लिया ही था, तुम्हें लेने की क्या जरूरत थी? क्या तुम्हें उसमें से कुछ न मिलते? और तुम भी मास्टर साहब, घोघा हो। लड़के को अच्छी बातें क्या सिखाओगे, उसे और चौपट किये डालते हो।

विक्रम तो लाडला बेटा था। उसे और क्या कहते। कही रूठकर एक-दो जून खाना न खाये, तो आफत ही आ जाय। मुझ पर सारा गुस्सा उतरा। इसकी सोहब्बत में लड़का बिगड़ा जाता हैं।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली कहावत मेरी आँखों के सामने थी। मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आयी। होली का दिन था। शराब की एक बोतल मँगवायी गयी थी। मेरे मामूँ साहब आये हुए थे। मैने चुपके से कोठरी में जाकर एक घूँट शराब ढाली और पी गया। अभी गला जल ही रहा था और आँखें लाल ही थी, कि मामूँ साहब कोठरी में आ गये और मुझे मानो सेंध में गिरफ्तार कर लिया और इतनी बिगड़े - इतना बिगड़े कि मेरा कलेजा सूखकर छुहारा हो गया।

अम्माँ ने भी डाँटा, पिताजी ने भी डाँटा, मुझे आँसुओं से उनकी क्रोधाग्नि शान्त करनी पड़ी ; और दोपहर ही को मामूँ साहब नशे में पागल होकर गाने लगे, फिर रोये, फिर अम्माँ को गालियाँ दी, दादा के मना करने पर भी मारने दौड़े और आखिर में कै करके जमीन पर बेसुध पड़े नजर आये।

3

विक्रम के पिता बड़े ठाकुर साहब और ताऊ छोटे ठाकुर साहब दोनो जड़वादी थे, पूजा-पाठ की हँसी उड़ाने वाले, पूरे नास्तिक; मगर अब दोनों बड़े निष्ठावान और ईश्वर भक्त हो गये थे। बड़े ठाकुर साहब प्रातःकाल गंगा-स्नान करने जाते और मन्दिरों के चक्कर लगाते हुए दोपहर को सारी देह में चन्दन लपेटे घर लौटते। छोटे ठाकुर साहब घर पर ही गर्म पानी से स्नान करते और गठिया से ग्रस्त होने पर भी राम-नाम लिखना शुरू कर देते। धूप निकल आने पर पार्क की ओर निकल जाते और चींटियों को आटा खिलाते । शाम होते ही दोनो भाई अपने ठाकुरद्वारे में जा बैठते और आधी रात कर भागवत की कथा तन्मय होकर सुनते। विक्रम के बड़े भाई प्रकाश को साधु-महात्माओं पर अधिक विश्वास था। वह मठों और साधुओं के अखाड़ों तथा कुटियों की खाक छानते और माताजी को तो भोर से आधी रात तक स्नान, पूजा और व्रत के सिवा दूसरा काम ही न था। इस उम्र में उन्हें सिंगार का शौक था; पर आजकल पूरी तपस्विनी बनी हुई थी। लोग नाहक लालसा को बुरा कहते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें तो यह भक्ति-निष्ठा और धर्म-प्रेम हैं, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण। हमारा धर्म हमारे स्वार्थ के बल पर टिका हुआ हैं। हवस मनुष्य के मन और बुद्धि का इतना संस्कार कर सकती हैं, यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। हम दोनों भी ज्योतिषियों और पंडितों से प्रश्न करके अपने को कभी दुखी कर लिया करते थे।

ज्यों-ज्यों लॉटरी का दिवस समीप आता जाता था, हमारे चित्त की शान्ति उड़ती जाती थी। हमेशा उसी ओर मन टँगा रहता। मुझे आप-ही-आप अकारण सन्देह

होने लगा कि कहीं विक्रम मुझे हिस्सा देने से इनकार कर दे, तो मैं क्या करूँगा। साफ इन्कार कर जाय कि तुमने टिकट का साझा किया ही नहीं। न कोई तहरीर हैं, न कोई दूसरा सबूत। सब कुछ विक्रम की नीयत पर हैं। उसकी नीयत जरा भी डावाँडोल हुई कि काम-तमाम। कहीं फरियाद नहीं कर सकता, मुँह तक नहीं खोल सकता। अब अगर कुछ कहूँ भी तो लाभ नहीं । अगर उसकी नीयत में फितूर आ गया हैं तो वह अभी से इन्कार कर देगा; अगर नहीं आया हैं, तो इस सन्देह से उसे मर्मान्तक वेदना होगी। आदमी ऐसा तो नहीं हैं; मगर भाई, दौलत पाकर ईमान सलामत रखना कठिन हैं। अभी तो रुपये नहीं मिले हैं। इस वक़्त ईमानदार बनने में क्या खर्च होता हैं? परीक्षा का समय तो तब आयेगा, जब दस लाख रुपये हाथ में होगे। मैंने अपने अन्तःकरण को टटोला- अगर टिकट मेरे नाम का होता और मुझे दस लाख मिल जाते, तो क्या मैं आधे रुपये बिना कान-पूँछ हिलाये विक्रम के हवाले कर देता? कौन कह सकता हैं; मगर सम्भव यही था कि मैं हीले-हवाले करता, कहता- तुमने मुझे पाँच रुपये उधार दिये थे। उसके दस ले लो, सौ ले लो और क्या करोगे; मगर नहीं मुझसे इतनी बद-दियानती न होती।

दूसरे दिन हम दोनो अखबार देख रहे थे कि सहसा विक्रम ने कहा- कहीं हमारा टिकट निकल आये, तो मुझे अफसोस होगा कि नाहक तुमसे साझा किया!

वह सरल भाव से मुस्काराया, मगर यह भी थी उसकी आत्मा की झलक जिसे वह विनोद की आड़ में छिपाना चाहता था।

मैने चौककर कहा- सच! लेकिन इसी तरह मुझे भी तो अफसोस हो सकता हैं?

'लेकिन टिकट तो मेरे नाम का है?'

'इससे क्या।'

'अच्छा मान लो, मैं तुम्हारे साझे से इन्कार कर जाऊँ?'

मेरा खून सर्द हो गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

'मैं तुम्हें इतना बदनीयत नहीं समझता था।'

'मगर हैं बहुत सम्भव। पाँच लाख। सोचो! दिमाग चकरा जाता हैं!'

'तो भाई, अभी से कुशल हैं, लिखा-पढ़ी कर लो! यह संशय रहे ही क्यों?'

विक्रम ने हँसकर कहा- तुम बड़े शक्की हो यार! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। भला, ऐसा कहीं हो सकता हैं? पाँच लाख तो क्या, पाँच करोड़ भी होस तब भी ईश्वर चाहेगा, तो नीयत में खलल न आने दूँगा।

किन्तु मुझे उसके इस आश्वासनों पर बिलकुल विश्वास न आया। मन में एक संशय बैठ गया।

मैने कहा- यह तो मै भी जानता हूँ, तुम्हारी नीयत कभी विचलित नहीं हो सकती, लेकिन लिखा-पढ़ी कर लेने से क्या हरज हैं।

'फजूल हैं।'

'फजूल ही सही।'

'तो पक्के कागज पर लिखना पड़ेगा। दस लाख की कोर्ट-फीस ही साढे सात हजार हो जाएगी। किस भ्रम में हैं आप?'

मैने सोचा, बला से सादी लिखा-पढी के बल पर कोई कानूनी कार्रवाही न कर सकूँगा। पर इन्हें लज्जित करने का, जलील करने का, इन्हें सबके सामने बेईमान सिद्ध करने का अवसर तो मेरे हाथ आयेगा और दुनिया में बदनामी का भय न हो, तो आदमी न जाने क्या करे। अपमान का भय कानून के भय से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होता। बोला- मुझे सादे कागज पर ही विश्वास आ जायगा।

विक्रम ने लापरवाही से कहा- जिस कागज का कोई कानूनी महत्त्व नहीं, उसे लिखकर क्या समय नष्ट करें?

मुझे निश्चय हो गया कि विक्रम की नीयत में अभी से फितूर आ गया। नहीं तो सादा कागज लिखने में क्या बाधा हो सकती हैं? बिगड़कर कहा- तुम्हारी नीयत तो अभी से खराब हो गयी।

उसने निर्लज्जता से कहा- तो क्या तुम साबित करना चाहते हो कि ऐसी दशा में तुम्हारी नीयत न बदलती?

'मेरी नीयत इतनी कमजोर नही हैं?'

'रहने भी दो। बड़ी नीयतवाले! अच्छे-अच्छे को देखा हैं।'

'तुम्हें इसी वक़्त लेखाबद्ध होना पड़ेगा। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं रहा।'

'अगर तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं हैं, तो मैं भी नहीं लिखता।'

'तो क्या तुम समझते हो, तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे?'

'किसके रुपये और कैसे रुपये?'

'मैं कहे देता हूँ विक्रम, हमारी दोस्ती का ही अन्त न हो जायगा, बल्कि इससे कहीं भयंकर परिणाम होगा।'

हिंसा की एक ज्वाला-सी मेरे अन्दर दहक उठी।

सहसा दीवानखाने में झड़प की आवाज सुनकर मेरा ध्यान उधर चला गया। यहाँ दोनो ठाकुर बैठा करते थे। उनमें ऐसी मैत्री थी, जो आदर्श भाईयों में हो सकती हैं। राम और लक्ष्मण में भी इतनी ही रही होगी। झड़प की तो बात ही क्या, मैं कभी विवाद होते भी न सुना था। बड़े ठाकुर जो कह दे, वह छोटे ठाकुर के लिए कानून

था और छोटे ठाकुर की इच्छा देखकर ही बड़े ठाकुर कोई बात कहते थे। हम दोनो को आश्चर्य हुआ दीवानखाने के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। दोनों भाई अपनी-अपनी कुर्सियों से उठ कर खड़े हो गये थे, एक-एक कदम आगे भी बढ़ आये थे, आँखें लाल, मुख विकृत. त्योरियाँ चढ़ी हुई, मुट्ठियाँ बँधी हुई। मालूम होता था, बस हाथापाई हुआ ही चाहता हैं।

छोटे ठाकुर ने हमें देखकर पीछे हटते हुए कहा- सम्मिलित परिवार मे जो कुछ भी हो और कही से भी और किसी के नाम भी आये, वह सबका हैं, बराबर।

बड़े ठाकुर ने विक्रम को देखकर एक कदम और आगे बढ़ाया- हरगिज नहीं, अगर मैं कोई जुर्म करूँ, तो मैं पकड़ा जाऊँगा, सम्मिलित परिवार नहीं। मुझे सजा मिलेगी, सम्मिलित परिवार को नहीं। यह वैयक्तिक प्रश्न हैं।

'इसका फैसला अदालत से होगा।'

'शौक से अदालत जाइए। अगर मेरे लड़के, मेरी बीवी या मेरे नाम लॉटरी निकली, तो आपका उससे कोई सम्बन्ध न होगा, उसी तरह जैसे अगर आपके नाम लॉटरी निकले तो मुझसे, मेरी बीवी से या मेरे लड़के से उससे कोई सम्बन्ध न होगा।'

'अगर मैं जानता कि आपकी नीयत हैं, तो मैं भी बीवी-बच्चों के नाम से टिकट ले सकता था।'

'यह आपकी गलती हैं।'

'इसलिए कि मुझे विश्वास था, आप भाई हैं।'

'यह जुआ हैं, आपको समझ लेना चाहिए था। जुए की हार-जीत का खानदान पर कोई असर नहीं पड़ सकता। अगर आप कल दस-पाँच हजार रेस में हार आयें, तो खानदान उसका जिम्मेदार न होगा।'

'मगर भाई का हक दबाकर आप सुखी नहीं रह सकते?'

'आप न ब्रह्मा हैं, न ईश्वर और न कोई महात्मा।'

विक्रम की माता ने सुना कि दोनो भाइयों में ठनी हूई हैं और मल्लयुद्ध हुआ चाहता हैं, तो दौड़ी हुई बाहर आयीं और दोनों को समझाने लगी।

छोटे ठाकुर ने बिगड़ कर कहा- आप मुझे क्या समझाती हैं, उन्हें समझाइए, जो चार-चार टिकट लिये हुए बैठे हैं। मेरे पास क्या हैं, एक टिकट। उसका क्या भरोसा। मेरी अपेक्षा जिन्हें रुपयें मिलने का चौगुना चांस हैं, उनकी नीयत बिगड़ जाय, तो लज्जा और दुःख की बात हैं।

ठकुरान ने देवर को दिलासा देते हुए कहा- अच्छा, मेरे रुपयें मे से आधे तुम्हारे। अब तो खुश हो।

बड़े ठाकुर ने बीवी की जबान पकड़ी- क्यों आधे लें लेगे? मैं एक धेला भी न दूँगा। हम मुरौवत और सहृदयता से काम लें, फिर भी उन्हें पाँचवें हिस्से से ज्यादा किसी तरह न मिलेगा। आधे का दावा किस नियम से हो सकता हैं? न बौद्धिक, न धार्मिक, न नैतिक।

छोटे ठाकुर ने खिसियाकर कहा- सारी दुनिया का कानून आप ही तो जानते हैं।

'जानते ही हैं, तीस साल तक वकालत नहीं हैं?'

'यह वकालत निकल जायगी, जब सामने कलकत्ते का बैरिस्टर खड़ा कर दूँगा।'

'बैरिस्टर की ऐसी-तैसी, चाहे कलकत्ते का हो या लन्दन का।'

'मैं आधा लूँगा, उसी तरह जैसे घर की जायदाद में मेरा आधा हैं।'

इतने में विक्रम के बड़े भाई साहब सिर और हाथ में पट्टी बाँधे, लँगड़ाते हुए कपड़ो

पर ताजा खून के दाग लगाये, प्रसन्न-मुख आकर एर आरामकुर्सी पर गिर पड़े। बड़े ठाकुर ने घबराकर पूछा- यह तुम्हारी क्या हालत हैं जी? ऐं, यह चोट कैसे लगी? किसी से मार-पीट तो नहीं हो गयी।

प्रकाश ने कुर्सी पर लेटकर एक बार कराहा, फिर मुसकराकर बोले- जी, कोई बात नहीं, ऐसी कुछ बहुत चोट नहीं लगी।

'कैसे कहते हो कि चोट नहीं लगी? सारा हाथ और सिर सूज गया हैं। कपड़े खून से तर। यह मुआमला क्या हैं? कोई मोटर दुर्घटना तो नहीं हो गयी?'

'बहुत मामूली चोट हैं साहब, दो-चार दिन में अच्छी हो जायगीय़ घबराने की कोई बात नहीं।'

प्रकाश के मुख पर आशापूर्ण, शान्त मुसकान थी। क्रोध, लज्जा या प्रतिशोध की भावना का नाम भी न था।

बड़े ठाकुर ने और व्यग्र होकर पूछा- लेकिन हुआ क्या, यह क्यों नहीं बतलाते? किसी से मार-पीट हुई हो तो थाने में रपट करवा दूँ?

प्रकाश ने हलक मन से कहा- मार-पीच किसी से नहीं हुई साहब। बात यह है कि मैं जरा झक्कड़ बाबा के पास चला गया था। आप तो जानते हैं, वह आदमियों की सूरत से भागते हैं और पत्थर लेकर मारने-दौड़ते हैं। जो डरकर भागा, वह गया। जो पत्थर की चोट खाकर भी उनके पीछे लगा रहा, वह पारस हो गया। वह यही परीक्षा लेते हैं। आज मैं वहाँ पहुँचा, तो कोई पचास आदमी जमा थे, कोई मिठाई लिये, कोई बहुमूल्य भेंट लिये, कोई कपड़ो की थान लिये। झक्कड़ बाबा ध्यानवस्था में बैठे हुए थे। एकाएक उन्होंने आँखें खोली और यह जन-समूह देखा, तो कई पत्थर चुनकर उनके पीछे दौड़े। फिर क्या था, भगदड़ मच गयी। लोग गिरते-पड़ते भागे। हुर्र हो गये। एक भी न टिका। अकेला मै घंटेघर की तरह वहीं डटा रहा। बस उन्होंने पत्थर चला ही तो दिया। पहला निशाना सिर में लगा।

उनका निशाना अचूक पड़ता हैं। खोपड़ी भन्ना गयी, खून की धारा बह चली; लेकिन मैं हिला नहीं। फिर बाबा जी ने दूसरा पत्थर फेंका। वह हाथ नें लगा। मैं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश आया, तो वहाँ सन्नाटा था। बाबाजी भी गायब हो गये थे। अन्तर्धान हो जाया करते हैं। किसे पुकारूँ, किससे सवारी लाने को कहूँ? मारे दर्द के हाथ फटा पड़ता था और सिर से अभी तक खून जारी था। किसी तरह उठा और सीधा डॉक्टर के पास चला गया। उन्होंने देखकर कहा- हड्डी टूट गयी हैं और पट्टी बाँध दी; गर्म पानी से सेंकने को कहा हैं। शाम को फिर आयेंगे, मगर चोट लगी तो लगी; अब लॉटरी मेरे नाम आयी धरी हैं। यह निश्चय हैं। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि झक्कड बाबा की मार खाकर कोई नामुराद रह गया हो। मैं तो सबसे पहले बाबा की कुटी बनवा दूँगा।

बड़े ठाकुर साहब के मुख पर संतोष की झलक दिखायी दी। फौरन पलंग बिछ गया। प्रकाश उस पर लेटे। ठकुराइन पंखा झलने लगी, उनका भी मुख प्रसन्न था। इतनी चोट खाकर दस लाख पा जाना कोई बुरा सौदा न था।

छोटे ठाकुर साहब के पेट में चूहें दौड़ रहे थे। ज्योंहि बड़े ठाकुर भोजन करने गये और ठकुराइन भी प्रकाश के लिए भोजन का प्रबन्ध करने गयीं, त्योंही छोटे ठाकुर ने प्रकाश से पूछा- क्या बहुत जो से पत्थर मारते हैं? जोर से जो क्या मारते होगे।

प्रकाश ने उनका आशय समझकर कहा- अरे साहब, पत्थर नहीं मारते, बमगोले मारते हैं। देव-सा तो डील-डौल हैं और बलवान इतने हैं कि एक घूँसे में शेरों का काम तमाम कर देते हैं। कोई ऐसा-वैसा आदमी हो, तो एक ही पत्थर में टें हो जाय। कितने तो मर गये; मगर आज तक झक्कड़ बाबा पर मुकदमा नहीं चला। और दो-चार पत्थर मारकर ही नहीं रह जाते, जब तक आप गिर न पड़े और बेहोश न हो जायँ, वह मारते ही जायँगे; मगर रहस्य यहीं हैं कि आप जितने ज्यादा चोटे खायेंगे, उतने ही अपने उद्देश्य के निकट पहुँचगें।...

प्रकाश ने ऐसा रोएँ खड़े कर देने वाला चित्र खींचा कि छोटे ठाकुर साहब थर्रा

उठे। पत्थर खाने की हिम्मत न पड़ी।

4

आखिर भाग्य के निपटारे का दिन आया- जुलाई की बीसवीं तारीख कत्ल की रात! हम प्रातःकाल उठे, तो एक नशा चढ़ा हुआ था, आशा और भय के द्वन्द्व का। दोनों ठाकुरों ने घड़ी रात रहे गंगा-स्नान किया था और मन्दिर में बैठे पूजन कर रहे थे। आज मन में श्रद्धा जागी । मन्दिर में जाकर मन-ही-मन ठाकुरजी की स्तुति करने लगा- अनाथों के नाथ, तुम्हारी कृपादृष्टि क्या हमारे ऊपर न होगी? तुम्हें क्या मालूम नहीं, हमसे ज्यादा तुम्हारी दया कौन डिज़र्व (deserve) करता हैं? विक्रम सूट-बूट पहने मन्दिर के द्वार पर आया, मुझे इशारे से बुलाकर इतना कहा- मैं डाकखाने जाता हूँ औऱ हवा हो गया। जरा देर में प्रकाश मिठाई के थाल लिए हुए घर में से निकले और मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर कंगालों को बाँटने लगे, जिनकी एक भीड़ जमा हो गयी थी। और दोनों ठाकुर भगवान के चरणों में लौ लगाये हुए थे, सिर झुकाते, आँखें बन्द किये हुए, अनुराग में डूबे हुए।

बड़े ठाकुर ने सिर उठाकर पुजारी की ओर देखा और बोले- भगवान तो बड़े भक्त-वत्सल हैं, क्यों पुजारी जी?

पुजारी ने समर्थन किया- हाँ सरकार, भक्तों की रक्षा के लिए तो भगवान क्षीरसागर से दौड़े और गज को ग्राह के मुँह से बचाया।

एक क्षण के बाद छोटे ठाकुर साहब ने सिर उठाया, और पुजारी से बोले- क्यों पुजारी, भगवान तो सर्व-शक्तिमान हैं, अन्तर्यामी, सबके दिल का हाल जानते हैं।

पुजारी ने समर्थन किया- हाँ सरकार, अन्तर्यामी न होते तो सबके मन कि बात कैसे जान जाते? शबरी का प्रेम देखकर स्वयं उसकी मनोकामना पूरी की।

पूजन समाप्त हुआ। आरती हुई। दोनो भाइयों ने आज ऊँचे स्वर से आरती गायी

और बड़े ठाकुर ने दो रुपये थाल में डाले। छोटे ठाकुर ने चार रुपये डाले। बड़े ठाकुर ने एक बार कोप-दृष्टि से देखा और मुँह फेर लिया।

सहसा बड़े ठाकुर ने पुजारी से पूछा- तुम्हारा मन क्या कहता हैं पुजारी जी?

पुजारी बोला- सरकार की फते हैं।

छोटे पुजारी ने पूछा- और मेरी?

पुजारी ने उसी मुस्तैदी से कहा- आप की भी फते हैं।

बड़े ठाकुर श्रद्धा से डूबे भजन गाते हुए मन्दिर से गाते हुए निकते-

'अब पत राखो मोरे दयानिधान तोरी गति लखि ना परे।'

मैं भी पीछे निकला औऱ जाकर मिठाई बाँटने में प्रकाश बाबू की मदद करना चाहा; उन्होंने थाल हटाकर कहा- आप रहने दीजिए, मैं अभी बाँटे डालता हूँ। अब रह ही कितनी गयी हैं?

मैं खिसियाकर डाकखाने की तरफ चला कि विक्रम मुसकराता हुआ साइकिल पर आ पहुँचा। उसे देखते ही सभी जैसे पागल हो गये। दोनों ठाकुर सामने ही खड़े थे। दोनों बाज की तरह झपटे। प्रकाश के थाल में थोड़ी-सी मिठाई बच रही थी। उसने थाल जमीन पर पटका और दौड़ा। और मैंने तो उस उन्माद में विक्रम को गोद में उठा लिया; मगर कोई उससे कुछ पूछता नहीं, सभी जय-जयकार की हाँक लगा रहे हैं।

बड़े ठाकुर मे आकाश की ओर देखा- बोला रामचन्द्र की जय!

छोटे ठाकुर ने छलाँग मारी- बोलो हनुमानजी की जय!

प्रकाश तालियाँ बजाता हुआ चीखा- दुहाई झक्कड़ बाबा की!

विक्रम ने और जोर से कहकहा मारा और फिर अलग खड़ा होकर बोला जिसका नाम आया हैं, उससे एक लाख लूँगा! बोलो, हैं मंजूर?

बड़े ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ा- पहले बात तो!

'ना! यों नहीं बताता।'

छोटे ठाकुर बिगड़े- महज बताने के लिए एक लाख? शाबाश।

प्रकाश ने त्योंरी चढ़ायी- क्या डाकखाना हमने देखा नहीं हैं?

'अच्छा, तो अपना-अपना नाम सुनने के लिए तैयार है जाओ?'

सभी लोग फौजी-अटेंशन की दशा में निश्चल खड़े हो गये।

'होश-हवास ठीक रखना!'

सभी पूर्ण सचेत हो गये।

'अच्छा, तो सुनिए कान खोलकर। इस शहर का सफाया हैं। इस शहर का ही नहीं, सम्पूर्ण भारत का सफाया हैं। अमेरिका के एक हब्शी का नाम आ गया।'

बड़े ठाकुर झल्लाये- झूठ-झूठ, बिलकुल झूठ!

छोटे ठाकुर ने पैंतरा बदला- कभी नहीं। तीन महीने की तपस्या यों ही रही? वाह?

प्रकाश ने छाती ठोंक कर कहा- यहाँ सिर मुड़वाये और हाथ तुड़वाये बैठे हैं, दिल्लगी हैं!

इतने में और पचासों आदमी उधर से रोनी सूरत लिये निकले। बेचारे भी

डाकखाने से अपनी किस्मत को रोते चले आ रहे थे। मार ले गया, अमेरिका का हब्शी! अभागा! पिशाच! दुष्ट!

अब कैसे किसी को विश्वास न आता? बड़े ठाकुर झल्लाये हुए मन्दिर में गये और पुजारी को डिसमिस कर दिया- इसीलिए तुम्हें इतने दिनों से पाल रखा हैं। हराम का माल खाते हो और चैन करते हो।

छोटे ठाकुर साहब की तो जैसे कमर टूट गयी। दो-तीन बार सिर पीटा और वहीं बैठ गये; मगर प्रकाश के क्रोध का पारावार न था। उसने अपना मोटा सोटा लिया और झक्कड़ बाबा की मरम्मत करने चला।

माताजी ने केवल इतना कहा- सभी ने बेईमानी की हैं। मैं कभी मानने की नहीं। हमारे देवता क्या करे? किसी के हाथ से थोड़े ही छीन लायेंगे?

रात को किसी ने खाना नहीं खाया। मैं भी उदास बैठा हुआ था कि विक्रम आकर बोला- चलो, होटल से कुछ खा आयें। घर में चूल्हा नही जला।

मैने पूछा- तुम डाकखाने से आये, तो बहुत प्रसन्न क्यों थे।

उसने कहा- जब मैने डाकखाने के सामने हजारों की भीड़ देखी, तो मुझे अपने लोगों के गधेपन पर हँसी आयी। एक शहर में जब इतने आदमी हैं, तो सारे हिन्दुस्तान में इसके हजार गुने से कम न होगे और दुनिया में तो लाख गुने से भी ज्यादा हो जायँगे। मैने आशा का जो एक पर्वत-सा खड़ा कर रखा था, वह जैसे एकबारगी इतना छोटा हुआ कि राई बन गया, और मुझे हँसी आयी। जैसे कोई दानी पुरुष छटाँक-भर अन्न हाथ में लेकर एक लाख लोगों को नेवता दे बैठे- और यहाँ हमारे घर का एक-एक आदमी समझ रहा हैं कि...

मैं भी हँसा- हाँ, बात तो यर्थात में यही हैं और हम दोनों लिखा-पढ़ी के लिए लड़े-मरते थे; मगर सच बताना, तुम्हारी नीयत खराब हुई थी कि नही?

विक्रम- मुसकराकर बोला- अब क्या करोंगे पूछ कर? परदा ढका रहने दो।

***

जादू

नीला- तुमने उसे क्यों लिखा?

मीना- किसको?

'उसी को?'

'मै नही समझती।'

'खूब समझती हो! जिस आदमी ने मेरा अपमान किया, गली-गली मेरा नाम बेचता फिरा, उसे तुम मुँह लगाती हो, क्या यह उचित हैं?'

'तुम गलत कहती हो!'

'तुम उसे खत, नहीं लिखा?'

'कभी नहीं।'

'तो मेरी गलती क्षमा करो। तुम मेरी बहन न होती, तो मैं तुमसे यह सवाल भी न पूछती।'

'मैने किसी को खत नही लिखा।'

'मुझे यह सुनकर खुशी हुई।'

'तुम मुसकाती क्यो हो?'

'मैं!'

'जी हाँ, आप!'

'मैं तो जरा भी नही मुसकरायी।'

'क्या मैं अन्धी हूँ?'

'यह तो तुम अपने मुँह से ही कहती हो।'

'तुम क्यों मुसकरायीं?'

'मै सच कहती हूँ, जरा भी नहीं मुसकायी।'

'मैने अपनी आँखों से देखा।'

'अब मैं कैसे तुम्हे विश्वास दिलाऊँ?'

'तुम आँखों मे धूल झोंकती हो।'

'अच्छा मुसकरायी! बस, या जान लोगी?'

'तुम्हें किसी के ऊपर मुसकराने का क्या अधिकार हैं?'

'तेरे पैरों पड़ती हूँ, नीला, मेरा गला छोड़ दे। मैं बिलकुल नहीं मुसकरायी।'

'मैं ऐसी अनीली नहीं हूँ।'

'यह मैं जानती हूँ।'

'तुमने मुझे हमेशा झूठी समझा हैं।'

'तू आज किसका मुँह देखकर उठी हैं?'

'तुम्हारा।'

'तू मुझे थोड़ा संखिया क्यों नहीं दे देती।'

'हाँ, मैं तो हत्यारिन हूँ।'

'मैं तो नहीं कहती।'

'अब और कैसे कहोगी, क्या ढोल बजाकर? मैं हत्यारिन हूँ, मदमाती हूँ, दीदा-दिलेर हूँ; तुम सर्वगुणागरी हो, सीता हो, सावित्री हो। अब खुश हुई?'

'लो कहती हूँ, मैने उन्हें पत्र लिखा फिर तुमसे मतलब? तुम कौन होती हो, मुझसे जवाब-तलब करने वाली?'

'अच्छा किया, लिखा, सचमुच मेरी बेवकूफी थी कि मैने तुमसे पूछा।'

'हमारी खुशी, हम जिसको चाहेंगे खत लिखेंगे। जिससे चाहेंगे बोलेंगे। तुम कौन होती हो रोकने वाली । तुमसे तो मैं नहीं पूछने जाती; हालाँकि रोज तुम्हें पुलिन्दों पत्र लिखते देखती हूँ।'

'जब तुमने शर्म ही भून खायी, तो जो चाहो करो, अख्तियार हैं।'

'और अब तुम कब से बड़ी लज्जावती बन गयीं? सोचती होगी, अम्माँ से कह दूँगी, यहाँ इसकी परवाह नहीं हैं। मैंने उन्हें पत्र भी लिखा, उनसे पार्क में मिली भी। बातचीत भी की, जाकर अम्माँ से, दादा से और सारे मुहल्ले से कह दो।'

'जो जैसा करेगा, आप भोगेगा, मैं क्यों किसी से कहने जाऊँ?'

'ओ हो, बड़ी धैर्यवाली, यह क्यों नही कहती, अंगूर खट्टे हैं?'

'जो तुम कहो, वही ठीक हैं।'

'दिल में जली जाती हो।'

'मेरी बला जले!'

'रो दो जरा।'

'तुम खुद रोओ, मेरा अँगूठा रोये।'

'मुझे उन्होंने एक रिस्टवाच भेट ही हैं, दिखाऊँ?'

'मुबारक हो, मेरी आँखों का सनीचर दूर न होगा?'

'मैं कहती हूँ, तुम इतनी जलती क्यो हो?'

'अगर मैं तुमसे जलती हूँ, तो मेरी आँखे पट्टम हो जायँ।'

'तुम जितना ही जलोगी, मैं उतना ही जलाऊँगी।'

'मैं जलूँगी ही नहीं।'

'जल रही हो साफ।'

'कब सन्देशा आयेगा?'

'जल मरो।'

'पहले तेरी भाँवरे देख लूँ।'

'भाँवरे का चाट तुम्हीं को रहती हैं।'

'अच्छा! तो क्या बिना भाँवरो का ब्याह होगा?'

'यह ढकोसले तुम्हें मुबारक रहें, मेरे लिए प्रेम काफी हैं।'

'तो क्या तू सचमुच ...!'

'मैं किसी से नहीं डरती।'

'यहाँ तक नौबत पहुँच गयी! और तू कह रही थी, मैंने उसे पत्र नही लिखा और कसमें खा रही थी?'

'क्यों अपने दिल का हाल बतलाऊँ।'

'मैं तो तुझसे पूछती न थी, मगर तू आप-ही-आप बक चली।'

'तुम मुसकरायी क्यों?'

'इसलिए कि वह शैतान तुम्हारे साथ भी वहीं दगा करेगा, जो उसने मेरे साथ किया और फिर तुम्हारे विषय में भी वैसे ही बाते कहता फिरेगा। और फिर तुम मेरी तरह उसके नाम को रोओगी।'

'तुमसे उन्हें प्रेम न था?'

'मुझसे! मेरे पैरो पर सिर रखकर रोता था और कहता था कि मैं मर जाऊँगा और जहर खा लूँगा।'

'सच कहती हो?'

'बिलकुल सच।'

'यह तो वह मुझसे भी कहते हैं।'

'सच?'

'तुम्हारे सिर की कसम।'

'और मैं समझ रही थी, अभी वह दाने बिखेर रहा हैं।'

'क्या वह सचमुच।'

'पक्का शिकारी हैं।'

मीना सिर पर हाथ रखकर चिन्ता में डूब जाती हैं।

***

नया विवाह

हमारी देह पुरानी हैं, लेकिन इसमें सदैव नया रक्त दौड़ता रहता हैं। नये रक्त के प्रवाह पर ही हमारे जीवन का आधार है। पृथ्वी की इस चिरन्तन व्यवस्था में यह नयापन उसके एक-एक अणु में , एक-एक कण में, तार में बसे हुए स्वरों की भाँति, गूँजता रहता हैं और यह सौ साल की बुढ़िया आज भी नवेली दुल्हन बनी हूई हैं।

जब से लाला डंगामल ने नया विवाह किया हैं, उनका जीवन नये सिरे से जाग उठा हैं। जब पहली स्त्री जीवित थी, तब वे घर में बहुत कम रहते थे। प्रातःकाल से दस ग्यारह बजे तक तो पूजा-पाठ ही करते रहते थे। फिर भोजन करके दूकान चले जाते। वहाँ से एक बजे लौटते और थके-माँदे सो जाते। यदि लीला कभी कहती, जरा और सबेरे आ जाओ, तो बिगड़ जाते और कहते - तुम्हारे लिए क्या दूकान छोड़ दूँ या रोजगार बन्द कर दूँ? यह वह जमाना नही हैं कि एक लोटा जल चढ़ाकर लक्ष्मी प्रसन्न कर ली जायँ। आज उनकी चौखट पर माथा रगड़ना पड़ता हैं; तब भी उनका मुँह सीधा नहीं होता। लीला बेचारी चुप हो जाती।

अभी छः महीने की बात हैं। लीला को ज्वर चढ़ा हुआ था लालाजी दूकान जाने लगे, तब उसने डरते-डरते कहा था- देखो, मेरा जी अच्छा नहीं है। जरा सबेरे आ जाना।

डंगामल ने पगड़ी उतर कर खूँटी पर लटका दी और बोले- अगर मेरे बैठे रहने से तुम्हारा जी अच्छा हो जाय, तो मैं दूकान पर न जाऊँगा।

लीला हताश होकर बोली- मैं दूकान जाने को तो नहीं मना करती। केवल जरा सबेरे आने को कहती हूँ।

'तो क्या दूकान पर बैठा मौज किया करता हूँ?'

लीला इसका क्या जवाब देती? पति का स्नेह-हीन व्यवहार उसके लिए कोई नयी बात न थी। इधर कई साल से उसे कठोर अनुभव हो रहा था कि उसको इस घर में कद्र नहीं हैं। वह अक्सर इस समस्या पर विचार भी किया करती, पर वह अपना कोई अपराध न पाती। वह पति की सेवा पहले से कहीं ज्यादा करती, उनके कार्य-भार को हल्का करने की बराबर चेष्ठा करती, बराबर प्रसन्नचित रहती; कभी उनकी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। अगर उसकी जवानी ढल चुकी थी, तो इसमें उसका क्या अपराध था? किसकी जवानी सदैव स्थिर रहती हैं? अगर अब उसका स्वास्थ्य उतना अच्छा न था, तो इसमें उसका क्या दोष? उसे बेकसूर क्यों दंड दिया जाता हैं?

उचित तो यह था कि 25 साल का साहचर्य अब एक गहरी मानसिक और आत्मिक अनुरूपता का रूप धारण कर लेता, जो दोष को भी गुण बना लेता हैं, जो पके फल की तरह ज्यादा रसीला, ज्यादी मीठा, ज्यादा सुन्दर हो जाता हैं। लेकिन लालाजी का वणिक-हृदय हर एक पदार्थ को वाणिज्य की तराजू से तौलता था। बूढ़ी गाय जब न दूध दे सकती हैं न बच्चे, तब उसके लिए गौशाला ही सबसे अच्छी जगह हैं। उनके विचार में लीला के लिए इतना ही काफी था कि मालकिन बनी रहे; आराम से खाय और पड़ी रहे। उसे अख्तियार हैं चाहे जितने जेवर बनवाये, चाहे जितना स्नान व पूजा करे, केवल उनसे दूर रहे। मानव-प्रकृति की जटिलता का एक रहस्य यह था कि डंगामल जिस आनन्द से लीला को वंचित रखना चाहते थे, जिसकी उसके लिए कोई जरूरत ही न समझते थे, खुद उसी के लिए सदैव प्रयत्न करते रहते थे। लीला 40 साल की होकर बूढ़ी समझ ली गयी थी, किन्तु खुद तैतालीस के होकर अभी जवान थे, जवानी के उन्माद और उल्लास से भरे हुए। लीला से अब उन्हें एक तरह की अरुचि होती थी और वह दुखिया जब अपनी त्रुटियों का अनुभव करके प्रकृति के निर्दय आघातों से बचने के लिए रंग व रोगन की आड़ लेती, तब लालाजी उसके बूढ़े नखरों से और भी घृणा करने लगते। वे कहते - वाह री तृष्णा! सात लड़को की तो माँ हो गयी, बाल खिचड़ी हो गये, चेहरा धुले हुए फलालैन की तरह सिकुड़ गया, मगर आपको

अभी महावर, सेंदुर, मेंहदी और उबटन की हवस बाकी ही हैं। औरतों का स्वभाव भी कितना विचित्र हैं! न जाने क्यो बनाव-सिंगार पर इतनी जान देती हैं? पूछो, अब तुम्हें और क्या चाहिए। क्यों नहीं मन को समझा लेती कि जवानी विदा हो गयी हैं और इन उपदानों से वह वापस नहीं बुलायी जा सकती! लेकिन खुद जवानी का स्वप्न देखते रहते थे। उनकी जवानी की तृष्णा अभी शान्त न हुई थी। जाड़ो में रसों और पाकों का सेवन करते रहते थे। हफ्ते में दो बार खिजाब लगाते और एक डॉक्टर से मंकीग्लैंड के विषय में पत्र-व्यवहार कर रहे थे।

लीला ने उन्हें असमंजस में देखकर कातर-स्वर में पूछा- कुछ बतला सकते हो, कै बजे आओगे?

लालाजी ने शान्त भाव से पूछा- तुम्हारा जी आज कैसा हैं?

लीला क्या जवाब दे? अगर कहती है कि बहुत खराब हैं, तो शायद वे महाशय वहीं बैठ जाय और उसे जली-कटी सुनाकर अपने दिल का बुखार निकाले। अगर कहती हैं कि अच्छी हूँ, तो शायद निश्चिन्त होकर दो बजे तक कहीं खबर ले। इस दुविधा में डरते-डरते बोली- अब तक तो हल्की थी, लेकिन अब कुछ भारी हो रही हैं। तुम जाओ, दूकान पर लोग तुम्हारी राह देखते होंगे। हाँ, ईश्वर के लिए एक-दो न बजा देना। लड़के सो जाते हैं, मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगती, जी घबराता हैं।

सेठजी ने अपने स्वर में स्नेह की चाशनी देकर कहा- बारह बजे तक आ जरूर जाऊँगा।

लीला का मुख धूमिल हो गया। उसने कहा- दस बजे तक नहीं आ सकते?

'साढ़े ग्यारह से पहले किसी तरह नहीं।'

'नहीं, साढ़े दस'

'अच्छा, ग्यारह बजे।'

लाला वादा करके चले गये, लेकिन दस बजे रात को एक मित्र ने मुजरा सुनने के लिए बुला भेजा। इस निमन्त्रण को कैसे इनकार कर देते। जब एक आदमी आपको खातिर से बुलाता है, तब यह कहाँ की भलमनसाहत हैं कि आप उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर दें?

लालाजी मुजरा सुनने चले गये, दो बजे लौटे। चुपके से आकर नौकर को जगाया और अपने कमरे में आकर लेट रहे। लीला उनकी राह देखती, प्रतिक्षण विकल-वेदना का अनुभव करती हुई न-जाने कब सो गयी थी।

अन्त को इस बीमारी ने अभागिनी लीला की जान ही लेकर छोड़ा। लालाजी को उसके मरने का बड़ा दुःख हुआ। मित्रों ने समवेदना के तार भेजें। एक दैनिक पत्र ने शोक प्रकट करते हुए लीला की मानसिक और धार्मिक सदगुणों को खूब बढ़ाकर वर्णन किया। लालाजी ने इस सभी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद दिया और लीला के नाम से बालिका-विद्यालय में पाँच वजीफे प्रदान किये तथा मृतक-भोज तो जितने समारोह से किया गया, वह नगर के इतिहास में बहुत दिनों तक याद रहेगा।

लेकिन एक महीना भी न गुजरने पाया था कि लालाजी के मित्रों ने चारा डालना शुरू कर दिया और उसका यह असर हुआ कि छः महीने की विधुरता के तप के बाद उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। आखिर बेचारे क्या करते? जीवन में एक सहचरी की आवश्यकता तो थी ही और इस उम्र में तो एक तरह से अनिवार्य हो गयी थी।

2

जब से नयी पत्नी आयी, लीलाजी के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया।

दूकान से अब इतना प्रेम नही था। लगातार हफ्तों न जाने में भी उनके कारबार में कोई हर्ज नहीं होता था। जीवन के उपभोग की जो शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, अब वह छीटें पाकर सजीव हो गयी थी, सूखा पेड़ हरा हो गया था, उसमें नयी-नयी कोपलें फूटने लगी। मोटर नयी आ गयी थी, कमरे नये फर्नीचर से सजा दिये गये थे, नौकरों की भी संख्या बढ़ गयी थी, रेडियो आ पहुँचा था और प्रतिदिन नये-नये उपहार आते रहते थे। लालाजी की बूढ़ी जवानी जवानों की जवानी से भी प्रखर हो गयी थी, उसी तरह जैसे बिजली का प्रकाश चन्द्रमा से ज्यादा स्वच्छ और मनोरंजक होता हैं। लालाजी को उनके मित्र इस रूपान्तर पर बधाइयाँ देते, जब वे गर्व के साथ कहते - भाई, हम तो हमेशा जवान रहे और हमेशा जवान रहेंगे। बुढ़ापा यहाँ आये तो उसके मुँह में कालिख लगाकर गधे पर उलटा सवार कराके शहर से निकाल दे। जवानी का उम्र से उतना ही सम्बन्ध है; जितना धर्म का आचार से, रुपये का ईमानदारी से, रूप का श्रृंगार से। आजकल के जवानों को आप जवान कहते हैं? उनकी एक हजार जवानियों को अपने एक घंटे से भी न बदलूँगा। मालूम होता हैं उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह ही नहीं, कोई शौक नहीं। जीवन क्या है, गले में पड़ा हुआ एक ढोल है।

यही शब्द घटा-बढ़ाकर वे आशा के हृदय-पटल पर अंकित करते रहते थे। उससे बारबर सिनेमा, थियेटर और दरिया की सैर के लिए आग्रह करते रहते। लेकिन आशा को न जाने क्यों इन बातों में जरा भी रुचि न थी। वह जाती तो थी, मगर बहुत टाल-टूट के बाद। एक दिन लालाजी ने आकर कहा- चलो, आज बजरे पर दरिया की सैर करे।

वर्षा के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था, मेघ-मालाएँ अन्तर्राष्ट्रीय सेनाओं की भाँति रंग-विरंगी वर्दियाँ पहने आकाश में कवायद कर रही थीं। सड़क पर लोग मलार और बारहमासा गाते चलते थे। बागों में झूले पड़ गये थे।

आशा ने बेदिली से कहा- मेरा जी तो नहीं चाहता।

लालाजी ने मृदु प्रेरणा के साथ कहा- तुम्हारा मन कैसा हैं जो आमोद-प्रमोद की

ओर आकर्षित नहीं होता? चलो, जरा दरिया की सैर देखो। सच कहता हूँ, बजरे पर बड़ी बहार रहेगी।

'आप जायँ। मुझे और कई काम करने हैं।'

'काम करने के लिए आदमी हैं। तुम क्यों काम करोगी?'

'महाराज अच्छे सालन नहीं पकाता। आप खाने बैठेगे तो यो ही उठ जायँगे।'

लीला अपने अवकाश का बड़ा भाग लालाजी के लिए तरह-तरह का भोजन पकाने में लगाती थी। उसने किसी से सुन रखा था कि एक विशेष अवस्था के बाद पुरुष के जीवन का सबसे बड़ा सुख, रसना का स्वाद ही रह जाता हैं।

लालाजी की आत्मा खिल उठी। उन्होंने सोचा कि आशा को उनसे कितना प्रेम हैं कि दरिया की सैर को उनकी सेवा के लिए छोड़ रही हैं। एक लीला थी कि 'मान-न-मान' चलने को तैयार रहती थी। पीछा छुड़ाना पड़ता था, ख्वामख्वाह सिर पर सवार हो जाती थी और सारा मजा किरकिरा कर देती थी।

स्नेह-भरे उलहने से बोले- तुम्हारा मन भी विचित्र हैं। अगर एक दिन सालन फीका ही रहा, ऐसा क्या तूफान आ जायगा? तुम तो मुझे बिलकुल निकम्मा बनाये देती हो। अगर तुम न चलोगी, तो मै भी न जाऊँगा।

आशा ने जैसे गले से फन्दा छुड़ाते हुए कहा- आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमा-घुमाकर मेरा मिजाज बिगाड़ देते हैं। यह आदत पड़ जायगी, तो घर का धन्धा कौन करेगा?

'मुझे घर के धन्धे की रत्ती-भर भी परवा नहीं- बाल की नोक बराबर भी नही? मै चाहता हूँ कि तुम्हारा मिजाज बिगड़े और तुम इस गृहस्थी की चक्की से दूर रहो और तुम मुझे बार-बार आप क्यों कहती हो? मैं चाहता हूँ, तुम मुझे तुम कहो, तू कहो, गालियाँ दो, धौल जमाओ। तुम तो मुझे आप कहकर जैसे देवता के

सिंहासन पर बैठा देती हो। मैं अपने घर का देवता नही, चंचल बालक बनना चाहता हूँ'

आशा ने मुसकराने की चेष्टा करके कहा- भला, मैं आपको 'तुम' कहूँगी। तुम बराबर वाले को कहा जाता हैं कि बड़ो को?

मुनीम ने एक लाख के घाटे की खबर सुनायी होती, तो भी शायद लालाजी को इतना दुःख न होता, जितना आशा के इन कठोर शब्दो से हुआ। उनका सारा उत्साह, सारा उल्लास जैसे ठंड़ा पड़ गया। सिर पर बाँकी रखी हुई फूलदार टोपी , गले में पड़ी हुई जोगियें रंग की चुनी हुई रेशमी चादर, वह तंजेब का बेलदार कुर्ता, जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे यह सारा ठाठ कैसे उन्हें हास्यजनक जान पड़ने लगा, जैस वह सारा नशा किसी मन्त्र से उतर गया हो।

निराश होकर बोले- तो तुम्हें चलना हैं या नहीं।

'मेरी जी नहीं चाहता।'

'तो मैं भी न जाऊँगा?'

'मैं आपको कब मना करती हूँ?'

'फिर 'आप' कहा?'

आशा ने जैसे भीतर से जोर लगा कर कहा 'तुम' और उसका मुखमंडल लज्जा से आरक्त हो गया।

'हाँ, इसी तरह 'तुम' कहा कहो। तो तुम नहीं चल रही हो? अगर मैं कहूँ, तुम्हें चलना पड़ेगा?'

'तब चलूँगी। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म हैं।'

लालाजी आज्ञा न दे सके। आज्ञा और धर्म जैसे शब्द उनके कानों में चुभने-से लगे। खिसियाते हुए बाहर को चल पड़े; उस वक़्त आशा को उनपर दया आ गयी। बोली- तो कब तक लौटोगे?

'मै नहीं जा रहा हूँ।'

'अच्छा, तो मै भी चलती हूँ।'

जैसे कोई जिद्दी लड़का रोने के बाद अपनी इच्छित वस्तु पाकर उसे पैरो से ठुकरा देता हैं, उसी तरह लालाजी ने मुँह बनाकर कहा- तुम्हारा जी नहीं चलता, तो न चलो। मैं आग्रह नहीं करता।

'आप नहीं, तुम बुरा मान जाओगे।'

आशा गयी, लेकिन उमँग से नही। जिस मालूमी वेश में थी, उसी तरह चल खड़ी हूई। न कोई सजीली साड़ी, न जड़ाऊ गहने, न कोई सिंगार, जैसे कोई विधवा हो।

ऐसी ही बातों पर लालाजी मन में झुझला उठते थे। ब्याह किया था, जीवन का आनन्द उठाने के लिए, झिलमिलाते हुए दीपक में तेल डालकर उसे और चटक करने के लिए। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हुआ, तो तेल डालने से लाभ? न-जाने इसका मन क्यों इतना शुष्क और नीरस हैं, जैसे कोई ऊसर का पेड़ हो, कितना ही पानी डालो, उससे हरी पत्तियों के दर्शन न होगे। जड़ाऊ गहनों से भरी पेटारियाँ खुली हुई हैं, कहाँ-कहाँ से मँगवाये - दिल्ली से, कलकते से, फ्रांस से। कैसी-कैसी बहुमूल्य साडियाँ रखी हुई हैं। एक नहीं, सैकड़ो। पर केवल सन्दूक में कीड़ो का भोजन बनने के लिए। दरिद्र घर की लड़कियों में यही ऐब होता हैं। उनकी दृष्टि सदैव संकीर्ण रही हैं। न खा सकें, न पहने सकें, न दे सकें। उन्हें तो खजाना भी मिल जाय, तो यही सोचती रहेगी कि खर्च कैसे करें।

दरिया की सैर तो हुई, पर विशेष आनन्द न आया

3

कई महीनों तक आशा की मनोवृत्तियाँ जगाने का असफल प्रयत्न करके लालाजी ने समझ लिया कि इनकी पैदाइश ही मुहर्रमी हैं। लेकिन फिर भी निराश न हुए। ऐसे व्यापार में एक बड़ी रकम लगाने के बाद वे उसेमें अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की वणिक-प्रवृति को कैसे त्याग देते? विनोद की नयी-नयी योजनाएँ पैदा की जाती- ग्रामोफोन अगर बिगड़ गया हैं, गाता नहीं, या साफ आवाज नहीं निकलती, तो उसकी मरम्मत करानी पडेगी। उसे उठाकर रख देना, तो मूर्खता हैं।

इधर बूढ़ा महाराज एकाएक बीमार होकर घर चला गया था, और उसकी जगह उसका सत्रह-अठारह साल का जवान लड़का आ गया - कुछ आवाज गँवार था, बिलकुल झंगड़, उजड्ड। कोई बात ही न समझता था। जितने फुलके बनाता उतनी तरह के। हाँ, एक बात समान होती। सब बीच में मोटे होते, किनारे पतले। दाल कभी तो इतनी पलती जैसे चाय, कभी इतनी गाढी जैसे दही। नमक कभी इतना तेज की नींबू का शाकीन। आशा मुँह-हाथ धोकर चौके में पहुँच जाती और इस अपोरशंख को भोजन पकाना सिखाती। एक दिन उसने कहा- तुम कितने नालायक आदमी हो जुगल। आखिर इतनी उम्र तक तुम घास खोदते रहे या भाड़ झोकते रहे कि फुलके तक नही बना सकते? जुगल आँखों में आँसू भर कर कहता- बहूजी, अभी मेरी उम्र ही क्या हैं? सत्रहवाँ ही तो पूरा हुआ हैं।

आशा को उसकी बात पर हँसी आ गयी। उसने कहा- तो रोटियाँ पकाना क्या दस-पाँच साल में आता हैं।

'आप एक महीना सिखा दे बहूजी, फिर देखिए, मै आपको कैसे फुलके खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाय। जिस दिन मुझे फुलके बनाने आ जायँगे, मै आपसे कोई इनाम लूँगा। सालन तो अब मैं कुछ-कुछ बनाने लगा हूँ, क्यो न?'

आशा ने हौसला बढाने वाली मुसकराहट के साथ कहा- सालन नहीं, वो बनाना आता हैं। अभी कल ही नमक इतना तेज था कि खाया न गया। मसाले में

कचाँध आ रही थी।

'मै जब सालन बना रहा था, तब आप यहाँ कब थी?'

'अच्छा, तो मैं यहाँ बैठी रहूँ, तब तुम्हारा सालन बढिया पकेगा?'

'आप बैठी रहती हैं, तब मेरी अक्ल ठिकाने रहती हैं।'

आशा को जुगल की इन भोली बातों पर खूब हँसी आ रही थी। हँसी को रोकना चाहती थी, पर वह किसी तरह निकल पड़ती थी जैसे भरी बोतल उँडेल दी गयी हो।

'और मैं नही रहती तब?'

'तब तो आपके कमरे के द्वार पर जा बैठता हूँ। यहाँ बैठ कर अपनी तकदीर को रोता हूँ।'

आशा ने हँसी को रोक कर पूछा- क्यों, रोते हो?

'यह न पूछिए बहुजी, आप इन बातों को नहीं समझेगी।'

आशा ने उसके मुँह की ओर प्रश्न की आँखो से देखा। उसका आशय कुछ तो समझ गयी, पर न समझने का बहाना किया।

'तुम्हारे दादा आ जायँगे; तब तुम चले जाओगे?'

'और क्या करूँगा बहूजी। यहाँ कोई काम दिलवा दीजिएगा, तो पड़ा रहूँगा। मुझे मोटर चलाना सिखवा दीजिए। आपको खूब सैर कराया करूँगा। नहीं, नहीं बहूजी आप हट जाइए, मै पतीली उतार लूँगा। ऐसी अच्छी साड़ी हैं आपकी, कहीं कोई दाग पड़ जाय, तो क्या हो?'

आशा पतीली उतार रही थी। जुगल ने उसके हाथ से सँडसी ले लेनी चाही।

'दूर रहो। फूहड़ तो तुम हो ही। कहीं पतीली पाँव पर गिरा ली, तो महीनों झींकोगे।'

जुगल के मुख पर उदासी छा गयी।

आशा ने मुसकराकर पूछा- क्यों, मुँह क्यो लटक गया सरकार का?

जुगल रुआँसा होकर बोला- आप मुझे डाँट देती है, बहूजी, तब मेरा दिल टूट जाता हैं। सरकार कितनी ही घुड़के, मुझे बिलकुल ही दुःख नहीं होता। आपकी नजर कड़ी देखकर मेरा खून सर्द हो जाता हैं।

आशा ने दिलासा दिया- मैंने तुम्हें डाँटा तो नहीं, केवल यहीं तो कहा कि कहीं पतीली तुम्हारे पाँव पर गिर पड़े तो क्या हो?

'हाथ ही तो आपका भी हैं। कहीं आपके ही हाथ से छूट पड़े तो?'

लाला डंगामल ने रसोई-घर के द्वार पर आकर कहा- आशा, जरा यहाँ आना। देखो, तुम्हारे लिए कितने सुन्दर गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जायँगे। तुम यहाँ धुएँ-धक्कड़ में क्यों हलाकान होती हो? इस लड़के से कह दो कि जल्दी महाराज को बुलाये। नहीं तो मैं दूसरा आदमी रख लूँगा। महाराजों की कमी नहीं हैं। आखिर कब तक कोई रिआयत करे, गधे को जरा भी तमीज नहीं आयी। सुनता है जुगल, लिख दे आज अपने बाप को।

चूल्हें पर तवा रखा हुआ था। आशा रोटियाँ बेलने में लगी थी। जुगल तवे के लिए रोटियों का इन्तजार कर रहा था। ऐसी हालत में भला आशा कैसे गमले देखने जाती?

उसने कहा- जुगल रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेल डालेगा।

लालाजी ने कुछ चिढकर कहा- अगर रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेलेगा, तो निकल दिया जायगा!

आशा अनसुनी करके बोली- दस-पाँच दिन में सीख जायगा, निकालने की क्या जरूरत हैं?

'तुम आकर बतला दो, गमले कहाँ रखे जायँ'

'कहती तो हूँ रोटियाँ बेलकर आती हूँ'

'नहीं, मै कहता हूँ तुम रोटियाँ मत बेलो।'

'आप तो ख्वामख्वाह जिद करते हैं।'

लालाजी सन्नाटे में आ गये। आशा ने कभी इतनी रुखाई से उन्हें जवान न दिया था और यह केवल रुखाई न थी, इसमें कटुता भी थी। लज्जित होकर चले गये। उन्हें ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन गमलों को तोड़ कर फेंक दें और सारे पौधों को चूल्हें में डाल दे।

जुगल ने सहमे हुए स्वर में कहा- आप चली जायँ बहूजी, सरकार बिगड़ जायँगे।

'बको मत; जल्दी-जल्दी फुलके सेंको, नहीं तो निकाल दिये जाओगे। और अज मुझसे रुपये लेकर अपने लिए कपड़े बनवा लो। भिखमंगों की-सी सूरत बनाये घूमते है। और बाल क्यों इतने बढ़ा रखे हैं? तुम्हें नाई भी नहीं जुड़ता?'

जुगल ने दूर की बात सोची। बोला- कपड़े बनवा लूँ, तो दादा को हिसाब क्या दूँगा?

'अरे पागल! मैं हिसाब में नही देने कहती। मुझसे ले जाना।'

जुगल काहिलपन की हँसी हँसा।

'आप बनवायेंगी, तो अच्छे कपड़े लूँगा। खद्दर के मलमल का कुर्ता, खद्दर की धोती, रेशमी चादर , अच्छा-सा चप्पल।'

आशा ने मीठी मुसकान से कहा- और अगर अपने दाम से बनवाने पड़े।

'तब कपड़े ही क्यों बनवाऊँगा?'

'बड़े चालाक हो तुम।'

जुगल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया - आदमी अपने घर में सूखी रोटियाँ खाकर सो रहता हैं, लेकिन दावत में तो अच्छे-अच्छे पकवान ही खाता हैं। वहाँ भी यदि सूखी रोटियाँ मिले, तो वह दावत में जाय ही नहीं।

'यह सब नहीं जानती। एक गाढे का कुर्ता बनवा लो और एक टोपी ले लो, हजामत के लिए दो आने ऊपर से ले लो।'

जुगल ने मान करके कहा- रहने दीजिए। मैं नहीं लेता। अच्छे कपड़े पहन कर निकलूँगा, तब तो आपकी याद आवेगी। सड़ियल कपड़े पहने कर तो और जी जलेगा।

'तुम स्वार्थी हो, मुफ्त के कपड़े लोगे और साथ ही बढिया भी।'

'जब यहाँ से जाने लगूँ, तब आप मुझे अपना एक चित्र दीजिएगा।'

'मेरा चित्र लेकर क्या करोगे?'

'अपनी कोठरी में लगाऊँगा और नित्य देखा करूँगा। बस, वही साड़ी पहन कर खिचवाना, जो कल पहनी थी और वही मोतियों की माला भी हो। मुझे नंगी-नंगी सूरत अच्छी नहीं लगती। आपके पास तो बहुत गहने होंगे। आप पहनती क्यों नहीं!'

'तो तुम्हें गहने अच्छे लगते हैं?'

'बहुत।'

लालाजी ने फिर आकर जलते हुए मन से कहा- अभी तक तुम्हारी रोटियाँ नहीं पकीं जुगल? अगर कल से तूने अपने-आप अच्छी रोटियाँ न पकायी तो मैं तुझे निकाल दूँगा।

आशा ने तुरन्त हाथ-मुँह धोया और बड़े प्रसन्न मन से लालाजी के साथ गमले देखने चली। इस समय उसकी छवि में प्रफुल्लता का रौनक था, बातों में भी जैसे शक्कर घुली हुई थी। लालाजी का सारा खिसियानापन मिट गया था।

उसने गमलों को क्षुब्ध आँखों से देखा। उसने कहा- मैं इनमें से कोई गमला न जाने दूँगी। सब मेरे कमरे के सामने रखवाना, सब! कितने सुन्दर पौधे हैं, वाह! इनके हिन्दी नाम भी मुझे बतला देना।

लालाजी ने छेड़ा- सब गमले क्या करोगी? दस-पाँच पसन्द कर लो। शेष मैं बाहर रखना दूँगा।

'जी नहीं। मैं एक भी न छोड़ूँगी। सब यहीं रखे जायँगे।'

'बड़ी लालचिन हो तुम।'

'लालचिन ही सही। मै आपको एक भी न दूँगी।'

'दो-चार तो दे दो? इतनी मेहनत से लाया हूँ।'

'जी नहीं, इनमें से एक भी न मिलेगा।'

दूसरे दिन आशा ने अपने को आभूषण से खूब सजाया और फीरोजी साड़ी पहनकर निकली, तब लालाजी की आँखों में ज्योति आ गयी। समझे, अवश्य ही अब उनके प्रेम का जादू 'कुछ-कुछ' चल रहा हैं। नहीं तो उनके बार-बार के आग्रह करने पर भी, बार-बार याचना करने पर भी, उसने कोई आभूषण न पहना था। कभी-कभी मोतियों का हार गले में डाल लेती थी, वह भी ऊपरी मन से। आज वह आभूषणों से अलंकृत होकर फूली नहीं समाती, इतराती जाती है, मानो कहती हो, देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ।

पहले जो बन्द कली थी, वह आज खिल गयी थी।

लालाजी पर घड़ो का नशा चढा हुआ था। वे चाहते थे, उनके मित्र और बन्धु-वर्ग आकर इस सोने की रानी के दर्शनों से अपनी आँखें ठंढ़ी करें। देखें कि वह कितनी सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न हैं। जिन विद्रोहियों ने विवाह के समय तरह-तरह की शंकाएँ की थी, वे आँखें खोलकर देखे कि डंगामल कितना सुखी हैं। विश्वास, अनुराग और अनुभव ने चमत्कार किया हैं?

उन्होंने प्रस्ताव किया- चलो, कहीं घूम आयें। बड़ी मजेदार हवा चल रही हैं।

आशा इस वक़्त कैसे जा सकती थी? अभी उसे रसोई में जाना था, वहाँ से कहीं बारह-एक बजे फुर्सत मिलेगी। घर के दूसरे धन्धे सिर पर 'सवार' हो जायँगे। सैर-सपाटे के पीछे क्या घर चौपट कर दे?

सेठजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा- नहीं, आज मैं तुम्हें रसोई में न जाने दूँगा।

'महाराज के किये कुछ न होगा'

'तो आज उसकी शामत भी आ जायगी।'

आशा के मुख पर से वह प्रफुल्लता जाती रहीं। मन भी उदास हो गया। एक

सोफा पर लेट कर बोली- आज न-जाने क्यों कलेजे में मीठा-मीठा दर्द हो रहा हैं। ऐसा दर्द कभी नहीं होता था।

सेठजी घबरा उठे।

'यह दर्द कब से हो रहा हैं?'

'हो तो रहा हैं रात से ही, लेकिन अभी कुछ कम हो गया था। अब फिर होने लगा हैं। रह-रह कर जैसे चुभन हो जाती हैं।'

सेठजी एक बात सोचकर दिल-ही-दिल में फूल उठे। अब वे गोलियाँ रंग ला रही हैं। राजबैद्यजी ने कहा भी था कि जरा सोच-समझ कर इनका सेवन कीजिएगा। क्यों न हो! खानदानी वैद्य हैं। इनके बाप बनारस के महाराजा के चिकित्सक थे। पुराने और परीक्षित नुस्खे हैं इनके पास। उन्होंने कहा- तो रात से ही यह दर्द हो रहा? तुमने मुझसे कहा नहीं तो बैद्यजी से कोई दवा मँगवाता।

'मैने समझा था, आप-ही-आप अच्छा हो जायगा, मगर अब बढ़ रहा हैं।'

'कहाँ दर्द हो रहा हैं? जरा देखू! कुछ सूजन तो नहीं हैं?'

सेठजी ने आशा के आँचल की तरफ हाथ बढ़ाया। आशा ने शर्माकर सिर झुका लिया। उसने कहा- यह तुम्हारी शरारत मुझे अच्छी नही लगती। मैं अपनी जान से मरती हूँ तुम्हें हँसी सूझती हैं। जाकर कोई दवा ला दो।

सेठजी अपने पुंसत्व का यह डिप्लोमा पाकर उससे कहीं ज्यादा प्रसन्न हए, जितना रायबहादुरी पाकर होते। इस विजय का डंका पीटे बिना उन्हें कैसे चैन आ सकता था? जो लोग उनके विवाह के विषय में द्वेषमय टिप्पणियाँ कर रहे थे, उन्हें नीचा दिखाने का कितना अच्छा अवसर हाथ आया हैं और इतनी जल्दी।

पहले पंड़ित भोलानाथ के पास गये और भाग्य ठोंक कर बोले- भई, मैं तो बड़ी विपत्ति में फँस गया। कल से कलेजे में दर्द हो रहा हैं। कुछ बुद्धि काम नहीं करती। कहती हैं ; ऐसा दर्द पहले कभी नहीं हुआ।

भोलानाथ ने कुछ बहुत हमदर्दी न दिखायी।

सेठजी यहाँ से उठ कर अपने दूसरे मित्र लाला फागमल के पास पहुँचे, और उनसे भी लगभग इन्हीं शब्दों में यह शोक-सम्वाद कहा।

फागमल बड़ा शोहदा था। मुसकरा कर बोला- मुझे तो आपकी शरारत मालूम होती हैं।

सेठजी की बाँछे खिल गयी। उन्होंने कहा- मैं अपनी दुःख सुना रहा हूँ और तुम्हें दिल्लगी सूझती हैं, जरा भी आदमीयत तुममें नहीं हैं।

'मै दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। इसमे दिल्लगी की क्या बात हैं? वे हैं कमसिन, कोमलांगी, आप ठहरे पुराने लठैत, दंगल के पहलवान! बस! अगर यह बात न निकले, तो मूँछे मुड़ा लूँ।'

सेठजी की आँखे जगमगा उठी। मन में यौवन की भावना प्रबल हो उठी और उसके साथ ही मुख पर भी यौवन की झलक आ गयी। छाती जैसे कुछ फैल गयी। चलते समय उनके पग कुछ अधिक मजबूती से जमीन पर पड़ने लगे और सिर की टोपी भी न जाने कैसे बाँकी हो गयी। आकृति से बाँकपन का शान बरसने लगी।

5

जुगल ने आशा को सिर से पाँव तक जगमगाते देखकर कहा- बस बहूजी आप इसी तरह पहने-ओढ़े रहा करें। आज मैं आपको चूल्हे के पास न आने दूँगा।

आशा ने नयन-बाण कर कहा- क्यों, आज यह नया हुक्म क्यों? पहले तो तुमने कभी मना नहीं किया।

'आज की बात दूसरी हैं।'

'जरा सुनूँ, क्या बात हैं?'

'मैं डरता हूँ, आप कहीं नाराज न हो जायँ?'

'नहीं-नहीं, कहो, मैं नाराज न होऊँगी।'

'आज आप बहुत सुन्दर लग रही हैं।'

लाला डंगामल ने असंख्य बार आशा के रूप और यौवन की प्रशंसा की थी; मगर उनकी प्रशंसा में उसे बनावट की गन्ध आती था। वह शब्द उनके मुख से निकलकर कुछ ऐसे लगते थे, जैसे कोई पंगु दौड़ने की चेष्ठा कर रहा हो। जुगल के इन सीधे शब्दों में एक उन्माद था, नशा था, एक चोट थी? आशा की सारी देह प्रकम्पित हो गयी।

'तुम मुझे नजर लगा दोगे जुगल, इस तरह क्यों घूरते हो?'

'जब यहाँ से चला जाऊँगा, तब आपकी बहुत याद आयेगी।'

'रसोई पका कर तुम सारे दिन क्या किया करते हो? दिखायी नहीं देते!'

'सरकार रहते हैं, इसीलिए नहीं आता। फिर अब तो मुझे जवाब मिल रहा हैं। देखिए, भगवान् कहाँ ले जाते हैं।'

आशा की मुख-मुद्रा कठोर हो गयी। उसने कहा- कौन तुम्हें जवाब देता हैं?

'सरकार ही तो कहते हैं, तुझे निकाल दूँगा।'

'अपना काम किये जाओ; कोई नहीं निकालेगा। अब तो तुम फुलके भी अच्छे बनाने लगे।'

'सरकार हैं बड़े गुस्सेवर'

'दो-चार दिन में उनका मिजाज ठीक किये देती हूँ।'

'आपके साथ चलते हैं तो आपके बाप लगते हैं।'

'तुम बड़े मुँहफट हो। खबरदार, जबान-सँभाल कर बातें किया करो।'

किन्तु अप्रसन्नता का यह झीना आवरण उनके मनोरहस्य को न छिपा सका। वह प्रकाश की भाँति उसके अन्दर से निकला पड़ता था।

जुगल ने फिर उसी निर्भीकता से कहा- मेरा मुँह कोई बन्द कर ले, यहाँ यों सभी यही कहते हैं, मेरा ब्याह कोई 50 साल की बुढ़िया से कर दे, तो मैं घर छोड़कर भाग जाऊँ। या तो खुद जहर खा लूँ या उसे जहर देकर मार डालूँ। फाँसी ही तो होगी?

आशा उस कृमित्र क्रोध को कायम न रख सकी। जुगल ने उसकी हृदयवीणा के तारों पर मिजराब की ऐसी चोट मारी थी कि उसके बहुत जब्त करने पर भी मन की व्यथा बाहर निकल आयी। उसने कहा- भाग्य भी तो कोई वस्तु हैं।

'ऐसा भाग्य जाय भाड़ में।'

'तुम्हारा ब्याह किसी बुढ़िया से ही करूँगी, देख लेना।'

'तो मै भी जहर खा लूँगा। देख लीजिएगा।'

'क्यों बुढ़िया तुम्हे जवान स्त्री से ज्यादा प्यार करेगी, ज्यादा सेवा करेगी। तुम्हें सीधे रास्ते पर रखेगी।'

'यह सब माँ का काम हैं। बीवी जिस काम के लिए हैं, उसी काम के लिए हैं।'

'आखिर बीवी किस काम के लिए हैं?'

मोटर की आवाज आयी। न-जाने कैसे आशा के सिर का अंचल खिसककर कंधे पर आ गया। उसने जल्दी से अंचल खींच कर सिर पर कर लिया और यह कहती हुई अपने कमरे की ओर लपकी कि लाला भोजन करके चले जायँ, तब आना।

***

शूद्रा

मां और बेटी एक झोंपड़ी में गांव के उसे सिरे पर रहती थीं। बेटी बाग से पत्तियां बटोर लाती, मां भाड़-झोंकती। यही उनकी जीविका थी। सेर-दो सेर अनाज मिल जाता था, खाकर पड़ रहती थीं। माता विधवा था, बेटी क्वांरी, घर में और कोई आदमी न था। मां का नाम गंगा था, बेटी का गौरा!

गंगा को कई साल से यह चिन्ता लगी हुई थी कि कहीं गौरा की सगाई हो जाय, लेकिन कहीं बात पक्की न होती थी। अपने पति के मर जाने के बाद गंगा ने कोई दूसरा घर न किया था, न कोई दूसरा धन्धा ही करती थी। इससे लोगों को संदेह हो गया था कि आखिर इसका गुजर कैसे होता है! और लोग तो छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, फिर भी पेट-भर अन्न मयस्सर नहीं होता। यह स्त्री कोई धंधा नहीं करती, फिर भी मां-बेटी आराम से रहती हैं, किसी के सामने हाथ नहीं फैलातीं। इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य है। धीरे-धीरे यह संदेह और भी दृढ़ हो गया और अब तक जीवित था। बिरादरी में कोई गौरा से सगाई करने पर राजी न होता था। शूद्रों की बिरादरी बहुत छोटी होती है। दस-पांच कोस से अधिक उसका क्षेत्र नहीं होता, इसीलिए एक दूसरे के गुण-दोष किसी से छिपे नहीं रहते, उन पर परदा ही डाला जा सकता है।

इस भ्रांति को शान्त करने के लिए मां ने बेटी के साथ कई तीर्थ-यात्राएं कीं। उड़ीसा तक हो आयी, लेकिन संदेह न मिटा। गौरा युवती थी, सुन्दरी थी, पर उसे किसी ने कुएं पर या खेतों में हंसते-बोलते नहीं देखा। उसकी निगाह कभी ऊपर उठती ही न थी। लेकिन ये बातें भी संदेह को और पुष्ट करती थीं। अवश्य कोई- न- कोई रहस्य है। कोई युवती इतनी सती नहीं हो सकती। कुछ गुप-चुप की बात अवश्य है।

यों ही दिन गुजरते जाते थे। बुढ़िया दिनोंदिन चिन्ता से घुल रही थी। उधर सुन्दरी की मुख-छवि दिनोंदिन निहरती जाती थी। कली खिल कर फूल हो रही थी।

2

एक दिन एक परदेशी गांव से होकर निकला। दस-बारह कोस से आ रहा था। नौकरी की खोज में कलकत्ता जा रहा था। रात हो गयी। किसी कहार का घर पूछता हुआ गंगा के घर आया। गंगा ने उसका खूब आदर-सत्कार किया, उसके लिए गेहूं का आटा लायी, घर से बरतन निकालकर दिये। कहार ने पकाया, खाया, लेटा, बातें होने लगीं। सगाई की चर्चा छिड़ गयी। कहार जवान था, गौरा पर निगाह पड़ी, उसका रंग-ढंग देखा, उसकी सजल छवि ऑंखों में खुब गयी। सगाई करने पर राजी हो गया। लौटकर घर चला गया। दो-चार गहने अपनी बहन के यहां से लाया; गांव के बजाज ने कपड़े उधार दे दिये। दो-चार भाईबंदों के साथ सगाई करने आ पहुंचा। सगाई हो गयी, यही रहने लगा। गंगा बेटी और दामाद को आंखों से दूर न कर सकती थी।

परन्तु दस ही पांच दिनों में मंगरु के कानों में इधर-उधर की बातें पड़ने लगीं। सिर्फ बिरादरी ही के नहीं, अन्य जाति वाले भी उनके कान भरने लगे। ये बातें सुन-सुन कर मंगरु पछताता था कि नाहक यहां फंसा। पर गौरा को छोड़ने का ख्याल कर उसका दिल कांप उठता था।

एक महीने के बाद मं गरु अपनी बहन के गहने लौटाने गया। खाने के समय उसका बहनोई उसके साथ भोजन करने न बैठा। मंगरु को कुछ संदेह हुआ, बहनोई से बोला- तुम क्यों नहीं आते?

बहनोई ने कहा-तुम खा लो, मैं फिर खा लूंगा।

मंगरु –बात क्या है? तु खाने क्यों नहीं उठते?

बहनोई –जब तक पंचायत न होगी, मैं तुम्हारे साथ कैसे खा सकता हूं? तुम्हारे लिए बिरादरी भी नहीं छोड़ दूंगा। किसी से पूछा न गाछा, जाकर एक हरजाई से सगाई कर ली।

मंगरु चौके पर उठ आया, मिरजई पहनी और ससुराल चला आया। बहन खड़ी रोती रह गयी। उसी रात को वह किसी वह किसी से कुछ कहे-सुने बगैर, गौरा को छोड़कर कहीं चला गया। गौरा नींद में मग्न थी। उसे क्या खबर थी कि वह रत्न, जो मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, मुझे सदा के लिए छोड़े चला जा रहा है।

3

कई साल बीत गये। मंगरु का कुछ पता न चला। कोई पत्र तक न आया, पर गौरा बहुत प्रसन्न थी। वह मांग में सेंदुर डालती, रंग बिरंग के कपड़े पहनती और अधरों पर मिस्सी के धड़े जमाती। मंगरु भजनों की एक पुरानी किताब छोड़ गया था। उसे कभी-कभी पढ़ती और गाती। मंगरु ने उसे हिन्दी सिखा दी थी। टटोल-टटोल कर भजन पढ़ लेती थी।

पहले वह अकेली बैठली रहती। गांव की और स्त्रियों के साथ बोलते-चालते उसे शर्म आती थी। उसके पास वह वस्तु न थी, जिस पर दूसरी स्त्रियां गर्व करती थीं। सभी अपने-अपने पति की चर्चा करतीं। गौरा के पति कहां था? वह किसकी बातें करती! अब उसके भी पति था। अब वह अन्य स्त्रियों के साथ इस विषय पर बातचीत करने की अधिकारिणी थी। वह भी मंगरु की चर्चा करती, मंगरु कितना स्नेहशील है, कितना सज्जन, कितना वीर। पति चर्चा से उसे कभी तृप्ति ही न होती थी।

स्त्रियां- मंगरु तुम्हें छोड़कर क्यों चले गये?

गौरी कहती –क्या करते? मर्द कभी ससुराल में पड़ा रहता है। देश –परदेश में

निकलकर चार पैसे कमाना ही तो मर्दों का काम है, नहीं तो मान-मरजादा का निर्वाह कैसे हो?

जब कोई पूछता, चिट्ठ-पत्री क्यों नहीं भेजते? तो हंसकर कहती- अपना पता-ठिकाना बताने में डरते हैं। जानते हैं न, गौरा आकर सिर पर सवार हो जायेगी। सच कहती हूं उनका पता-ठिकाना मालूम हो जाये, तो यहां मुझसे एक दिन भी न रहा जाये। वह बहुत अच्छा करते हैं कि मेरे पास चिट्ठी-पत्री नहीं भेजते। बेचारे परदेश में कहां घर गिरस्ती संभालते फिरेंगे?

एक दिन किसी सहेली ने कहा- हम न मानेंगे, तुझसे जरुर मंगरु से झगड़ा हो गया है, नहीं तो बिना कुछ कहे-सुने क्यों चले जाते ?

गौरा ने हंसकर कहा- बहन, अपने देवता से भी कोई झगड़ा करता है? वह मेरे मालिक हैं, भला मैं उनसे झगड़ा करुंगी? जिस दिन झगड़े की नौबत आयेगी, कहीं डूब मरुंगी। मुझसे कहकर जाने पाते? मैं उनके पैरों से लिपट न जाती।

4

एक दिन कलकत्ता से एक आदमी आकर गंगा के घर ठहरा। पास ही के किसी गांव में अपना घर बताया। कलकत्ता में वह मंगरु के पड़ोस ही में रहता था। मंगरु ने उससे गौरा को अपने साथ लाने को कहा था। दो साड़ियां और राह-खर्च के लिये रुपये भी भेजे थे। गौरा फूली न समायी। बूढ़े ब्राह्मण के साथ चलने को तैयार हो गयी। चलते वक्त वह गांव की सब औरतों से गले मिली। गंगा उसे स्टेशन तक पहुंचाने गयी। सब कहते थे, बेचारी लड़की के भाग जग गये, नहीं तो यहाँ कुढ़-कुढ़ कर मर जाती।

रास्ते-भर गौरा सोचती – न जाने वह कैसे हो गये होंगे ? अब तो मूछें अच्छी तरह निकल आयी होंगी। परदेश में आदमी सुख से रहता है। देह भर आयी होगी। बाबू साहब हो गये होंगे। मैं पहले दो-तीन दिन उनसे बोलूंगी नहीं। फिर पूछूंगी-तुम मुझे

छोड़कर क्यों चले गये? अगर किसी ने मेरे बारें में कुछ बुरा-भला कहा ही था, तो तुमने उसका विश्वास क्यों कर लिया? तुम अपनी आंखों से न देखकर दूसरों के कहने पर क्यों गये? मैं भली हूं या बूरी हूं, हूं तो तुम्हारी, तुमने मुझे इतने दिनों रुलाया क्यो? तुम्हारे बारे में अगर इसी तरह कोई मुझसे कहता, तो क्या मैं तुमको छोड़ देती? जब तुमने मेरी बांह पकड़ ली, तो तुम मेरे हो गये। फिर तुममें लाख एब हों, मेरी बला से। चाहे तुम तुर्क ही क्यों न हो जाओ, मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती। तुम क्यों मुझे छोड़कर भागे? क्या समझते थे, भागना सहज है? आखिर झख मारकर बुलाया कि नहीं? कैसे न बुलाते? मैंने तो तुम्हारे ऊपर दया की, कि चली आयी, नहीं तो कह देती कि मैं ऐसे निर्दयी के पास नहीं जाती, तो तुम आप दौड़े आते। तप करने से देवता भी मिल जाते हैं, आकर सामने खड़े हो जाते हैं, तुम कैसे न आते? वह धरती बार-बार उद्विग्न हो-होकर बूढ़े ब्राह्मण से पूछती, अब कितनी दूर है? धरती के छोर पर रहते हैं क्या? और भी कितनी ही बातें वह पूछना चाहती थी, लेकिन संकोच-वश न पूछ सकती थी। मन-ही-मन अनुमान करके अपने को सन्तुष्ट कर लेती थी। उनका मकान बड़ा-सा होगा, शहर में लोग पक्के घरों में रहते हैं। जब उनका साहब इतना मानता है, तो नौकर भी होगा। मैं नौकर को भगा दूंगी। मैं दिन-भर पड़े–पड़े क्या किया करूंगी?

बीच-बीच में उसे घर की याद भी आ जाती थी। बेचारी अम्मा रोती होंगी। अब उन्हें घर का सारा काम आप ही करना पड़ेगा। न जाने बकरियों को चराने ले जाती है। या नहीं। बेचारी दिन-भर में-में करती होंगी। मैं अपनी बकरियों के लिए महीने-महीने रुपये भेजूंगी। जब कलकत्ता से लौटूंगी तब सबके लिए साड़ियां लाऊंगी। तब मैं इस तरह थोड़े लौटूंगी। मेरे साथ बहुत-सा असबाब होगा। सबके लिए कोई-न-कोई सौगात लाऊंगी। तब तक तो बहुत-सी बकरियां हो जायेंगी।

यही सुख स्वप्न देखते-देखते गौरा ने सारा रास्ता काट दिया। पगली क्या जानती थी कि मेरे मान कुछ और कर्त्ता के मन कुछ और। क्या जानती थी कि बूढ़े ब्राह्मणों के भेष में पिशाच होते हैं। मन की मिठाई खाने में मग्न थी।

तीसरे दिन गाड़ी कलकत्ता पहुंची। गौरा की छाती धड़-धड़ करने लगी। वह यहीं-कहीं खड़े होंगें। अब आते हीं होंगे। यह सोचकर उसने घूंघट निकाल लिया और संभल बैठी। मगर मगरु वहां न दिखाई दिया। बूढ़ा ब्राह्मण बोला-मंगरु तो यहां नहीं दिखाई देता, मैं चारों ओर छान आया। शायद किसी काम में लग गया होगा, आने की छुट्टी न मिली होगी, मालूम भी तो न था कि हम लोग किसी गाड़ी से आ रहे हैं। उनकी राह क्यों देखें, चलो, डेरे पर चलें।

दोनों गाड़ी पर बैठकर चले। गौरा कभी तांगे पर सवार न हुई थी। उसे गर्व हो रहा था कि कितने ही बाबू लोग पैदल जा रहे हैं, मैं तांगे पर बैठी हूं।

एक क्षण में गाड़ी मंगरु के डेरे पर पहुंच गयी। एक विशाल भवन था, आहाता साफ-सुथरा, सायबान में फूलों के गमले रखे हुए थे। ऊपर चढ़ने लगी, विस्मय, आनन्द और आशा से। उसे अपनी सुधि ही न थी। सीढ़ियों पर चढ़ते–चढ़ते पैर दुखने लगे। यह सारा महल उनका है। किराया बहुत देना पड़ता होगा। रुपये को तो वह कुछ समझते ही नहीं। उसका हृदय धड़क रहा था कि कहीं मंगरु ऊपर से उतरते आ न रहें हों सीढ़ी पर भेंट हो गयी, तो मैं क्या करुंगी? भगवान करे वह पड़े सोते रहे हों, तब मैं जगाऊं और वह मुझे देखते ही हड़बड़ा कर उठ बैठें। आखिर सीढ़ियों का अन्त हुआ। ऊपर एक कमरें में गौरा को ले जाकर ब्राह्मण देवता ने बैठा दिया। यही मंगरु का डेरा था। मगर मंगरु यहां भी नदारद! कोठरी में केवल एक खाट पड़ी हुई थी। एक किनारे दो-चार बरतन रखे हुए थे। यही उनकी कोठरी है। तो मकान किसी दूसरे का है, उन्होंने यह कोठरी किराये पर ली होगी। मालूम होता है, रात को बाजार में पूरियां खाकर सो रहे होंगे। यही उनके सोने की खाट है। एक किनारे घड़ा रखा हुआ था। गौरा को मारे प्यास के तालू सूख रहा था। घड़े से पानी उड़ेल कर पिया। एक किनारे पर एक झाड़ू रखा था। गौरा रास्ते की थकी थी, पर प्रेम्मोल्लास में थकन कहां? उसने कोठरी में झाड़ू लगाया, बरतनों को धो-धोकर एक जगह रखा। कोठरी की एक-एक वस्तु यहां तक कि उसकी फर्श और दीवारों में उसे आत्मीयता की झलक दिखायी देती थी। उस घर में भी, जहां

उसे अपने जीवन के २५ वर्ष काटे थे, उसे अधिकार का ऐसा गौरव-युक्त आनन्द न प्राप्त हुआ था।

मगर उस कोठरी में बैठे-बैठे उसे संध्या हो गयी और मंगरु का कहीं पता नहीं। अब छुट्टी मिली होगी। सांझ को सब जगह छुट्टी होती है। अब वह आ रहे होंगे। मगर बूढ़े बाबा ने उनसे कह तो दिया ही होगा, वह क्या अपने साहब से थोड़ी देर की छुट्टी न ले सकते थे? कोई बात होगी, तभी तो नहीं आये।

अंधेरा हो गया। कोठरी में दीपक न था। गौरा द्वार पर खड़ी पति की बाट देख रहीं थी। जाने पर बहुत-से आदमियों के चढ़ते-उतरने की आहट मिलती थी, बार-बार गौरा को मालूम होता था कि वह आ रहे हैं, पर इधर कोई नहीं आता था।

नौ बजे बूढ़े बाबा आये। गौरी ने समझा, मंगरु है। झटपट कोठरी के बाहर निकल आयी। देखा तो ब्राह्मण! बोली-वह कहां रह गये?

बूढ़ा–उनकी तो यहां से बदली हो गयी। दफ्तर में गया था तो मालूम हुआ कि वह अपने साहब के साथ यहां से कोई आठ दिन की राह पर चले गये। उन्होंने साहब से बहुत हाथ-पैर जोड़े कि मुझे दस दिन की मुहलत दे दीजिए, लेकिन साहब ने एक न मानी। मंगरु यहां लोगों से कह गये हैं कि घर के लोग आयें तो मेरे पास भेज देना। अपना पता दे गये हैं। कल मैं तुम्हें यहां से जहाज पर बैठा दूंगा। उस जहाज पर हमारे देश के और भी बहुत से होंगे, इसलिए मार्ग में कोई कष्ट न होगा।

गौरा ने पूछा- कै दिन में जहाज पहुंचेगा?

बूढ़ा- आठ-दस दिन से कम न लगेंगे, मगर घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें किसी बात की तकलीफ न होगी।

अब तक गौरा को अपने गांव लौटने की आशा थी। कभी-न-कभी वह अपने पति को वहां अवश्य खींच ले जायेगी। लेकिन जहाज पर बैठाकर उसे ऐसा मालूम हुआ कि अब फिर माता को न देखूंगी, फिर गांव के दर्शन न होंगे, देश से सदा के लिए नाता टूट रहा है। देर तक घाट पर खड़ी रोती रही, जहाज और समुद्र देखकर उसे भय हो रहा था। हृदय दहल जाता था।

शाम को जहाज खुला। उस समय गौरा का हृदय एक अक्षय भय से चंचल हो उठा। थोड़ी देर के लिए नैराश्य न उस पर अपना आतंक जमा लिया। न-जाने किस देश जा रही हूं, उनसे भेंट भी होगी या नहीं। उन्हें कहां खोजती फिरुंगी, कोई पता-ठिकाना भी तो नहीं मालूम। बार-बार पछताती थी कि एक दिन पहिले क्यों न चली आयी। कलकत्ता में भेंट हो जाती तो मैं उन्हें वहां कभी न जाने देती।

जहाज पर और कितने ही मुसाफिर थे, कुछ स्त्रियां भी थीं। उनमें बराबर गाली-गलौज होती रहती थी। इसलिए गौरा को उनसें बातें करने की इच्छा न होती थी। केवल एक स्त्री उदास दिखाई देती थी। गौरा ने उससे पूछा-तुम कहां जाती हो बहन?

उस स्त्री की बड़ी-बड़ी आंखे सजल हो गयीं। बोलीं, कहां बताऊं बहन कहां जा रहीं हूं? जहां भाग्य लिये जाता है, वहीं जा रहीं हूं। तुम कहां जाती हो?

गौरा- मैं तो अपने मालिक के पास जा रही हूं। जहां यह जहाज रुकेगा। वह वहीं नौकर हैं। मैं कल आ जाती तो उनसे कलकत्ता में ही भेंट हो जाती। आने में देर हो गयी। क्या जानती थी कि वह इतनी दूर चले जायेंगे, नहीं तो क्यों देर करती!

स्त्री – अरे बहन, कहीं तुम्हें भी तो कोई बहकाकर नहीं लाया है? तुम घर से किसके साथ आयी हो?

गौरा – मेरे आदमी ने कलकत्ता से आदमी भेजकार मुझे बुलाया था।

स्त्री –वह आदमी तुम्हारा जान–पहचान का था?

गौरा- नहीं, उस तरफ का एक बूढ़ा ब्राह्मण था।

स्त्री –वही लम्बा-सा, दुबला-पतला लकलक बूढ़ा, जिसकी एक ऑख में फूली पड़ी हुई है।

गौरा –हां, हां, वही। क्या तुम उसे जानती हो?

स्त्री –उसी दुष्ट ने तो मेरा भी सर्वनाश किया। ईश्वर करे, उसकी सातों पुश्तें नरक भोगें, उसका निर्वंश हो जाये, कोई पानी देनेवाला भी न रहे, कोढ़ी होकर मरे। मैं अपना वृतान्त सुनाऊं तो तुम समझेगी कि झूठ है। किसी को विश्वास न आयगा। क्या कहूं, बस सही समझ लो कि इसके कारण मैं न घर की रह गयी, न घाट की। किसी को मुंह नहीं दिखा सकती। मगर जान तो बड़ी प्यार होती है। मिरिच के देश जा रही हूं कि वहीं मेहनत-मजदूरी करके जीवन के दिन काटूं।

गौरा के प्राण नहीं में समा गये। मालूम हुआ जहाज अथाह जल में डूबा जा रहा है। समझ गयी बूढ़े ब्राह्मण ने दगा की। अपने गांव में सुना करती थी कि गरीब लोग मिरिच में भरती होने के लिए जाया करते हैं। मगर जो वहां जाता है, वह फिर नहीं लौटता। हे, भगवान् तुमने मुझे किस पाप का यह दण्ड दिया? बोली- यह सब क्यों लोगों को इस तरह छलकर मिरिच भेजते हैं?

स्त्री- रुपये के लोभ से और किसलिए? सुनती हूं, आदमी पीछे इन सभी को कुछ रुपये मिलते हैं।

गौरा –मजूरी

गौरा सोचने लगी –अब क्या करुं? यह आशा –नौका जिस पर बैठी हुई वह चली जा रही थी, टुट गयी थी और अब समुद्र की लहरों के सिवा उसकी रक्षा करने वाला कोई न था। जिस आधार पर उसने अपना जीवन-भवन बनाया था, वह

जलमग्न हो गया। अब उसके लिए जल के सिवा और कहां आश्रय है? उसकी अपनी माता की, अपने घर की अपने गांव की, सहेलियों की याद आती और ऐसी घोर मर्म वेदना होने लगी, मानो कोई सर्प अन्तस्तल में बैठा हुआ, बार-बार डस रहा हो। भगवान! अगर मुझे यही यातना देनी थी तो तुमने जन्म ही क्यों दिया था? तुम्हें दुखिया पर दया नहीं आती? जो पिसे हुए हैं उन्हीं को पीसते हो! करुण स्वर से बोली – तो अब क्या करना होगा बहन?

स्त्री – यह तो वहां पहुंच कर मालूम होगा। अगर मजूरी ही करनी पड़ी तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण ले लूंगी या अपने प्राण दे दूंगी।

यह कहते-कहते उसे अपना वृतान्त सुनाने की वह उत्कट इच्छा हुई, जो दुखियों को हुआ करती है। बोली – मैं बड़े घर की बेटी और उससे भी बड़े घर की बहूं हूं, पर अभागिनी ! विवाह के तीसरे ही साल पतिदेव का देहान्त हो गया। चित्त की कुछ ऐसी दशा हो गयी कि नित्य मालूम होता कि वह मुझे बुला रहे हैं। पहले तो ऑख झपकते ही उनकी मूर्ति सामने आ जाती थी, लेकिन फिर तो यह दशा हो गयी कि जाग्रत दशा में भी रह-रह कर उनके दर्शन होने लगे। बस यही जान पड़ता था कि वह साक्षात् खड़े बुला रहे हैं। किसी से शर्म के मारे कहती न थी, पर मन में यह शंका होती थी कि जब उनका देहावसान हो गया है तो वह मुझे दिखाई कैसे देते हैं? मैं इसे भ्रान्ति समझकर चित्त को शान्त न कर सकती। मन कहता था, जो वस्तु प्रत्यक्ष दिखायी देती है, वह मिल क्यों नहीं सकती? केवल वह ज्ञान चाहिए। साधु-महात्माओं को सिवा ज्ञान और कौन दे सकता है? मेरा तो अब भी विश्वास है कि अभी ऐसी क्रियाएं हैं, जिनसे हम मरे हुए प्राणियों से बातचीत कर सकते हैं, उनको स्थूल रुप में देख सकते हैं। महात्माओं की खोज में रहने लगी। मेरे यहां अक्सर साधु-सन्त आते थे, उनसे एकान्त में इस विषय में बातें किया करती थी, पर वे लोग सदुपदेश देकर मुझे टाल देते थे। मुझे सदुपदेशों की जरुरत न थी। मैं वैधव्य-धर्म खूब जानती थी। मैं तो वह ज्ञान चाहती थी जो जीवन और मरण के बीच का परदा उठा दे। तीन साल तक मैं इसी खेल में लगी रही। दो

महीने होते हैं, वही बूढ़ा ब्राह्मण संन्यासी बना हुआ मेरे यहां जा पहुंचा। मैंने इससे वही भिक्षा मांगी। इस धूर्त ने कुछ ऐसा मायाजाल फैलाया कि मैं आंखे रहते हुए भी फंस गयी। अब सोचती हूं तो अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि मुझे उसकी बातों पर इतना विश्वास क्यों हुआ? मैं पति-दर्शन के लिए सब कुछ झेलने को, सब कुछ करने को तैयार थी। इसने रात को अपने पास बुलाया। मैं घरवालों से पड़ोसिन के घर जाने का बहाना करके इसके पास गयी। एक पीपल से इसकी धूईं जल रही थी। उस विमल चांदनी में यह जटाधारी ज्ञान और योग का देवता-सा मालूम होता था। मैं आकर धूईं के पास खड़ी हो गयी। उस समय यदि बाबाजी मुझे आग में कुद पड़ने की आज्ञा देते, तो मैं तुरन्त कूद पड़ती। इसने मुझे बड़े प्रेम से बैठाया और मेरे सिर पर हाथ रखकर न जाने क्या कर दिया कि मैं बेसुध हो गयी। फिर मुझे कुछ नहीं मालूम कि मैं कहां गयी, क्या हुआ? जब मुझे होश आया तो मैं रेल पर सवार थी। जी में आया कि चिल्लाऊं, पर यह सोचकर कि अब गाड़ी रुक भी गयी और मैं उतर भी पड़ी तो घर में घुसने न पाऊंगी, मैं चुपचाप बैठी रह गई। मैं परमात्मा की दृष्टि से निर्दोष थी, पर संसार की दृष्टि में कलंकित हो चुकी थी। रात को किसी युवती का घर से निकल जाना कलंकित करने के लिए काफी था। जब मुझे मालूम हो गया कि सब मुझे टापू में भेज रहें हैं तो मैंने जरा भी आपत्ति नहीं की। मेरे लिए अब सारा संसार एक-सा है। जिसका संसार में कोई न हो, उसके लिए देश-परदेश दोनों बराबर है। हां, यह पक्का निश्चय कर चूकी हूं कि मरते दम तक अपने सत की रक्षा करुंगी। विधि के हाथ में मृत्यु से बढ़ कर कोई यातना नहीं। विधवा के लिए मृत्यु का क्या भय। उसका तो जीना और मरना दोनों बराबर हैं। बल्कि मर जाने से जीवन की विपत्तियों का तो अन्त हो जाएगा।

गौरा ने सोचा – इस स्त्री में कितना धैर्य और साहस है। फिर मैं क्यों इतनी कातर और निराश हो रही हूं? जब जीवन की अभिलाषाओं का अन्त हो गया तो जीवन के अन्त का क्या डर? बोली- बहन, हम और तुम एक जगह रहेंगी। मुझे तो अब तुम्हारा ही भरोसा है।

स्त्री ने कहा- भगवान का भरोसा रखो और मरने से मत डरो।

सघन अन्धकार छाया हुआ था। ऊपर काला आकाश था, नीचे काला जल। गौरा आकाश की ओर ताक रही थी। उसकी संगिनी जल की ओर। उसके सामने आकाश के कुसुम थे, इसके चारों ओर अनन्त, अखण्ड, अपार अन्धकार था।

जहाज से उतरते ही एक आदमी ने यात्रियों के नाम लिखने शुरु किये। इसका पहनावा तो अंग्रेजी था, पर बातचीत से हिन्दुस्तानी मालूम होता था। गौरा सिर झुकाये अपनी संगिनी के पीछे खड़ी थी। उस आदमी की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी। उसने दबी आंखों से उसको ओर देखा। उसके समस्त शरीर में सनसनी दौड़ गयी। क्या स्वप्न तो नहीं देख रही हूं। आंखों पर विश्वास न आया, फिर उस पर निगाह डाली। उसकी छाती वेग से धड़कने लगी। पैर थर-थर कांपने लगे। ऐसा मालूम होने लगा, मानो चारों ओर जल-ही-जल है और उसमें और उसमें बही जा रही हूं। उसने अपनी संगिनी का हाथ पकड़ लिया, नहीं तो जमीन में गिर पड़ती। उसके सम्मुख वहीं पुरुष खड़ा था, जो उसका प्राणधार था और जिससे इस जीवन में भेंट होने की उसे लेशमात्र भी आशा न थी। यह मंगरु था, इसमें जरा भी सन्देह न था। हां उसकी सूरत बदल गयी थी। यौवन-काल का वह कान्तिमय साहस, सदय छवि, नाम को भी न थी। बाल खिचड़ी हो गये थे, गाल पिचके हुए, लाल आंखों से कुवासना और कठोरता झलक रही थी। पर था वह मंगरु। गौरा के जी में प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी के पैरों से लिपट जाऊं। चिल्लाने का जी चाहा, पर संकोच ने मन को रोका। बूढ़े ब्राह्मण ने बहुत ठीक कहा था। स्वामी ने अवश्य मुझे बुलाया था और आने से पहले यहां चले आये। उसने अपनी संगिनी के कान में कहा – बहन, तुम उस ब्राह्मण को व्यर्थ ही बुरा कह रहीं थीं। यही तो वह हैं जो यात्रियों के नाम लिख रहे हैं।

स्त्री – सच, खूब पहचानी हो?

गौरा – बहन, क्या इसमें भी हो सकता है?

स्त्री – तब तो तुम्हारे भाग जग गये, मेरी भी सुधि लेना।

गौरा – भला, बहन ऐसा भी हो सकता है कि यहां तुम्हें छोड़ दूं?

मंगरु यात्रियों से बात-बात पर बिगड़ता था, बात-बात पर गालियां देता था, कई आदमियों को ठोकर मारे और कई को केवल गांव का जिला न बता सकने के कारण धक्का देकर गिरा दिया। गौरा मन-ही-मन गड़ी जाती थी। साथ ही अपने स्वामी के अधिकार पर उसे गर्व भी हो रहा था। आखिर मंगरु उसके सामने आकर खड़ा हो गया और कुचेष्टा-पूर्ण नेत्रों से देखकर बोला –तुम्हारा क्या नाम है?

गौरा ने कहा—गौरा।

मगरू चौंक पड़ा, फिर बोला – घर कहां है?

मदनपुर, जिला बनारस।

यह कहते-कहते हंसी आ गयी। मंगरु ने अबकी उसकी ओर ध्यान से देखा, तब लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला –गौरा! तुम यहां कहां? मुझे पहचानती हो?

गौरा रो रही थी, मुह से बात न निकलती।

मंगरु फिर बोला—तुम यहां कैसे आयीं?

गौरा खड़ी हो गयी, आंसू पोंछ डाले और मंगरु की ओर देखकर बोली – तुम्हीं ने तो बुला भेजा था।

मंगरु –मैंने ! मैं तो सात साल से यहां हूं।

गौरा –तुमने उसे बूढ़े ब्राह्मण से मुझे लाने को नहीं कहा था?

मंगरु –कह तो रहा हूं, मैं सात साल से यहां हूं। मरने पर ही यहां से जाऊंगा। भला, तुम्हें क्यों बुलाता?

गौरा को मंगरु से इस निष्ठुरता का आशा न थी। उसने सोचा, अगर यह सत्य भी हो कि इन्होंने मुझे नहीं बुलाया, तो भी इन्हें मेरा यों अपमान न करना चाहिए था। क्या वह समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर आयी हूं? यह तो इतने ओछे स्वभाव के न थे। शायद दरजा पाकर इन्हें मद हो गया है। नारीसुलभ अभिमान से गरदन उठाकर उसने कहा- तुम्हारी इच्छा हो, तो अब यहां से लौट जाऊं, तुम्हारे ऊपर भार बनना नहीं चाहती?

मंगरु कुछ लज्जित होकर बोला –अब तुम यहां से लौट नहीं सकतीं गौरा ! यहां आकर बिरला ही कोई लौटता है।

यह कहकर वह कुछ देर चिन्ता में मग्न खड़ा रहा, मानो संकट में पड़ा हुआ हो कि क्या करना चाहिए। उसकी कठोर मुखाकृति पर दीनता का रंग झलक पड़ा। तब कातर स्वर से बोला–जब आ ही गयी हो तो रहो। जैसी कुछ पड़ेगी, देखी जायेगी।

गौरा –जहाज फिर कब लौटेगा।

मंगरु –तुम यहां से पांच बरस के पहले नहीं जा सकती।

गौरा –क्यों, क्या कुछ जबरदस्ती है?

मंगरु –हां, यहां का यही हुक्म है।

गौरा –तो फिर मैं अलग मजूरी करके अपना पेट पालूंगी।

मंगरु ने सजल-नेत्र होकर कहा—जब तक मैं जीता हूं, तुम मुझसे अलग नहीं रह सकतीं।

गौरा- तुम्हारे ऊपर भार बनकर न रहूंगी।

मंगरु – मैं तुम्हें भार नहीं समझता गौरा, लेकिन यह जगह तुम-जैसी देवियों के रहने लायक नहीं है, नहीं तो अब तक मैंने तुम्हें कब का बुला लिया होता। वहीं बूढ़ा आदमी जिसने तुम्हें बहकाया, मुझे घर से आते समय पटने में मिल गया और झांसे देकर मुझे यहां भरती कर दिया। तब से यहीं पड़ा हुआ हूं। चलो, मेरे घर में रहो, वहां बातें होंगी। यह दूसरी औरत कौन है?

गौरा – यह मेरी सखी है। इन्हें भी बूढ़ा बहका लाया।

मंगरु -यह तो किसी कोठी में जायेंगी? इन सब आदमियों की बांट होगी। जिसके हिस्से में जितने आदमी आयेंगे, उतने हर एक कोठी में भेजे जायेंगे।

गौरा – यह तो मेरे साथ रहना चाहती हैं।

मंगरु – अच्छी बात है इन्हें भी लेती चलो।

यात्रियों के नाम तो लिखे ही जा चुके थे, मंगरु ने उन्हें एक चपरासी को सौंपकर दोंनों औरतों के साथ घर की राह ली। दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें थी। जहां तक निगाह जाती थी, ऊख-ही-ऊख दिखायी देती थी। समुद्र की ओर से शीतल, निर्मल वायु के झोंके आ रहे थे। अत्यन्त सुरम्य दृश्य था। पर मंगरु की निगाह उस ओर न थी। वह भूमि की ओर ताकता, सिर झुकाये, सन्दिग्ध चवाल से चला जा रहा था, मानो मन-ही-मन कोई समस्या हल कर रहा था।

थोड़ी ही दूर गये थे कि सामने से दो आदमी आते हुए दिखाई दिये। समीप आकर दानों रुक गये और एक ने हंसकर कहा –मंगरु, इनमें से एक हमारी है।

दूसरा बोला- और दूसरा मेरी।

मंगरु का चेहरा तमतमा उठा था। भीषण क्रोध से कांपता हुआ बोला- यह दोनों

मेरे घर की औरतें है। समझ गये?

इन दोनों ने जोर से कहकहा मारा और एक ने गौरा के समीप आकर उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके कहा- यह मेरी हैं चाहे तुम्हारे घर की हो, चाहे बाहर की। बचा, हमें चकमा देते हो।

मंगरु – कासिम, इन्हें मत छेड़ो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैंने कह दिया, मेरे घर की औरतें हैं।

मंगरी की आंखों से अग्नि की ज्वाला-सी निकल रही थी। वह दानों के उसके मुख का भाव देखकर कुछ सहम गये और समझ लेने की धमकी देकर आगे बढ़े। किन्तु मंगरु के अधिकार-क्षेत्र से बाहर पहुंचते ही एक ने पीछे से ललकार कर कहा- देखें कहां ले के जाते हो?

मंगरू ने उधर ध्यान नहीं दिया। जरा कदम बढ़ाकर चलने लगा, जेसे सन्ध्या के एकान्त में हम कब्रिस्तान के पास से गुजरते हैं, हमें पग-पग पर यह शंका होती है कि कोई शब्द कान में न पड़ जाय, कोई सामने आकर खड़ा न हो जाय, कोई जमीन के नीचे से कफन ओढ़े उठ न खड़ा हो।

गौरा ने कहा—ये दानों बड़े शोहदे थे।

मंगरु – और मैं किसलिए कह रहा था कि यह जगह तुम-जैसी स्त्रियों के रहने लायक नहीं है।

सहसा दाहिनी तरफ से एक अंग्रेज घोड़ा दौड़ाता आ पहुंचा और मंगरु से बोला- वेल जमादार, ये दोनों औरतें हमारी कोठी में रहेगा। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं है।

मंगरु ने दोनों औरतों को अपने पीछे कर लिया और सामने खड़ा होकर बोला--

साहब, ये दोनों
हमारे घर की औरतें हैं।

साहब- ओ हो ! तुम झूठा आदमी। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं और तुम दो ले जाएगा। ऐसा नहीं हो सकता। (गौरा की ओर इशारा करके) इसको हमारी कोठी पर पहुंचा दो।

मंगरु ने सिर से पैर तक कांपते हुए कहा- ऐसा नहीं हो सकता।

मगर साहब आगे बढ़ गया था, उसके कान में बात न पहुंची। उसने हुक्म दे दिया था और उसकी तामील करना जमादार का काम था।

शेष मार्ग निर्विघ्न समाप्त हुआ। आगे मजूरों के रहने के मिट्टी के घर थे। द्वारों पर स्त्री-पुरुष जहां-तहां बैठे हुए थे। सभी इन दोनों स्त्रियों की ओर घूरते थे और आपस में इशारे करते हंसते थे। गौरा ने देखा, उनमें छोटे-बड़े का लिहाज नहीं है, न किसी के आंखों में शर्म है।

एक भदैसले और ने हाथ पर चिलम पीते हुए अपनी पडोसिन से कहा- चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी पाख !

दूसरी अपनी चोटी गूंथती हुई बोली – कलोर हैं न।

7

मंगरु दिन-भर द्वार पर बैठा रहा, मानो कोई किसान अपने मटर के खेत की रखवाली कर रहा हो। कोठरी में दोनों स्त्रियां बैठी अपने नसीबों को रही थी। इतनी देर में दोनों को यहां की दशा का परिचय कराया गया था। दोनों भूखी-प्यासी बैठी थीं। यहां का रंग देखकर भूख प्यास सब भाग गई थी।

रात के दस बजे होंगे कि एक सिपाही ने आकर मंगरु से कहा- चलो, तुम्हें जण्ट

साहब बुला रहे हैं।

मंगरु ने बैठे-बैठे कहा – देखो नब्बी, तुम भी हमारे देश के आदमी हो। कोई मौका पड़े, तो हमारी मदद करोगे न? जाकर साहब से कह दो, मंगरु कहीं गया है, बहुत होगा जुरमाना कर देंगे।

नब्बी – न भैया, गुस्से में भरा बैठा है, पिये हुए हैं, कहीं मार चले, तो बस, चमड़ा इतना मजबूत नहीं है।

मंगरु – अच्छा तो जाकर कह दो, नहीं आता।

नब्बी- मुझे क्या, जाकर कह दूंगा। पर तुम्हारी खैरियत नहीं है के बंगले पर चला। यही वही साहब थे, जिनसे आज मंगरु की भेंट हुई थी। मंगरु जानता था कि साहब से बिगाड़ करके यहां एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। जाकर साहब के सामने खड़ा हो गया। साहब ने दूर से ही डांटा, वह औरत कहां है? तुमने उसे अपने घर में क्यों रखा है?

मंगरु – हजूर, वह मेरी ब्याहता औरत है।

साहब – अच्छा, वह दूसरा कौन है?

मंगरु – वह मेरी सगी बहन है हजूर !

साहब – हम कुछ नहीं जानता। तुमको लाना पड़ेगा। दो में से कोई, दो में से कोई।

मंगरु पैरों पर गिर पड़ा और रो-रोकर अपनी सारी राम कहानी सुना गया। पर साहब जरा भी न पसीजे! अन्त में वह बोला – हुजूर, वह दूसरी औरतों की तरह नहीं है। अगर यहां आ भी गयी, तो प्राण दे देंगी।

साहब ने हंसकर कहा – ओ ! जान देना इतना आसान नहीं है !

नब्बी – मंगरु अपनी दांव रोते क्यों हो? तुम हमारे घर नहीं घुसते थे! अब भी जब घात पाते हो, जा पहुंचते हो। अब क्यों रोते हो?

एजेण्ट – ओ, यह बदमाश है। अभी जाकर लाओ, नहीं तो हम तुमको हण्टरों से पीटेगा।

मंगरु – हुजूर जितना चाहे पीट लें, मगर मुझसे यह काम करने को न कहें, जो मैं जीते –जी नहीं कर सकता !

एजेण्ट- हम एक सौ हण्टर मारेगा।

मंगरु – हुजूर एक हजार हण्टर मार लें, लेकिन मेरे घर की औरतों से न बोंले।

एजेण्ट नशे में चूर था। हण्टर लेकर मंगरु पर पिल पड़ा और लगा सड़ासड़ जमाने। दस बाहर कोड़े मंगरु ने धैर्य के साथ सहे, फिर हाय-हाय करने लगा। देह की खाल फट गई थी और मांस पर चाबुक पड़ता था, तो बहुत जब्त करने पर भी कण्ठ से आर्त्त-ध्वनि निकल आती थी टौर अभी एक सौं में कुछ पन्द्रह चाबुक पड़े थें।

रात के दस बज गये थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था और उस नीरव अंधकार में मंगरु का करुण-विलाप किसी पक्ष की भांति आकाश में मुंडला रहा था। वृक्षों के समूह भी हतबुद्धि से खड़े मौन रोन की मूर्ति बने हुए थे। यह पाषाणहृदय लम्पट, विवेक शून्य जमादार इस समय एक अपरिचित स्त्री के सतीत्व की रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने को तैयार था, केवल इस नाते कि यह उसकी पत्नी की संगिनी थी। वह समस्त संसार की नजरों में गिरना गंवारा कर सकता था, पर अपनी पत्नी की भक्ति पर अखंड राज्य करना चाहता था। इसमें अणुमात्र की कमी भी उसके लिए असह्य थी। उस अलौकिक भक्ति के सामने उसके जीवन का

क्या मूल्य था? ब्राह्मणी तो जमीन पर ही सो गयी थी, पर गौरा बैठी पति की बाट जोह रही थी। अभी तक वह उससे कोई बात नहीं कर सकी थी। सात वर्षों की विपत्ति–कथा कहने और सुनने के लिए बहुत समय की जरुरत थी और रात के सिवा वह समय फिर कब मिल सकता था। उसे ब्राह्मणी पर कुछ क्रोध-सा आ रहा था कि यह क्यों मेरे गले का हार हुई? इसी के कारण तो वह घर में नहीं आ रहे हैं।

यकायक वह किसी का रोना सुनकर चौंक पड़ी। भगवान्, इतनी रात गये कौन दु:ख का मारा रो रहा है। अवश्य कोई कहीं मर गया है। वह उठकर द्वार पर आयी और यह अनुमान करके कि मंगरु यहां बैठा हुआ है, बोली – वह कौन रो रहा है ! जरा देखो तो।

लेकिन जब कोई जवाब न मिला, तो वह स्वयं कान लगाकर सुनने लगी। सहसा उसका कलेजा धक् से हो गया। तो यह उन्हीं की आवाज है। अब आवाज साफ सुनायी दे रही थी। मंगरु की आवाज थी। वह द्वार के बाहर निकल आयी। उसके सामने एक गोली के अम्पें पर एजेंट का बंगला था। उसी तरफ से आवाज आ रही थी। कोई उन्हें मार रहा है। आदमी मार पड़ने पर ही इस तरह रोता है। मालूम होता है, वही साहब उन्हें मार रहा है। वह वहां खड़ी न रह सकी, पूरी शक्ति से उस बंगले की ओर दौड़ी, रास्ता साफ था। एक क्षण में वह फाटक पर पहुंच गयी। फाटक बंद था। उसने जोर से फाटक पर धक्का दिया, लेकिन वह फाटक न खुला और कई बार जोर-जोर से पुकारने पर भी कोई बाहर न निकला, तो वह फाटक के जंगलों पर पैर रखकर भीतर कूद पड़ी और उस पार जाते हीं उसने एक रोमांचकारी दृश्य देखा। मंगरु नंगे बदन बरामदे में खड़ा था और एक अंग्रेज उसे हण्टरों से मार रहा था। गौरा की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। वह एक छलांग में साहब के सामने जाकर खड़ी हो गई और मंगरु को अपने अक्षय- प्रेम-सबल हाथों से ढांककर बोली –सरकार, दया करो, इनके बदले मुझे जितना मार लो, पर इनको छोड़ दो।

एजेंट ने हाथ रोक लिया और उन्मत्त की भांति गौरा की ओर कई कदम आकर बोला- हम इसको छोड़ दें, तो तुम मेरे पास रहेगा।

मंगरु के नथने फड़कने लगे। यह पामर, नीच, अंग्रेज मेरी पत्नी से इस तरह की बातें कर रहा है। अब तक वह जिस अमूल्य रत्न की रक्षा के लिए इतनी यातनांए सह रहा था, वही वस्तु साहब के हाथ में चली जा रही है, यह असह्य था।

***